1687

वृहत साहित्यिक निबंध—3

हिन्दी-साहित्य

प्रमुख कवि

हिन्दी-साहित्य

प्रमुख कवि

—डॉ० कृष्णदव झारी

संस्करण
प्रथम, 1988

हिन्दी साहित्य : प्रमुख कवि ।। साहित्यिक निबंध ।।

प्रकाशक
शारदा प्रकाशन
16/एफ़-3, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली —110002

मूल्य : 100.00 (सौ रुपये मात्र)

विजयदेव झारी द्वारा शारदा प्रकाशन, नई दिल्ली के लिए प्रकाशित एवं हरिकृष्ण प्रिंटर्स, शिवाजी पार्क, दिल्ली-32 में मुद्रित। आवरण-सज्जा श्री चेतनदास एवं आवरण-मुद्रण गणेश प्रेस, दिल्ली द्वारा।

Hindi Sahitya :
Pramukh Kavi
(a collection of essays on famous Poets of Hindi literature)
by Dr. Krishandev Jhari

आमुख

हिन्दी-साहित्य की विभूतियाँ हमारे प्रातिभ कवि और लेखक ही हैं। इस ग्रंथ में कुछ प्रमुख कवियों का ही कुछ गहन साहित्यिक अध्ययन प्रस्तुत करना मेरा उद्देश्य रहा है। कवियों का केवल ऐतिहासिक सामान्य परिचय न देकर, मैंने उनके कुछ विशिष्ट प्रमुख पक्षों को ही इन निबंधों में नये ढंग से उजागर किया है जिससे कवियों की प्रमुख प्रवृत्ति और उनकी काव्य-साधना का विशिष्ट अवदान पूरी तरह प्रकाशित हो सके। कवियों के जिन-जिन पक्षों को उठाया गया है, प्रयत्न यही रहा है कि उस विषय की सर्वांगीण विवेचना प्रस्तुत की जाय। यही वजह है कि कवियों का यह अध्ययन परम्परागत परिचयात्मक न होकर गहन साहित्यिक है। ये कवि हमारे हिन्दी साहित्य और काव्य की अनेक प्रवृत्तियों के प्रवर्त्तक और जनक रहे हैं। अत: इनके अध्ययन से हिन्दी-काव्य साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों का परिचय भी आनुषंगिक रूप में प्राप्त हो जाता है।

कवियों के इस अध्ययन में कवियों की कवित्व-शक्ति और सीमा तथा उनके अवदान और रुझान के सम्वंध में मेरी मौलिक धारणाएँ आपको स्थान-स्थान पर मिलेंगी। मेरे स्पष्ट और बेबाक अभिमतों से आप कहाँ तक सहमत होंगे, यह मैं नहीं कह सकता किन्तु इतना विश्वास अवश्य है कि इस समस्त गहन विवेचन से गुजरते हुए आपको कितने ही विचारोत्तेजक तथ्य अवश्य प्राप्त होंगे। आशा है कि यह कवि-अध्ययन पाठकों को रुचिकर और उपयोगी प्रतीत होगा।

पूरे प्रयत्न के बावजूद कतिपय प्रमुख कवियों का अध्ययन इस कलेवर में आने से रह गया है। इस कमी को अगले संस्करणों में अथवा अलग पुस्तकाकार में पूरा किया जायगा।

—**कृष्णदेव झारी**

झारी विला
भूलभुल्लैयां रोड, महरौली
नयी दिल्ली—110030

हिन्दी-साहित्य
प्रमुख कवि

साहित्यिक निबंधानुक्रम

Hindi Sahitya
Pramukh Kavi

1

मैथिल-कोकिल विद्यापति

1. उपक्रम
2. विद्यापति का जीवन और रचनाएँ
3. विद्यापति श्रृंगारी कवि
4. विद्यापति का श्रृंगार-चित्रण
   (रूप-चित्रण, संयोग-वर्णन, वियोग-वर्णन)
5. भाषा-शैली-कला पक्ष
   (अलंकार-योजना, भाषा-शैली की अन्य विशेषताएँ)

कृष्णकाव्य की परंपरा लौकिक और अलौकिक दोनों ही भावनाओं के आश्रय पल्लवित हुई। 'भागवत पुराण' यदि कृष्णभक्ति के चरम विकास की रचना कही जा सकती है तो जयदेव का 'गीतगोविन्द' लौकिक कृष्णप्रेम की पराकाष्ठा का काव्य है। हिन्दी में भी कृष्ण-काव्य के ये दोनों ही रूप प्राचीनकाल से प्रचलित हो गए थे। लौकिक कृष्णप्रेम-काव्य के प्रवर्तन का श्रेय कवि विद्यापति को ही है। विद्यापति हिन्दी की उपभाषा मैथिली के ऐसे कवि हैं जिन्होंने कृष्ण के लौकिक नायक रूप को मुख्यतः तथा अलौकिक भगवद्-रूप को अत्यन्त गौण रूप में अपनाया। जयदेव की-सी सरस पदावली प्रवाहित करने के कारण विद्यापति को 'अभिनव जयदेव', 'कवि-रंजन', 'कवि शेखर', 'मैथिल-कोकिल' आदि सम्मानित उपाधियां प्राप्त हुईं।

जीवन और रचनाएँ: विद्यापति का जन्म मिथिला के दरभंगा जिला में हुआ था। विद्यापति के पूर्वज दरभंगा जिले के विसपी नामक गांव में निवास करते थे। संभवतः यहीं विद्यापति उत्पन्न हुए होंगे। यह गाँव विद्यापति को अपने आश्रयदाता राजा शिवसिंह से भेंट-स्वरूप मिला था। विद्यापति के पिता गणपति ठाकुर भी बहुत बड़े विद्वान थे तथा तत्कालीन मिथिला-नरेश गणेश्वर के दरबार में प्रतिष्ठा प्राप्त थे। विद्यापति की माता का नाम गंगा देवी था। ये अपने माता-पिता के इकलौते पुत्र थे। विद्यापति के जन्म-स्थान, जन्म-समय, मृत्यु आदि के सम्बन्ध में बाह्य तथा अंतः साक्ष्य से कुछ निश्चित पता नहीं

चलता। अनुमान से उनका जन्मकाल 1350 से 1360 ई० के मध्य ठहरता है। अपभ्रंश भाषा में अपनी रचना 'कीर्तिलता' राजा कीर्तिसिंह (राज्य-प्राप्ति-काल 1371 ई०) का यशोगान करने हेतु की थी। विद्यापति ने राजा धीरसिंह के शासनकाल में संस्कृत-रचना 'दुर्गाभक्ति तरंगिणी' लगभग सन् 1440 में की थी। अपने एक पद में विद्यापति ने लिखा है कि मैंने राजा शिवसिंह को उनकी मृत्यु के 32 वर्ष बाद अर्थात् 1447 ई० में सपने में देखा। इससे यह सिद्ध होता है कि विद्यापति 1447 ई० तक अवश्य जीवित थे। कहते हैं, अपनी मृत्यु के समय कवि ने अपनी पुत्री दुल्लहि को अपनी मृत्यु से सम्बन्धित यह पंक्ति कही थी :

विद्यापति आयु अवसान, कातिक धवल त्रयोदसि जान।

इस आधार पर कार्तिक शुक्ल त्रयोदशी को विद्यापति की निधन-तिथि माना जाता है। यह तिथि सन् 1447 या 1448 की रही होगी।

विद्यापति संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। धर्मशास्त्र एवं काव्यशास्त्र के वे पूर्ण ज्ञाता थे। कवित्वशक्ति उनमें निसर्गतः विद्यमान थी। अनेक राजाओं के दरबारी कवि की पूर्ण प्रतिष्ठा उन्होंने प्राप्त की थी। अपनी किशोरावस्था से ही वह कविता रचने लगे। संस्कृत, देसिल (अवहट्ठ) भाषा और मैथिली भाषा—तीनों पर उनका पूर्ण अधिकार था। 'कीर्तिलता' के बाद विद्यापति ने अपभ्रंश भाषा में 'कीर्ति पताका' की रचना अपने तीसरे आश्रयदाता राजा शिवसिंह को श्रृंगारचसक पिलाने के लिए की। राजा शिवसिंह की ही आज्ञा से विद्यापति ने संस्कृत में एक और रचना 'पुरुष परीक्षा' की, जिसमें विभिन्न प्रकार के लक्षण-उदाहरण दिये गए हैं। अपने जीवन की संध्यावेला में विद्यापति अध्यात्माभिमुख हो गए थे। विभिन्न राजाश्रयों में विपुल सम्मान अर्जित करने के पश्चात् अन्त में कवि अपने परिवार (पत्नी चम्पतिदेवी, पुत्री दुल्लहि, तीन पुत्र और पुत्र-वधुएँ) से विदा लेकर गंगा-सेवन को चला गया था। कहते हैं गंगा तट पर ही उन्होंने प्राण त्यागे।

मैथिली भाषा में रचित 'पदावली' ही विद्यापति की कीर्ति का अमर स्तम्भ सिद्ध हुई। हिन्दी साहित्य में इसी श्रृंगार-रचना के कारण उन्हें अमरता प्राप्त हुई। यह न-केवल कृष्णकाव्य की परम्परा-स्थापक रचना है, अपितु इसका व्यापक प्रभाव समूचे मध्यकालीन कृष्णकाव्य पर पड़ा।

विद्यापति श्रृंगारी कवि : विद्यापति घोर श्रृंगारी कवि थे। आश्चर्य है कि आज तक बहुत-से विचारक विद्यापति के राधाकृष्ण-प्रेम-चित्रण से भ्रांतिवश भक्ति और अध्यात्म की गंध लेने की भूल करते रहे हैं। सर्वप्रथम जार्ज ग्रियर्सन ने विद्यापति के पदों को भ्रांतिवश वैष्णव-गीत या भजन समझ लिया था। इस देश की राधा-कृष्ण-प्रेम-सम्बन्धी परम्पराओं को ठीक तरह न जानने के कारण

ही ग्रियर्सन को यह भ्रांति हुई। दूसरे, इस भ्रांति का एक कारण यह भी है कि परम्परा से प्रसिद्ध है कि विद्यापति के पदों को गाकर चैतन्य महाप्रभु-जैसे परमवैष्णव भक्त आत्मविस्मृत और मूर्च्छित हो जाते थे। जार्ज ग्रियर्सन द्वारा इस तथ्य का उल्लेख और इस आधार पर विद्यापति के पदों को वैष्णव-भजन मान लेना स्वाभाविक ही था। चैतन्य बहुत बड़े भक्त और महात्मा थे। वे तो अणु-अणु में भगवान् के दर्शन करते थे। अतः विद्यापति के पदों में राधा और कृष्ण का नाम पाकर ही उन्होंने उन पदों को अपने कीर्त्तन में अपना लिया होगा। उन्हें कवि की प्रवृत्ति की छानबीन से क्या मतलब था? अतः जहाँ चैतन्य द्वारा विद्यापति के पदों को भक्ति के भजन समझना भ्रांति थी, वहाँ चैतन्य द्वारा गृहीत होने के ही कारण साहित्य-विद्वानों-द्वारा विद्यापति को वैष्णव भक्त और उनके पदों को भक्ति के गीत समझ लेना और भी बड़ी भ्रांति थी। विद्यापति राजकवि थे, संसारी थे। वह न भक्त थे, न भक्ति-कीर्तनों के लिए उन्होंने पदों की रचना की थी। अपने आश्रयदाता को विलासपूर्ण शृंगार के प्याले पिला कर प्रसन्न करना ही उनका उद्देश्य था।

बाबू नगेन्द्रनाथ गुप्त, श्री जनार्दन मिश्र आदि ने विद्यापति के निम्न पद में रहस्यवाद की छाया देखी है :

सुन्दरि चललिहु पहु-घर ना। चहु दिस सखी सब कर धरना ॥
जाइतहु लागु परम डरना। जइसे ससि कांप राहु डरना ॥
जाइतहि हार टूटिए गेल ना। भूखन-बसन मलीन भेलना ॥

प्रबुद्ध पाठकों को बताने की आवश्यकता नहीं, कि इस सुन्दरी का भय कामी प्रिय-द्वारा उत्तेजनापूर्ण रति-क्रीड़ा का भय है। उसका भय सच्चा था। प्रिय ने उसका निर्ममतापूर्वक उपभोग किया—उसका हार तोड़ डाला, वस्त्र मलीन कर दिए और अपार कष्ट दिया। इस पद में सुन्दरी के प्रियतम के घर जाने को जीव के संसार से ब्रह्मलोक जाने का प्रतीक मानने वालों की समझ पर हँसी आती है। विद्यापति के अनेक पदों में रति-क्रीड़ा का स्पष्ट जय-घोष हुआ है। सुरति, विपरीत रति, सुरतांत, खण्डिता तथा व्यभिचार के सैंकड़ों पद विद्यापति-पदावली में भरे पड़े हैं। कई पदों में घोर असामाजिक अश्लील वर्णन है।

विद्यापति के समस्त पदों में केवल चार-पाँच पद ऐसे हैं जिनमें कवि ने भगवान् कृष्ण के प्रति भक्ति प्रकट की है। केवल चार-पाँच अन्य ऐसे पद हैं जिनकी अंतिम पंक्ति में कवि ने 'भजु भगवाने' या 'भजि रह देव मुरारि' आदि शब्दों का प्रयोग किया है। ऐसे पाँच-सात पदों के आधार पर न विद्यापति को भक्तकवि कहा जा सकता है, न उनकी पदावली को भक्ति काव्य। 'बिहारी सतसई' में विद्यापति 'पदावली' से कहीं अधिक अनुपात में भक्ति के दोहे हैं। अतः जैसे बिहारी को शृंगारी कवि माना जाता है, वैसे ही विद्यापति को भी शृंगारी

कवि ही समझना चाहिए।

बाह्य साक्ष्य एवं अंत: साक्ष्य से यह प्रमाणित होता है कि कवि अपने जीवन-काल में शिव, दुर्गा तथा गंगा के प्रति ही भक्ति भाव रखता था, न कि विष्णु के अवतार कृष्ण के प्रति। कवि ने संस्कृत में जहाँ दुर्गा, शिव, गंगा के प्रति भक्ति अर्पित करने के लिए रचनाएँ कीं, वहाँ कृष्णभक्ति की परिचायक उसकी कोई संस्कृत रचना नहीं है। अत: यही अनुमान होता है कि कृष्ण-भक्ति-सम्बन्धी 5-7 पद कवि ने अपनी जीवन-संध्या-बेला में रचे होंगे।

विद्यापति के पदों के अध्ययन से स्पष्ट भासित होता है कि उनके काव्य का मूल स्रोत न-केवल जयदेव का 'गीतगोविन्द' है जिसमें राधाकृष्ण के प्रेम का लौकिक शृंगारी चित्रण हुआ है, अपितु प्राकृत एवं संस्कृत का वह शृंगार-प्रधान मुक्तक काव्य भी है, जिसमें शृंगार रस का कामुकतापूर्ण चित्रण हुआ है, जैसे हाल की 'गाथासप्तशती', गोवर्धनाचार्य की 'आर्या सप्तशती', अमरूक कवि का 'अमरूक-शतक', 'शृंगारतिलक' आदि। निश्चय ही विद्यापति ने भक्तिपरक कृष्णकाव्य—भागवतपुराण आदि—से प्रेरणा न लेकर इन शृंगार-प्रधान रचनाओं से प्रेरणा ली है। अत: विद्यापति शृंगारी कवि हैं, उनका कृष्णप्रेम लौकिक भावानुभूति ही कराता है।

विद्यापति का शृंगार-चित्रण : विद्यापति सौन्दर्य और विलास के कवि हैं। उनका सौन्दर्य यौवन पर आधारित है और विलास सौन्दर्योपभोग से सम्बन्धित है। कवि ने **नारी-सौन्दर्य** का अंग-प्रत्यंग का मादक एवं कामप्रेरक मांसल वर्णन किया है। रूप-चित्रण आलंकारिक है। कवि की नायिका अधिकतर नवोढ़ा किशोरी है। उसमें वय: संधि का सद्य संचार हुआ है। इस दशा का मादक चित्रण निम्न पंक्तियों में अवलोकनीय है। नायिका का रूप 'अपरूप' है। यौवन के आगमन पर अब चरणों की चंचलता आँखों में आ गई है। नयन कटाक्ष करने और रोकने-टोकने लगे हैं। कटि की स्थूलता नितम्बों ने ले ली है। जो उरोज छोटे-छोटे बेर-जैसे (बिन उभरे) थे, वे अब नारंगी या श्रीफल बन गए हैं। अंग-अंग में काम-लहर दौड़ गई है। वचन-चातुर्य अब मंद-मंद मुस्कान में बदल गया है :

सैसव जौवन दुहु मिली गेल। स्रवनक पण दुहु लोचन गेल।
वचनक चातुरि लहु-लहु हास। धरनिए चाँद कराल परगास॥
पहिल बदरि सम पुन नवरंग। दिन दिन अधंग अगोरल अंग।
माधव पेखव अपरुब वाला। सैसव-जौबन दुहु एक मेला॥
कटिक गौरव पाओल नितम्ब। एकक खोन अशोक अबलंब॥

इस नव यौवना का अंग-अंग सुषमा की खान है! कनक लता-सी देह है—पतली-दुबली। उस पर सुमेरु पर्वत पीन-पयोधर! दुहाई है! ऐसा अपूर्व रूप! मनोहर मुख पर लाल-लाल होंठ—ऐसा प्रतीत होता है मानो कमल के साथ

लाल-लाल मधुरी फूल खिले हों। नेत्र भौंरों जैसे हैं, जो मुख-कमल के मधुपान में मस्त हैं। भौंहों की बात मत पूछो, कामदेव ने काजल की डोर से अपना धनुष जोड़ा है। भला ऐसे मादक सौन्दर्य को दूति से सुनकर उसके उपभोग में कृष्ण विलम्ब क्यों करता! कवि ने 'ए कान्ह ए कान्ह तोरि दोहाई' तथा 'सुनि कान्ह कमल गमने' कथन-द्वारा इस रूप-चित्र को कामोत्तेजक बना दिया है। साथ ही यह रूप-चित्रण आलंकारिक है। यद्यपि उपमान अधिकतर परम्परागत ही हैं, पर योजना अनूठी है।

यह रूप असाधारण है, चिरनवीन और त्रिभुवन-विजयी प्रभावकारी है। ब्रह्मा ने चंद्रमा के सार-तत्त्व से नायिका का मुख गढ़ा है! उसकी दोनों जंघाएँ केले के तने-जैसी गोरी और सुडौल हैं। ऐसी सुन्दर जंघाओं के ऊपर सिंह-जैसी पतली कमर! सुमेरु-सदृश वक्षस्थल शोभित है। उस पर दो कुच-कमल खिले हुए हैं—बिना नाल के। मणिमयहार की गंगा-जलधार के कारण ही ये कमल कभी मुरझाते नहीं:

> **कनक कदलि पर सिंह समारल तापर मेरु समाने।**
> **मेरु ऊपर दुइ कमल फुलायन नाल बिना रुचि पाई।**
> **मनिमय हार धार बहु सुरसरि तओ नहिं कमल सुखाई।**

रूपकातिशयोक्ति, रूपक, उत्प्रेक्षा, सारंग आदि शब्दों के प्रयोग से यमक आदि अलंकारों के प्रयोग से कवि ने सुन्दर रूप-वर्णन किया है। जायसी-द्वारा वर्णित पद्मावती के सौन्दर्य की तरह विद्यापति की नायिका का सौन्दर्य भी विश्व-व्यापी प्रभाव रखता है:

> **जहाँ-जहाँ पग जुग धरई तहिं तहिं सरोरुह झरई।**
> **जहाँ-जहाँ झलकत अंग, तहिं तहिं बिजुर तरंग॥**
> **जहाँ-जहाँ नयन बिकास तहि-तहि कमल प्रगास।**

हृदय में बैठ जाने वाला यह रूप जन्मभर निहारते रहने पर भी कभी तृप्ति नहीं होती, मधुर बोल कानों को नहीं अघाते। नायिका की लज्जायुक्त अदाएँ, हाव-भाव कुछ ऐसे हैं कि अंग-सुषमा की एक झलक ही मिलती है और मेघमाला में चमकने वाली बिजली के समान वही एक झलक हृदय को साल जाती है: आधे नयन-कटाक्ष, आधी मुख-मुस्कान और आधा ही खिसकने से कुचों का स्वल्प दर्शन ही काम-दग्ध करने लगा:

> **सजनी भल कए पेखल न भेल।**
> **मेघमाल सयँ तड़ितलता जनि हृदय सेल दई गेल।**
> **आध आँचर खसि, आध वदन हहि आधहि नयन तरंग।**
> **आध उरज हेरि, आध आँचर भीर, तब धरि दग्धे अनंग।**

अंगों में कवि मुख के साथ कुचों के वर्णन से नहीं अघाता। कटाक्ष, मुस्कान, कुचों

को बार-बार ढकना आदि मादक चेष्टाएँ और हाव-भाव तथा मुख-कुच आदि का अत्यधिक रोमानी और अलंकृत वर्णन कवि के रूप-चित्रण को अत्यन्त मादक और माँसल बना देता है।

नायिका की रूपासक्ति : विद्यापति ने नायक कृष्ण का स्वतंत्र रूप-चित्रण विशेष नहीं किया तथापि राधा या नायिका की रूपासक्ति के वर्णन में कृष्ण के रूप-लावण्य की भी सुन्दर छटा कई पदों में प्रकट हुई है। विद्यापति के शृंगार-प्रेम का आधार रूप ही है। नायक के अपरूप और अपनी रूपासक्ति का अपनी सखी से राधा यों वर्णन करती है।

ए सखि पेखलि एक अपरूप। सुनइत मानबि सपन सरूप।
कमल जुगल पर चांदक माला। तापर ऊपजल तरुन तमाला॥
तापर बेढिल बिजुरि लता। कालिन्दी तट धीरे चलि जता।

कृष्ण-दर्शन की चाट लग जाती है! नायिका कामदेव के बाणों से मूर्च्छित हो मर्मांतक पीड़ा सहती है। वह सुरपति इन्द्र से सहस लोचन और गरुड़ से पंख माँगती है ताकि नंदनंदन को किसी तरह देख आए :

'कानु हेख छल मन बड़ साध। कानु हेरइत भेल अत परमाद।'
सुरपति पए लोचन मांगओं गरुड़ मांगओं पांखि।
नंदक नन्दन हौं देखि आवओं मन मनोरथ राखि॥

आसक्ति, उत्सुकता, धृति, अभिलाषा, दैन्य-निवेदन आदि अनेक संचारी भावों का संचार यहाँ शृंगार रस को पुष्ट कर रहा है।

पूर्वराग : यही रूपासक्ति पूर्वराग बन जाती है। लगालगी दोनों ही ओर हो जाती है। दोनों काम-बाण से बिंध जाते हैं। मार्ग में मिलन होता है, पर क्षणिक साक्षात्कार ही, क्योंकि लोकलाज अधिक आगे बढ़ने नहीं देती। पर राधा 'अपरूब चातुरि' है और कृष्ण नागर। वह मिलने के अवसर और उपाय निकालने में चतुर है, तो कृष्ण भी कम नहीं। मूक 'दरस-मिलन' 'सैन-बैन' और 'हास-परिहास' में बदल जाता है। कृष्ण रोकने-टोकने लगते हैं। नायिका सखी से कहती है : कृष्ण भी कैसा है! एक दिन तो वह देख-देख और हँस-हँसकर चला गया, दूसरे दिन मुरली की धुन में नाम पुकारने लगा और आज तो उसने बिल्कुल पास आकर परिहास किया! वह चतुरों का सम्राट है।

एक दिन हेरि-हेरि हँसि-हँसि जाय। अरु दिन नाम धए मुरलि बजाय।
आजु अति नियरे करल परिहास। न जानिए गोकुल ककर विलास॥

दूति-प्रसंग और मिलन : सामाजिक बन्धन, लोकलाज, परिजन-भय इस मिलन में सबसे बड़ी बाधा है। इसीलिए दूति नियोजित की जाती है। दोनों ओर की दूतियाँ दोनों को मिलाने में सफल होती हैं। दूति नायिका को काम-शास्त्र के रहस्य बताती है। विद्यापति के पदों में कामशास्त्र के रहस्यों का उद्घाटन हुआ

है। काम-शास्त्र के अनुसार नायिका का लजाना, झिझकना, कटाक्ष फेंकना, अर्द्ध-कुच ढकना-दिखाना, नीबी-बंध दृढ़ करना, रोष-सा जतलाना आदि चेष्टाएँ और हावभाव कामोत्तेजक होते हैं।

विद्यापति के श्रृंगार-वर्णन में स्थूल उपभोग एवं रति-क्रीड़ा का पाठ ही सर्वत्र दिखाई देता है। यह मिलन दो प्रेमी आत्माओं का भाव-मिलन नहीं, अपितु शारीरिक मिलन है—ऐन्द्रिय उद्वेलन से पूर्ण ! इसमें रति-क्रीड़ा उभर आई है, प्रेम की भावना लुप्त हो गई है। इसी से यह अश्लीलता की सीमा को लांघ गया है। मांसल मिलन के नग्न चित्रण से कोई साहित्य महान् नहीं बन सकता। विद्यापति को महाकवि कहना महाकवि के गौरव को बट्टा लगाना है। उनका श्रृंगार कामवासनापूर्ण है। उससे जीवन की स्वस्थ प्रेरणाएँ और उदात्त भावनाएँ जाग्रत नहीं होतीं। जो ऐन्द्रिक उद्वेलन में ही आनन्द लेते हैं, वे ही विद्यापति को महाकवि का दर्जा प्रदान कर सकते हैं। इसमें संदेह नहीं कि विद्यापति में अपूर्व काव्य-प्रतिभा थी। वे उच्चकोटि के कलाकार भी माने जा सकते हैं, उनकी कविता, उनके पद सुन्दर काव्य भी कहे जा सकते हैं, पर महान् काव्य नहीं कहला सकते। विषय-पक्ष की ही दुर्बलता के कारण विद्यापति के काव्य को हम प्रथम श्रेणी का महान काव्य तो क्या द्वितीय श्रेणी का उत्तम काव्य मानने में भी संकोच अनुभव करते हैं।

इस शारीरिक मिलन में चुम्बन, परिरंभन ही नहीं, एकदम नीबी बन्धन खोले जाते हैं, कुच-मर्दन होता है, हार टूटते हैं, वस्त्र मलीन हो जाते हैं और रति, विपरीत-रति सब खुलकर खेलती है। कवि को रति-रण प्रकट करने में बड़ा आनन्द आता है, इसी से उसने पचासों पदों में सुरत का नग्न चित्रण किया है। कहीं नायिका स्वकीया दिखाई देती है, कहीं परकीया है। कवि ने स्वच्छन्द-बिहार और परकीया रति में अधिक रुचि ली है। नायिका अधिकतर नवोढ़ा अबोध है, पर एक बार के समागम के पश्चात् वह भी सुरसिका प्रतीत होती है। सुरत-संभोगिता रति-चिह्न नायिका का बीसियों पदों में वर्णन हुआ है। कहीं वह कृष्णाभिसार करती है, कहीं शुक्लाभिसार। कहीं वह सुरतांत रति-चिह्ना विदग्धा है, कहीं खण्डिता।

इस प्रकार विद्यापति के संयोग-श्रृंगार में मादक सौन्दर्य, यौवन-विलास, रूपासक्ति, विलासपूर्ण उभोग ही मुख्य लक्ष्य दिखाई देता है। एकान्तिक प्रेम-विलास के सिवाय उसमें जीवन की किसी प्रेरणादायक प्रवृत्ति के दर्शन नहीं होते। इस प्रकार के कामुकतापूर्ण श्रृंगार रस को रस का उदात्त रूप नहीं माना जा सकता। यह रस तो है, पर है कोरा अनुरंजनकारी। इस श्रृंगार में रूप-चित्रण, रूप-दर्शन, रूप-लिप्सा, मिलनोत्कंठा, दूति-योजना, प्रिया-प्रतीक्षा, अभिलाषा, प्रथम समागम-भय-आशंका, सखी-प्रबोध, अभिसार, मिलन, रति-रण, विपरीत

रति, मान, मान-भंग, उपालम्भ, सुरतांत, खंडिता आदि अनेक पक्षों का प्रकाशन हुआ है, पर उसमें उदात्त भावनाओं का अभाव ही है।

वियोग-वर्णन : विद्यापति सौन्दर्य-यौवनोपभोग के ही कवि हैं, इसी से उनकी पदावली में संयोग की ही बहुलता है। किन्तु संयोगावस्था के बीच-बीच में भी कुछ क्षणिक वियोग की स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। आरम्भिक पूर्वराग दशा, मान, प्रिय की बेवफाई का दुःख, रति-कलह आदि ऐसी ही स्थितियाँ हैं। संभोग-चित्रण में आनन्द पाने वाले विद्यापति ने इन स्थितियों का वर्णन स्पष्टतः संयोग को ही तीव्रता प्रदान करने के लिए किया है, इसी से विद्यापति का पूर्वराग मानादि वर्णन संयोगान्तर्गत ही आता है। विद्यापति के संभोग-बहुल शृंगार में सारी-सारी रात काम-केलि के उपरांत भी नायक-नायिका बिछुड़ने में विछोह की असीम पीड़ा का अनुभव करते हैं। अतः क्षणिक विरह भी बड़ा कष्टकर है। वस्तुतः यह पीड़ा भी काम-पीड़ा है। फिर भी कुछ पदों में प्रवास-जन्य विरह का भी अच्छा वर्णन हुआ है। **प्रवस्यत्पतिका** का दुख देखिए : प्रिय प्रदेश जाने वाले हैं, यह जानकर नायिका सखी से अपनी उत्सुकता व्यथा कहती है—"हे सखी ! तुम्हीं उन्हें न जाने का उपदेश दो। यह विदेश जाने का समय नहीं। मैं वियोग-अग्नि में जल मरूँगी।" पर प्रिय चले ही गए। **प्रोषितपतिका** के दुःख का ठिकाना नहीं रहा। उसे दुःख यह है कि प्रिय चुपचाप रात को सोता छोड़कर चले गए। सूनी सेज, सूना घर उसे काट खाने को दौड़ते हैं। **प्रतीक्षा करते और अवधि गिनते-गिनते** महीनों बीत गए। 'माधवमास' की माधव तिथि (एकादशी) को माधव आने की अवधि निश्चित करके गए **थे** ! पर आने का नाम ही नहीं लिया। मन में यों अभिलाषा होती है कि उड़कर वहीं प्रिय के पास चली जाऊँ।

विरह-वर्णन में कवि ने ऋतु-वर्णन और बारहमासा वर्णन भी किया है। प्रत्येक ऋतु विरहिणी का काम-ज्वर तीव्र करने आती है। आषाढ़ की घटा, सावन की वर्षा और मोर-दादुर पुकार सब प्रिय के बिना भयावह है। दादुर की 'टर-टर' ऐसी लगती है, मानो कामदेव बन्दूक चला रहा हो। वर्षा का चतुर्मास विरहिणी को विशेष दुःखदायी प्रतीत होता है—

आबए साओन बरिख भाओन, घन सोहाओन बारि।
पंचसर-सर छुटत रे कईसे जीअए बिरहिन नारि॥

प्रवास-विरह के इन पदों में आशा, निराशा, अभिलाषा, उपालम्भ, दीनता, पश्चात्ताप, आत्मदोष-दर्शन, विषाद, उन्माद, जड़ता, व्याधि आदि अनेक भाव-दशाओं तथा परिस्थितियों का चित्रण हुआ है। यद्यपि विद्यापति के विरह-वर्णन में सूरदास, नंददास आदि आगामी कृष्ण-कवियों जैसी व्यापकता और मनोवैज्ञानिक गहराई नहीं है, तथापि कई पदों में राधा या नायिका के विरह का सुन्दर प्रकाशन हुआ है। एक-दो पदों में कवि ने कृष्ण के विरह का भी वर्णन किया है। इस विरह

का पर्यवसान भी विद्यापति ने मिलन में किया है। कवि ने अपने प्रायः समस्त विरह-पदों में विरहिणी बाला को आशा बँधाई थी। अतः विरह-वर्णन का मिलन में पर्यवसान करके कवि ने विरहिणी के प्रति अपने कर्त्तव्य को तो निभाया ही है; साथ ही पुनः रति-क्रीड़ा के वर्णन का भी अवसर पा लिया है जिसमें कवि की मुख्य प्रवृत्ति है।

भाषा-शैली : विद्यापति उच्चकोटि के कलाकार, संगीतज्ञ रसिक कवि थे। विद्यापति पदावली का कलापक्ष भावपक्ष से भी बढ़ा-चढ़ा है। भावरस में तो एकरसता पाई जाती है—सर्वत्र ऐकान्तिक शृंगार का सीमित रूप है, किन्तु कलापक्ष में विविधता है। विद्यापति की कलात्मक अभिव्यंजना का प्रमुख साधन है अलंकार। सभी प्रकार के शब्दार्थालंकार बड़ी खूबी के साथ 'पदावली' में प्रयुक्त हुए हैं। शब्दालंकार में अनुप्रास की छटा पंक्ति-पंक्ति में है तो अर्थालंकारों में उपमामूलक अलंकार सर्वत्र पाए जाते हैं। उनके पदों से कई-कई अलंकार ऐसे गुंथे रहते हैं जैसे आभूषणों में मोती-माणिक्य। अनुप्रास और वीप्सा की छटा देखिए—

नन्दन-नन्दन कदम्बक तरु तर, धिरे-धिरे मुरली बजाव।
समय संकेत्त निकेतन बइसल, बेरि-बेरि बोल पठाव॥

ऐसी सैंकड़ों पंक्तियाँ प्रस्तुत की जा सकती हैं जिनमें छेकानुप्रास, वृत्त्यानुप्रास, श्रुत्यनुप्रास की छटा पाई जाती है। अनुप्रास और वीप्सा दोनों भाषा में प्रवाह, माधुर्य और संगीतात्मकता का गुण भरते हैं। विद्यापति की मैथिली भाषा में भी ब्रजभाषा का-सा कोमल माधुर्य इसी कारण पाया जाता है क्योंकि कवि ने माधुर्य-व्यंजक अनुप्रास, वीप्सा, ध्वन्यर्थव्यंजना आदि शब्दालंकारों का प्रचुर प्रयोग किया है।

सादृश्यमूलक अलंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक सर्वाधिक प्रयुक्त हुए हैं। उत्प्रेक्षा का बड़ा अनूठा प्रयोग किया है। यद्यपि अधिकांश उपमान कवि-परम्परा-भुक्त ही हैं, पर उनकी योजना में मौलिकता दिखाई देती है। कुछ उदाहरण देखिए—

चिकुर गरए जल धारा। जनि मुख ससि डर रोअए अंधारा॥

सद्यः स्नाता के बालों से जलधार गिर रही है। कवि ने उत्प्रेक्षा की है कि मानो मुख-रूपी चन्द्रमा के भय से अंधकार रो रहा हो। कवि ने मेंढ़कों की 'टरटर,' ध्वनि से विरहिणी के लिए कामदेव की बन्दूक चलने की मौलिक उत्प्रेक्षा की है। सौन्दर्य-वर्णन में कवि ने उत्प्रेक्षाओं की झड़ी लगा दी है। उपमा अलंकार का भी सब रूपों में प्रयोग हुआ है : **'पहिल बदरि सम पुन नवरंग'** (कुच)।

इन पंक्तियों में तीन विरोधी उपमानों को एकत्रित करने से विरोधाभास-युक्त उपमा-रूपक का सुन्दर प्रयोग देखिए :

चिकुर निकर तमसप, पुनु आनन पुनिम ससी।
नयन पंकज के पति आओल एक ठाम रहु बसी।।

विद्यापति पदावली में रूपक, रूपकातिशयोक्ति, व्यतिरेक, दीपक, प्रतीप, विरोधाभास, विशेषोक्ति, दृष्टांत, एकावली आदि अनेक अलंकारों के प्रयोग मिलते हैं। 'पदावली' में लोकगीत-परंपरा और साहित्यिक गीत-शैली दोनों का समावेश हुआ है। इसी से विद्यापति की भाषा में लोकोक्तियों का साहित्यिक रूप अर्थान्तरन्यास अलंकार के रूप में खूब पाया जाता है। निम्न पद में अर्थान्तरन्यास का प्रभूत प्रयोग देखिए :

जौवन रूप अछल दिन चारि। से देखि आदर कएल मुरारि।।
अब भेल झाल कुसुम रस छूछ। वारि बिहून सर केओ नहि पूछ।।
हमरि ए बिनति कहब सखि रोय। सुपुरुष बचन अफल नहि होय।।
जावे रहइ धन अपना हाथ। ताबे से आदर कर संग साथ।।
धनिकक आदर सब तहँ होय। निरधन बापुर पुछय न कोय।।

अनेक पंक्तियों में लोकोक्तियाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार के रूप में सूक्तियाँ बन गई हैं।

विशेषण-विपर्यय या परिकर अलंकार का प्रयोग भी अनायास हो गया है : **'प्रथम समागम भूखल अनंग'** या **"चतुरपन होएत मलान'**।

मानवीकरण का प्रयोग खूब मिलता है। कवि ने प्रकृति का अनूठा मानवीकरण किया है : **नाचहु रे तरुनी तजहु लाज। आएल बसंत रितु बनिकराज।।** कहीं-कहीं भावों का मानवीकरण भी मिलता है, जैसे **"जऊबन बांधल फेद,"** अर्थात् यौवन ने कमर कस ली।

इस प्रकार विद्यापति एक प्रतिभासम्पन्न कलाकार थे। उनके पदों में अलंकारों की भव्य छटा है। बिना अलंकारों के उनकी वाणी ही नहीं फूटती थी। अलंकार अनायास ही उनकी अभिव्यक्ति का अभिन्न अंग बने हुए हैं।

भाषा-शैली की अन्य विशेषताएँ : विद्यापति ने लोकप्रचलित मैथिली भाषा की स्वाभाविक मिठास को साहित्यिक सरसता प्रदान करके हिन्दी साहित्य में काव्य-भाषा-निर्माण का वही कार्य किया है, जो उनके बाद काव्य-भाषा-ब्रज के निर्माण में सूरदास ने किया। विद्यापति का महत्त्व इसलिए और भी है, क्योंकि जहाँ सूरदास से पूर्व ब्रज भाषा तथा विद्यापति-द्वारा प्रवर्तित मैथिली भाषा की समृद्ध परम्परा दिशाग्रहण के लिए प्राप्य थी, वहाँ विद्यापति का निर्माण-कार्य बहुतांश में मौलिक है। विषय-वस्तु, भाव और शैली का आदर्श विद्यापति ने भी अवश्य ही संस्कृत-कवि जयदेव से प्राप्त किया, पर भाषा के 'सब जन मिट्ठ देसिल बअना' रूप-निर्माण का कार्य विद्यापति की मौलिक देन है। प्रसाद और माधुर्य से ओतप्रोत उनकी भाषा में सरलता, स्वाभाविकता, संगीत-माधुर्य, प्रवाह, कोमलता

आदि अनेक गुण हैं। उन्होंने न-केवल भाषा को कोमल-मधुर बनाया, अपितु लाक्षणिक प्रयोगों, बिम्ब-योजना, अलंकरण, संगीतमय पदबद्धता आदि से उसे शक्ति-सम्पन्न बनाकर खूब समृद्ध किया। **'श्रवनक पथ दुहु लोचन गेल', 'गुरुजन नयन अंधकरि आओल,' 'दूध की माखी दूति भेल,' 'सालि रहल हिय कांट', 'रेख पखान'** आदि अनेक लाक्षणिक प्रयोग और मुहावरे भाषा को सशक्त बनाते हैं।

विद्यापति एक बहुत बड़े शब्द-शिल्पी थे। उन्होंने न-केवल अलंकार चमत्कार के लिए अनूठा शब्द-चयन किया है, अपितु भाव, विषय-वस्तु प्रसंग के अनुकूल उपयुक्त शब्दों के प्रयोग में भी उन्होंने अपूर्व कुशलता दिखाई है। मुनियों के मन में हलचल उत्पन्न करने वाले कामदेव को 'मनमथ' कहा गया है, पर हृदय को बेंधने वाले कटाक्षों के लिए 'पंचबाण' शब्द प्रयोग किया गया है :

कामिन करए सनाने। हेरतहि हृदय हनए पंचबाने।

यहाँ सुन्दरी के लिए कामिनी और कामदेव के लिए 'पंचबाने' का प्रयोग कितना सार्थक एवं उपयुक्त है! प्रथम समागम के समय किशोरी नवोढ़ा के लिए 'बाला' शब्द ही अति-उपयुक्त था : **'छुबइत बालि मलिन भइ गेल।'**

विद्यापति की भाषा में **चित्रोपमता** भी खूब है। नायिका के रूप-सौन्दर्य-चित्रण में भाषा की यह विशेषता विशेष प्रकट हुई है, कैसे सजीव चित्र हैं :

(क) **'आड़ बदन कए मधुर हास दए सुन्दरि रहु सिर नाई।'**

(ख) **'गेलि कामिनी गजहु गामिनी बिहसि पलटि निहारि।**
जोरि भुज जुग मोरि बेढल ततहि वदन सुछन्द॥

विद्यापति ने भावों, रूप-चेष्टाओं और मुद्राओं के सजीव चित्र प्रस्तुत किये हैं। इस प्रकार विद्यापति का कलापक्ष अत्यन्त समृद्ध है। अलंकारों, मुहावरों-लोकोक्तियों, लाक्षणिक प्रयोगों, साभिप्राय विशेषणों, उपयुक्त शब्द-चयन आदि से उन्होंने अपनी भाषा को पूर्ण व्यंजक एवं कलात्मक बनाया है। निस्संदेह विद्यापति एक बहुत बड़े कला-साधक थे।

●●

2

और कवि गढ़िया, नन्ददास जड़िया

1. उपक्रम
2. नन्ददास की चित्रकारी
3. प्रवाह और संगीत-माधुर्य
4. भावानुरूपता
5. अनूठा शब्द-चयन
6. लोकोक्ति, मुहावरे और लाक्षणिक प्रयोग
7. अलंकार-योजना

ब्रजभाषा के रत्नों में नन्ददास का प्रमुख स्थान है। ब्रजभाषा को साहित्यिक, कलात्मक रूप देने, उसे सरस, मधुर और शक्ति-सम्पन्न बनाने में सूरदास, रसखान, मतिराम, घनानन्द, और आधुनिक युग के भारतेन्दु, रत्नाकर आदि के साथ नन्ददास का महत्त्वपूर्ण योगदान है। नन्ददास ब्रजभाषा के चितेरे थे। भाषा पर उनका अपूर्व अधिकार था। इसी कारण उनके सम्बन्ध में "और कवि गढ़िया, नन्ददास जड़िया" की उक्ति प्रचलित हो गई। वैसे भी नन्ददास ने अपने काव्य के भाव, विषयादि तो परम्परा से ही प्राप्त किये थे, उनके प्रयोग में नन्ददास की कोई मौलिकता नहीं अपितु अपनी भाषा-शक्ति और जड़ियापन के गुण से उन्होंने अपने काव्य को चमका डाला।

नन्ददास की चित्रकारी—स्वर्णकार दो प्रकार के होते हैं—एक सोने से जेवर गढ़ कर बनाते हैं और दूसरे वे जो उन आभूषणों में कुंदन से रत्नों को जड़ते हैं। यह बारीक कलापूर्ण काम उन आभूषणों की शोभा बढ़ा देता है। वास्तव में ही नन्ददास ने अपने ब्रजभाषा के कलात्मक प्रयोग में एक चित्रकार की-सी कारीगरी दिखाई है। 'रासपंचाध्यायी' में तो एक-एक शब्द नगीने की तरह जड़ा हुआ है। नन्ददास की 'भंवरगीत', 'रासपंचाध्यायी', 'रूपमंजरी' आदि प्रौढ़ रचनाओं में भाषा की चित्रकारी, ध्वनियों का अनूठा सामंजस्य, संगीत-माधुर्य, नादसौन्दर्य और भाषा-शक्ति का पूर्ण परिचय मिलता है। जैसे चित्रकार सुन्दर रंग लगा-लगा कर चित्र में भाव भरता है, बेल-बूटों से उसकी शोभा बढ़ाता है, इसी प्रकार नन्ददास जी का उद्देश्य केवल भाव-प्रकाशन-मात्र नहीं था, बल्कि

उनमें शोभा भरना और तीव्रता लाना भी था। उन्होंने शब्द-चयन में अपनी करामात दिखाई है।

जिस प्रकार सुन्दर हार बनाने वाला मोती, माणिक्य और हीरे के साथ नीलम, पन्ना और मूंगे को तराश-तराश कर रंग में रंग का जोड़ मिलाता है और बड़ी सावधानी से हार को गूंथता है, उसी प्रकार नन्ददास जी ने छांट-छांट कर सुन्दर ध्वनिपूर्ण मधुर और सानुप्रासिक वर्णों की मालाएं गूंथी हैं। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में "शब्द-अनुप्रासों की झंकार से नन्ददास ऐसे वातावरण की सृष्टि करते हैं कि पाठक अभिभूत हो जाता है। शब्दों की ध्वनि और अर्थ की गंभीरता एक-दूसरे से स्पर्द्धा करते हुए प्रकट होते हैं। अष्टछाप के किसी दूसरे कवि ने शब्द-गठन और ध्वनि-निर्माण की ऐसी क्षमता नहीं दिखाई।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० 191)।

वास्तव में ही 'कुटिल अलक मुख कमल मनों आलि अवलि विराजै', 'झुनुक झुनुक पुनि छबिलि भाँति सब प्रकट भईं जब', 'इत महकति मालती चारु चम्पक चित चोरत, उत घनसार तुषार मलय मंदार झकोरत', 'नव कुंकम घनसार चारु चर्चित तन चन्दन', 'गुंजत मंजु अलिन्द बीन जनु बजत सुहाई,' 'मनहुं बितन बितानुसुदेस तनाब तनाई,' 'कोमल मलयसमीर छबिन की महाभीर जहँ' जैसे प्रयोग बड़ी सरलता से लिखने वाला शब्द-शिल्पी नन्ददास सच्चा भाव-शिल्पी भी है और वह शब्द-संगीत के साथ भाव-संगीत का भी गुणी है।

प्रवाह और संगीत-माधुर्य—नन्ददास की भाषा का प्रवाह और संगीत-माधुर्य संस्कृत के 'गीत-गोविन्द' और विद्यापति की पदावली की याद दिलाते हैं। निस्संदेह नन्ददास एक जागरूक शब्द-शिल्पी कवि हैं। उनका शब्द-चयन कितना अनूठा है, कुछ उदाहरणों से देखिए—

नूपुर कंकन किंकिनि करतल मंजुल मुरली।
ताल मृदंग उपंग चंग एकहि सुर जुरली॥
मृदुल मुरज टंकार तार झंकार मिलि धुनि।
मधुर जंत्र कीसार भँवर गुंजार रली पुनि॥ (रासपंचाध्यायी)

उपर्युक्त पंक्तियों में 'कंकन' के साथ किंकिनि की ध्वनि, अनुप्रास की मिठास कैसी मधुरिमा घोल रही है और सौन्दर्य की सृष्टि कर रही है। कंठ्य और अनुनासिक वर्ण रकार और लकार आदि के साथ किस ख़ूबी से जड़े हुए हैं। प्रथम पंक्ति की 'मंजुल मुरली' दूसरी पंक्ति की 'सुर जुरली' के पाँच वर्णों के तुक-साम्य के साथ ध्वनि में कैसा सुन्दर साम्य बन गया है! 'मृदुल मुरज टंकार तार झंकार मिलि धुनि' में भी 'टंकार' और 'झंकार' यदि 'पन्ना' और 'नीलम' हैं तो बीच में तार, और आदि में 'मृदुल मुरज' हीरे हैं! नन्ददास के 'जड़ियापन' में क्या संदेह हो सकता है?

उपर्युक्त पंक्तियों में संगीत-वाद्यों की सूची होते हुए भी चयन बहुत चारु है। शब्द-ध्वनियों में ही रास-नृत्य का वातावरण सजीव हो उठा है। नन्ददास की ध्वनि-निर्माण की क्षमता इस उदाहरण से पूर्णतया प्रमाणित होती है।

नन्ददास का 'जड़ियापन' इससे भी अधिक वहाँ दिखाई पड़ता है जहाँ वे मधुर वर्णों के साथ परुष वर्णों का जोड़ मिलाते हैं। निम्न पंक्तियाँ देखिए—

तैसिय मृदु पद पटकनि चटकनि कठतारन की।
लटकनि मटकनि झलकनि कल कुंडल हारन की।। (रासपंचाध्यायी)

इसमें कठोर वर्ण तवर्ग 'त', 'म', 'स', 'प', 'क', 'च', 'ल', 'न', आदि के बीच में इस प्रकार पिरोए हुए हैं कि अद्‌भुत माधुर्य एवं लालित्य उत्पन्न हो रहा है। कठोर वर्ण भी यहाँ ध्वनि में कैसी मिठास पैदा कर रहे हैं! ध्वन्यात्मकता के साथ-साथ उपर्युक्त पंक्तियों में रास-नृत्य का कैसा चित्रात्मक और गतिमय वर्णन पाया जाता है!

नन्ददास न-केवल सुन्दर शब्दों के मोती, माणिक्य, हीरा, नीलम आदि जोड़ते हैं, अपितु हार बन जाने पर उस पर पालिश भी करते हैं। यही कारण है कि उनके पदों में माधुर्य उच्च श्रेणी का पाया जाता है। इनके काव्य में माधुर्य और प्रसाद गुणों की प्रधानता है। उनके शब्दों में लघुवर्ण ही अधिक हैं। प्रयत्नपूर्वक वे दीर्घ वर्णों का कम प्रयोग करते हैं। ह्रस्ववर्ण और अनुस्वार तथा अनुनासिक पदों में विचित्र कांति लाते हैं। इनके शब्द एक तो अनुप्रास के द्वारा एकरूपता लाते हैं, दूसरे, कोमलता और माधुर्य उत्पन्न करते हैं, तीसरे संगीतात्मक ध्वनि पैदा करते हैं, चौथे अलंकारों से सजे होते हैं, पांचवें, चित्रात्मकता प्रस्तुत करते हैं, छठे, प्रसादगुणपूर्ण होने के कारण सर्वत्र रसात्मकता उत्पन्न करते हैं, और सातवें, भाषा में अबाध प्रवाह लाते हैं। उनके शब्द "मोतियों की तरह रेशम पर ढलकते हैं"।

भावानुरूपता—नन्ददास ने भाव और भाषा का जैसा सुन्दर निर्वाह किया है, वह अनूठा ही है। भाव के साथ भाषा का भी सौष्ठव काव्य में माधुर्य के साथ सौन्दर्य का संयोग कर देता है। डॉ० रामकुमार वर्मा 'रासपंचाध्यायी' के सम्बन्ध में कहते हैं—'प्रत्येक पद मानो अंगूर का एक गुच्छा है, जिसमें मीठा रस भरा हुआ है। शब्दों में कोमलता भी बहुत है। पंक्तियों में न तो संयुक्ताक्षर हैं, न लम्बे-लम्बे समास ही। शब्दों की ध्वनि ही अर्थ का निर्देश करती है। जो कुछ कहा गया है, वह भी बहुत थोड़े शब्दों में सुन्दरता के साथ—'अर्थ अमित आखर अति थोरे'। वास्तव में ही नन्ददास की भाषा में भावों के अनुसार शब्दों का प्रयोग एक बड़ा भारी गुण है। क्या 'रासपंचाध्यायी' और क्या 'भँवरगीत', 'रुक्मिणी मंगल' आदि दूसरी रचनाएँ सर्वत्र भावानुरूपता भाषा की विशेषता रही है। जिस स्थल पर शृंगार के संयोग-वियोग आदि का वर्णन है वहाँ भाषा बहुत भाव-प्रसारिणी व

भाव-प्रवाहिणी हो जाती है, जहाँ तर्कपूर्ण स्थल हैं वहाँ भाषा तर्क तथा पाण्डित्य-पूर्ण है, और जहाँ गोपियों के उपालंभ की बात है, वहाँ भाषा की व्यंजना विदग्धता-पूर्ण हो जाती है। भावानुरूप शब्दों के प्रयोग तथा शब्दों के द्वारा भाव-चित्र उपस्थित करने की शक्ति नन्ददास में पूरी तरह पाई जाती है। 'रासपंचाध्यायी' में जब गोपियां कृष्ण के पास जाती हैं, तो कृष्ण की भाव-मग्नता के भावचित्र को अंकित करने में नन्ददास की मधुर-भाषा पूर्ण समर्थ रही है, देखिए—

तिनके नूपुर नाद सुने जब परम सुहाये।
तब हरि के मन नैन सिमिट सब स्रवननि आए॥

इन पंक्तियों की पदावली तो भाव-पूर्ण है ही साथ ही 'केन्द्रीभूत' के अर्थ में प्रयुक्त 'सिमटि' शब्द पर इन पंक्तियों का सौन्दर्य भी जैसे सिमट गया हो। इसी प्रकार कृष्ण के उपदेश को सुनकर गोपियों के मूक भाव तथा उनकी स्थिति का एक पूर्ण चित्र कवि ने शब्दों द्वारा खींचा है—

मंद परसपर हंसीं लसीं तिरछी अँसियाँ अस।
रूप उदधि इतराति रँगीली मीन पाँति जस॥ (रासपंचाध्यायी)

इन पंक्तियों में एक-एक शब्द इस प्रकार चुन-चुन कर रखा गया है, कि प्रत्येक शब्द प्रसंगानुकूल भाव तो प्रकट करता ही है, साथ ही उपमा-शक्ति द्वारा एक चित्र-सा भी आँखों के आगे नाचने लगता है। 'इतराति' शब्द कितना सारगर्भित है !

तर्कपूर्ण स्थलों पर भाषा कैसी तर्क-सम्मत हो जाती है, इसके उदाहरण 'भँवर-गीत' में देखिए—

जो उनके गुन नाहिं और गुन भए कहाँ ते।
बीज बिना तरु जमें मोहि तुम कहौ कहाँ ते॥

उपालंभपूर्ण प्रसंग में वचन की विदग्धता के उदाहरण देखिए। कृष्ण के छलिया रूप को गोपियाँ उसके शिशुपाल के प्रसंग से सिद्ध करती हुई कहती हैं—बेचारे शिशुपाल का क्या दोष था, कृष्ण ने कपट करके उसकी दुलहिन का अपहरण कर लिया—

दलबल जोरी बरात कों ठाढौ हो छवि बाढ़ि।
मनो छल करि दुलही हरी छुधित ग्रास मुख काढ़ि॥

'छुधित ग्रास मुख काढ़ि' भी कैसा सुन्दर लाक्षणिक प्रयोग है !

गोपियाँ कृष्ण-कुब्जा की जोड़ी पर कैसी वक्रतापूर्ण व्यंगोक्ति कहती हैं—

गोकुल में जोरी कोऊ पावत नाहिं मुरारि।
मनो त्रिभंगी आपुहैं करी त्रिभंगी नारि॥ (भवँरगीत)

गोपियों के शोकपूर्ण आत्मनिवेदन के प्रसंग पर किस प्रकार भाषा उसी भाव के अनुरूप हो गई है, इसका उदाहरण 'भवँरगीत' की निम्न पंक्तियों में देखिए, विह्व-

लता को प्रकट करने में भाषा कितनी समर्थ है—

अहो ! नाथ ! रमानाथ और जदुनाथ गुसाईं।
नंदनंदन बिडरात फिरत तुम बिनु बन गाईं॥
काहे न फेर कृपालह्वै गौ ग्वालन सुधि लेहु।
दुख जल-निधि हम बूड़हिं कर अवलम्बन देहु॥ निठुरह्वै कहा रहे ?

भावों के अनुरूप भाषा में कितनी तरलता, प्रवाह और भावों को तीव्र करने की शक्ति है। अंतिम पंक्ति के रूपकालंकार ने उसे और भी सजीवता और सौन्दर्य प्रदान कर दिया है। तात्पर्य यह है कि नन्ददास की भाषा सदैव भाव-प्रसंगानुरूप रही है।

अनूठा शब्द-चयन—ननन्ददास की भाषा उन्हें "और सब गढ़िया नन्ददास जड़िया" के पद के योग्य अवश्य बना देती है। वे किसी शब्द को उपयुक्त स्थल पर बड़ी मनोहरता से जड़ देते हैं। उदाहरण के लिए 'गुन' शब्द लिया जा सकता है। भंवरगीत के 19, 20 और 21वें छन्दों में 'गुन' शब्द का सौन्दर्य संदर्भ के अनुसार कितने अर्थ और कितने रूपों में है—

1. जो उनके गुन नाहिं और गुन भये कहां ते।
2. वा गुन की परछाईं री माया दर्पन बीच।
गुन तें गुन न्यारे भये अमल वारि मिलि कीच।
3. माया के गुन और और गुन हरि के जानो।
4 जाके गुन अरु रूप को जान न पायो वेद।

वास्तव में ही नन्ददास का ब्रजभाषा पर अच्छा अधिकार था। उनके शब्द-ज्ञान और आनुप्रासिक शब्द-योजना का परिचय उनकी 'अनेकार्थ-मंजरी' और 'नाम-माला' जैसी रचनाओं से मिलता है। 'हरि' शब्द के अनेक विभिन्नार्थक शब्दों को उन्होंने जिस प्रकार सुन्दर ढंग से पद में रखा है, यह कवि के शब्द-ज्ञान, शब्द और पद-योजना की कुशलता का ही परिणाम है।

नन्ददास की भाषा में, जैसा कि कहा जा चुका है, ध्वनि-निर्माण की कुशलता पाई जाती है। उसमें एक प्रकार का शब्द-संगीत स्पष्ट सुना जा सकता है। 'ध्वनि' का बहुत ही सुन्दर उदाहरण देखिए। 'नाममाल,' में दूती राधा से कहती है कि हे राधा ! मान छोड़ दे, देख, कृष्ण वंशी की ध्वनि में तुझे बुला रहे हैं—

वे वंशी में कहत प्रिय, हे प्रानेश्वरी आव॥

'हे प्रानेश्वरी आव' की गूंज वंशी की स्वर-ध्वनि से कितनी मिलती-जुलती है। भाषा का प्रवाह और गति प्रसंग के अनुकूल कैसी स्फीत और अनूठी होती है, इसका उदाहरण निम्न पंक्तियों में देखिए—

सुभग सरित के तीर धीर बलबीर गये तहँ।
कोमल मलय समीर छबिन की महा भीर जहँ॥ (रासपंचाध्यायी)

कृष्ण की धीर और मंथर गति के साथ शब्दों की गति का कैसा साम्य है। इसी प्रकार बितान के तनाव की ध्वनि शब्दों द्वारा इन पंक्तियों में कितनी स्पष्ट है, देखिए—

फटकि छरी सौं किरन कुंज-रंध्रनि जब आई।
मानहुं वितनु वितान सुदेस तनाव तनाई।। (रासपंचाध्यायी)

कुंजों में से छनती हुई किरणों का कैसा चित्रात्मक वर्णन है। साथ ही कवि की कल्पना ने उसे कामदेव का वितान बना कर बहुत ही मनोहरता उत्पन्न कर दी है।

शब्दों के 'जड़ने' में माधुर्य, कोमलता, प्रवाह आदि के अतिरिक्त नन्ददास ने भाषा की अभिव्यंजना-शक्ति को बढ़ाने के लिए मुहावरों, लोकोक्तियों और सुन्दर लाक्षणिक प्रयोगों को भी अपनाया है। अनेक स्थानों पर उनकी रचनाओं में लोकोक्तियों के अनुभव-सिद्ध सत्यों से पूर्ण प्रयोग पाए जाते हैं, जैसे—

जहं नदि नीर गंभीर तहाँ भल भंवरी परई।
छिल-छिल सलिल न परै परै तौ छवि नहि करई।। (रासपंचाध्यायी)

इस प्रकार के प्रयोगों में अनेक स्थानों पर मनोहर सूक्तियां मिलती हैं। 'रूपमंजरी' में कुछ उदाहरण देखिए—

1. **'बनिता लता सहजि सुखदाई। ऐंचे सरस निरस ह्वै जाई,**
2. **'गड़्यो जु मन प्रिय प्रेम रस क्यों हूँ निकस्यो जाय।**
   कुंजर ज्यौं चहलैं पर्‌यो छिन-छिन अधिक समाय' ।।214।।
3. **'सत्रु भलौ जो होय सयाना। मूरख मित्र जु चहित समाना'।।**
4. **'अलि बिनु कंवलहि को पहिचानै।'**
5. **मृगतृष्णा कब पानी भई। काकि भूख मन लड़ुवन गई।।**
6. **प्रेम एक इक चित्त सौं, एकहि संग समाय।**
   गंधी कौ सौद नहीं, जन-जन हाथ बिकाय।।
7. **अति सर्वत्र भलो नहीं कहि गए संत अनंत।** (नाममाला)

ठेठ लोकोक्तियों और भाव-व्यंजक प्रोक्तियों के सजीव प्रयोग में नन्ददास ने अपनी अपूर्व कुशलता दिखाई है। ब्रज-भाषा की इन लोकोक्तियों के प्रयोग से एक घरेलू वातावरण-सा उनकी भाषा में पाया जाता है। कुछ उदाहरण देखिए—

'रूखन देखि भूख भजि जाई', 'घर आए नाग न पूजें बाँबी पूजन जाँहि', 'प्रेम-पीयूषै छांड़ि के कौन समेटै धूरि', 'प्रगट भानु को छांड़ि गहत परछाई धूपै', 'कहु आकाश किहि टेक', 'नन्ददास' प्रभु क्यों नहि आवत, उन हाथन मेंहदी दई री,' 'नन्ददास' प्यासे को पानी पिवाइ लै जिवाइ', 'भरे भवन के चोर' आदि।

मुहावरे तथा लाक्षणिक प्रयोग

'ऊँचे अटा घटा बतराहीं', 'भई तवा को बूंद', 'छुधित ग्रास मुख काढ़ि', 'कहा

हिय लोन लगावौ,' 'जे तुमको अवलंबहीं तिनको मेलौ कूप, 'दाधे पर जिमि लागत लोन', 'चोर चित्त लै गए', 'नैन भरि आए दोउ', 'हीरा आगे कांच ।', 'प्रेम अमृत मुख तें श्रवत अंबुज नैन चुचात'। 'वे तुम तें नहीं दूरि ग्यान की आँखिन देखौ ।' 'प्रेम बिना सब पचि मरे, विषय वासना रोग ।', 'तबही लौं लहै लाख जबहिं लौं बाँधी मूठी', 'फाटि हियरौ चल्यौ', 'गाँठि की खोइ कै,' 'दीठि लगना', 'फूले अंग न समात', 'सब कों भाग उघरि रह्यौ', 'होत नाहिन चटतें मट' आदि ।

नन्ददास की भाषा निस्संदेह सशक्त है। भाषा-शक्ति के कारण ही दार्शनिक-सिद्धांत-वाक्य भी उन्होंने बड़े प्रभावपूर्ण ढंग से व्यक्त किए हैं। उनकी कल्पना-शक्ति के प्रयोग से गूढ़ विषय भी भव्य एवं सरल बन गए हैं। वह सगुण ब्रह्म ऐसा परम-तेजमय है कि दिव्यदृष्टि के बिना दिखाई नहीं पड़ता । उसके तेज में उसका सगुन रूप साधारण आंख को उसी प्रकार दिखाई नहीं पड़ता, जिस प्रकार सूर्य में सूर्य का रूप। सूर्य के तेज की कल्पना द्वारा कवि ने इस भाव को कितना सरल और प्रभावोत्पादक बना दिया है, इन पंक्तियों में देखिए —

तरनि अकास प्रकास जाहि में रह्यौ दुराई
दिव्य दृष्टि बिनु कहौ कौन पै देख्यौ जाई ॥
जिनके वे आँखें नहीं देखैं क्यों वह रूप।
क्यौं ऊपजै बिस्वास जे परे कर्म के कूप।। (भवँरगीत)

सूरदास का तो अधिक झुकाव भाषा की स्वाभाविकता पर था, पर नन्ददास ने उसे सुमधुर, सुसंस्कृत और अलंकृत किया। भाषा को कोमल और प्रसादगुण-पूर्ण बनाने के लिए नन्ददास ने संस्कृत के अनेक शब्दों को ब्रज-भाषा की प्रकृति की छाप लगाकर प्रयुक्त किया है—जैसे 'क्षण' को 'छिन','सूक्ष्म' को 'सूच्छम', 'योग' 'जोग', 'क्षुधित' को छुधित आदि । प्रायः मधुर और परिचित शब्दावली का ही उन्होंने प्रयोग किया है। उन्मत्त नेत्रों के लिए 'अलस कछु घूम घुमारे, लावण्य' के लिए 'लुनाई', सजावट-शोभा के लिए बानक आदि का प्रयोग भाषा में कोमलता के साथ सरलता लाते हैं।

एक आलोचक श्री शंभुप्रसाद बहुगुना के विचार नन्ददास की भाषा-शैली के सम्बन्ध में सुनिए—"शब्द-चित्रों से नन्ददास ने मधुर ब्रज-भाषा को और भी मधुर बना दिया है। रसावेश से हर्षित लटकते हुए कृष्ण ने कुसुम घूम से धुंधले कुंज में प्रवेश किया, जहाँ मधुकरों के पुंज थे। इसका वर्णन कवि करता है—

कुसुम धूरि धाँधरी, कुंज, छवि पुंजनि छाई :
गुंजत मंजु अलिद वेनु जनु बजति सुहाई ।। (रासपंचाध्यायी)

इस शब्द-कुंज में 'धू' की कुसुम-धूलि कई बार उड़ रही है। 'म' की पुनरावृत्ति में भौंरों की गूंज सुनाई पड़ रही है और यद्यपि कवि ने केवल इतना ही कहा है कि वहां भौंरे हैं, फिर भी हम स्पष्ट सुन रहे हैं कि वहाँ भौंरे हैं। पहला पद एक कुंज

की तरह है। × × सहसा ही दूसरा पद हुलसता आता है, जो श्रीकृष्ण की भाँति लटक कर उस पहले पद के कुंज में प्रवेश कर जाता है।

दूसरा शब्द-चित्र देखिए। सघन कुंज में चन्द्रमा की पतली किरण झिलमिलाती हुई गिर रही है—

फटकि छरी-सी किरन, कुंज रंध्रनि जब आई।
मानहुं वितनु वितान सुदेस तनाव तनाई॥ (रासपंचाध्यायी)

'फ' का उच्चारण ओष्ठ से होता है। इसलिए 'फटकि' के कहते ही होंठ खुल जाते हैं। 'छ' का उच्चारण तालु से होता है, इसलिए 'छ' के कहते ही होंठ और खुल जाते हैं और दाँतों की फटित स्वच्छता दिखाई देती है। बस, दंत-पंक्ति ही सा स्वच्छ किरण का वर्ण है। लेकिन यह 'किरण' नहीं है, 'किरन' है, 'कुंज के सघन रंध्र' से छनती आ रही है।

यह तो स्वरूप का चित्र हुआ। अब गति का एक चित्र देखिए—

मंद मंद चलि चारु चंद्रमा अस छवि पाई।
उझकत हैं प्रिय रमारमन कौं मनु तकि आई।

इस पद में अधिक वर्ण ह्रस्व हैं। इ, उ, ये सब छोटे हैं। पद अत्यन्त धीरे-धीरे चल रहा है, जैसे आकाश में चन्द्रमा।

नन्ददास की ठेठ ब्रज-भाषा के बीच-बीच में कहीं पूर्वी हिन्दी और फारसी के शब्द भी पाए जाते हैं। जिस प्रकार उन्होंने संस्कृत के शब्दों को प्रायः तद्भवरूप में अपनाया है, उसी प्रकार फारसी के शब्दों को भी तद्भव रूप दिया है। गरज, लायक, अरदास, जराव जरी, दंगल आदि अरबी-फारसी के शब्द ऐसे ही हैं। 'आहि', रावरे, अस, आनि, नीकी आदि पूर्वी-प्रयोग भी बीच-बीच में मिठास भरने ही आए हैं। ब्रज बोली के ठेठ घरेलू शब्द, जैसे 'रूसि,' 'रूख', बीर आदि भी नन्ददास की भाषा में मिलते हैं। वास्तव में नन्ददास जी कोमल और मधुर रसों एवं भावों के ही कवि हैं, इसी कारण प्रसाद-माधुर्य गुण ही उनकी भाषा-शैली में पाए जाते हैं। ओज-गुण और परुषावृत्ति उनकी भाषा में कहीं नहीं है।

नन्ददास की भाषा में एकरूपता नहीं पाई जाती। भाषा का रूप उनके सब ग्रन्थों में तथा सब छन्दों में एक-सा नहीं है। अनेक स्थानों पर उनकी 'रूप मंजरी', 'विरह मंजरी', 'सुदामाचरित', 'भाषा दशम-स्कंध' आदि रचनाओं में भाषा शिथिल भी है और अनेक शब्दों का रूप भी विकृत-सा मिलता है। 'सुदामाचरित', 'गोवर्धनलीला, और 'भाषा दशम स्कंध' में चौपाई छंद भाषा-शैथिल्य से पूर्ण हैं। दोहा, रोला तथा दोहा-रोला के मिश्रित छन्दों में शब्द भाव से भरे और छन्दों में तुले हुए हैं।

अष्टछाप के सर्वश्रेष्ठ कवि सूरदास तथा परमानन्ददास से इनकी भाषा-शैली की यदि तुलना की जाय, तो हमें पता चलता है कि सूरदास में भाषा का बहुरूपी-

प्रयोग पाया जाता है। मुख्यरूप से ब्रजभाषा होते हुए भी, उनकी भाषा में अवधी और फारसी के शब्दों का प्रयोग अष्टछाप के अन्य सभी कवियों से अधिक है। भाषा का जितना शब्द-कोश सूर के पास है, उतना नन्ददास आदि अष्टछाप के अन्य किसी भी कवि के पास नहीं। नन्ददास की भाषा का आदर्श रूप 'रास-पंचाध्यायी' में है, तो सूर की भाषा भी उनके छन्दों की अपेक्षा पदों में प्रौढ़ है। नन्ददास के पदों में सूर की-सी भाषा-शक्ति नहीं मिलती। नन्ददास का पदावली-साहित्य उतना मार्मिक नहीं, जितना सूर व परमानन्ददास का। नन्ददास के 'रोला' छन्द में भाषा की शक्ति, लय और प्रवाह सब कवियों से अधिक है। 'रास-पंच्यायी' की-सी कलातमकता सूर और परमानन्ददास में भी नहीं पाई जाती, किन्तु समग्र रूप से सूर का कलापक्ष अधिक विस्तृत, स्वाभाविक और प्रभावोत्पादक है।

अलंकार-योजना—नन्ददास की अलंकार-योजना भी बहुत स्वाभाविक है। व्यर्थ के शब्द-चमत्कार में ये नहीं पड़े। सर्वत्र उनकी अलंकार-योजना भाव अथवा वस्तु की उत्कर्ष-विधायक ही रही है। नन्ददास की अनोखी सूझ और काव्य में अर्थ-सौरस्य लाने की कुशलता का परिचय हमें उनके अलंकार-विधान में मिलता है। सभी प्रकार के अलंकारों का प्रयोग उनके काव्य में पाया जाता है। अनुप्रास तो पंक्ति-पंक्ति में मिलेगा। अन्य शब्दमूलक अलंकारों में भी यमक-श्लेष पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। शब्दालंकारों के प्रयोग से कवि की भाषा में नाद-सौन्दर्य, प्रवाह, सजीवता, कोमलता आदि के गुणों का समावेश हुआ है। अर्थालंकारों में भी सादृश्यमूलक, विरोधक, तर्कन्यायमूलक आदि सभी अलंकार बड़े स्वाभाविक रूप में पाए जाते हैं। सादृश्यमूलक अलंकारों का उन्होंने अधिक प्रयोग किया है। नन्ददास उत्प्रेक्षाओं के तो बादशाह हैं। उनकी अनेक सुन्दर उत्प्रेक्षाओं में उनकी कल्पना-शक्ति की मौलिकता पूर्ण परिलक्षित होती है। "अनुप्रासादि शब्दालंकारों तथा उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अर्थालंकारों से लदी हुई जिस आदर्श साहित्यिक भाषा की कवि ने सृष्टि की है, उसमें रस-प्रवाह है, अद्भुत संगीत है, और हृदय पर चोट करने की पूर्ण क्षमता है।"

सादृश्यमूलक अलंकार—नन्ददास ने उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं का बहुत अनूठा विधान किया है। बहुधा कवि एक बात कहकर उसकी पुष्टि में उपमाओं की इतनी चामत्कारिक झड़ी लगा देता है कि पाठक उसकी कला पर मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकता। उनकी उपमाएँ बहुत चित्ताकर्षक और चित्रात्मक हैं। कुछ उदाहरण देखिए—

> **लाल रसिक के बंक बचन सुनि चकित भई यौं।**
> **बाल-मृगिन की माल सघन वन भूल परी ज्यौं॥** (रासपंचाध्यायी)

गोपिकाओं की चकित चितवन का भटकी हुई बालमृगियों की चकित चितवन से कैसा सुन्दर साम्य है! इसी प्रकार—

कोमल किरन अरुनिमा बन में व्यापि रही अस ।
मनसिज खेल्यो फागु घुमड़ि घुरि रह्यो गुलाल जस ।।

(रासपंचाध्यायी)

शरद् की चन्द्रकिरणों का गुलाल की अरुणिमा से साम्य दिखाना नन्ददास की मौलिक सूझ है। ध्यान रहे, यह गुलाल भी कामदेव का गुलाल है। इसी प्रकार 'रासपंचाध्यायी' की निम्न पंक्तियों में गोपियों की चित्रात्मक अवस्था का सुन्दर वर्णन है—

मंद परस्पर हँसीं लसीं तिरछी अंखियां अस।
रूप-उदधि इतराति रँगीली मीन पांति जस ।।

वाक्यार्थोपमा का एक सुन्दर उदाहरण लीजिए। बसंत-ऋतु में कामदेव ने ऊधम मचा दिया है। विरहिणी रूपमंजरी की विरह-ज्वाला तीव्र से तीव्रतर होती जा रही है। इन दोनों (वसंत और कामदेव) का मेल उसी प्रकार विरह-ज्वाला को भड़काने वाला है, जिस प्रकार अग्नि और पवन का मेल अग्नि को प्रचंडता प्रदान करता है—

बितन बसंत सखा दोउ ऐसे। पावक पवन मिले जग जैसे ।। (रूपमंजरी)

उपमा और उत्प्रेक्षा दोनों के संयोग से रास-क्रीड़ा में गोपिकाओं और कृष्ण के मण्डलाकार नृत्य का कैसा सुन्दर वर्णन किया है—

नव मरकत मनि श्याम कनक-मनिगन ब्रज बाला।
वृन्दावन को रीझि मनहु पहिराई माला।। (रासपंचाध्यायी)

उत्प्रेक्षा के द्वारा कहीं-कहीं नन्ददास ने बहुत सुन्दर गत्यात्मक चित्र उपस्थित किए हैं। रास-क्रीड़ा में नृत्य करती हुई गोपियों की हिलती हुई बेनी का साम्य लताओं के संग डोलती हुई अलि-सैनी के साथ दिखाकर नन्ददास ने जो गत्यात्मक चित्र आँखों के सामने प्रस्तुत कर दिया है, वह उनकी कवित्व शक्ति का परिचायक है—

चंचल रूप लतनि संग डोलति जनु अलि-सैनी।
छबिली तियन के पाछें आछें बिलुलित बेनी ।। (रासपंचाध्यायी)

गम्योत्प्रेक्षा का एक बहुत अनूठा वर्णन देखिए। कवि नायिका के नयनों की चंचलता पर कल्पना करता है कि बाल्यावस्था में जो चंचलता पाँवों में थी, वह अब पाँवों से आँखों में आ गई है। यौवन का कैसा सुन्दर वर्णन है! यौवन-काल में पाँवों का लज्जा के कारण ठिठकना और नयनों का अपनी करामात दिखाना कितने सुन्दर ढंग से व्यंजित हैं—

बालपने पग चंचलताई। चली छबीली नैननि आई ।।
इत उत चहनि चलनि अनुरागे। बात करन कानन सौं लागे ।।

(रूपमंजरी)

नन्ददास के उपमान अधिकतर परम्परायुक्त ही हैं, परन्तु कवि ने अनेक स्थानों

पर उनकी अनूठे ढंग से योजना करके अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। कहीं-कहीं नए उपमान और बिल्कुल नई व अनूठी सूझ-बूझ भी पाई जाती है। निम्न पंक्तियाँ देखिए—

कंज कंज प्रति पुंज अलि, गुञ्जत इमि परभात।
जनु रवि डर तम तजि भज्यो, रोवत ताके तात ।। 53 ।। (रूपमंजरी)

काले भँवरों को इस प्रकार अन्धकार के बच्चे बनाना बिल्कुल नवीन सूझ है। निम्न-पंक्तियों में संदेह और उत्प्रेक्षा का सुन्दर मिश्रण देखिए—

गोरे तन की जोति छूटि छवि छाय रही घर।
मानहुँ ठाढ़ी कुँअरि सुभग कंचन अवनी पर ।।

जनु घन तें बिजुरी बिछरी मानिनी-तनु काछे।
किधौं चन्द्र सौं रूसि चन्द्रिका रहि गई पाछें। (रासपंचाध्यायी)

वास्तव में नन्ददास ने वस्तु और रूपवर्णन में तथा भाव-चित्रण में स्वरूप-बोध कराने एवं भावोत्कर्ष लाने के लिए उत्प्रेक्षा से विशेष काम लिया है। इनकी उत्प्रेक्षाओं की कल्पना बड़ी मार्मिक और प्रभावशालिनी होती है। इन उत्प्रेक्षाओं के कारण ही नन्ददास की वर्णन-शक्ति अद्भुत कलात्मक बन गई है। इन्हीं में उन्होंने अपनी कल्पना की मौलिकता का परिचय दिया है। चाहे शुकमुनि का वर्णन हो (रासपंचाध्यायी), चाहे रूपमंजरी का अथवा नगर (निर्भयपुर) का, कवि सर्वत्र उत्प्रेक्षाओं की झड़ी लगा देता है, जिससे वर्णन में कलात्मकता और सजीवता आ जाती है। इसी प्रकार अन्य अलंकारों का भी नन्ददास ने बड़ा अनूठा प्रयोग किया है। निस्संदेह वह एक बड़े शब्द-शिल्पी थे।

●●

3

मीरां की काव्य-साधना

1. मीरां की भक्ति-भावना
2. मीरां के आराध्य
3. मीरां की रहस्य-साधना
4. भाषा-शैली—कलापक्ष
5. उपसंहार

मीरां की भक्ति-भावना

मीरां की काव्य-साधना, उनकी भक्ति-साधना ही है। उनके काव्य का एकमात्र स्वर अनन्य भक्ति है। उनकी भक्ति गोपीभाव की माधुर्य भक्ति है। नारद भक्ति-सूत्र में प्रेमाभक्ति या रागानुगा भक्ति का आदर्श 'यथा गोपिकानाम्' कहकर गोपियों की माधुर्यभाव की भक्ति को माना गया है। मीरां ने इसी आदर्श माधुर्य-भाव की प्रेमाभक्ति को अपनाया। राधा एवं गोपियों के आदर्शप्रेम की व्यंजना के माध्यम से इस माधुर्य भक्ति का प्रकाशन मीरां से पूर्व तथा मीरां के समय में सम्प्रदायी तथा सूरादि अष्टछापी कवि, हितहरिवंश आदि राधाबल्लभीय भक्त कवि तथा अन्य अनेक सम्प्रदायमुक्त कवि कर रहे थे। पर मीरां की माधुर्य-भावना में जो भक्ति की सत्यता, प्रेम की जो टीस, अनुभूति की जो गहराई और प्रामाणिकता पाई जाती है, वह अन्य किसी कवि में नहीं। अन्य कवियों से मीरां की भक्ति निराली ही है। इस प्रभेद के मुख्य कारण ये हैं :

1. जहां अन्य कवियों ने पुरुष होने के कारण ब्रजांगनाओं और राधा के प्रेम-भक्तिभाव को केवल माध्यम ही बनाया और बाह्यमुखी अनुभूति ही प्रकट की, वहां मीरां अन्दाल की भांति स्वयं ही गोपी राधा बन गई थी—अपने गिरधर की जन्म-जन्म की दासी और पत्नी बन गई थी। इसी से उसकी माधुर्य भक्ति में विषयपक्ष की अपेक्षा विषयीपक्ष है, आत्माभिव्यक्ति की सच्ची पुकार और निश्चल अनुभूति है। मीरां ने गिनती के ही कुछ पदों में राधा या गोपियों की प्रेमलीला को माध्यम बनाया है और ऐसे पदों में भी वे स्वयं ही राधा या गोपी

बनी हुई प्रतीत होती हैं, क्योंकि गिरधर के साथ अपनी जन्म-जन्म की प्रीति और पूर्वजन्मों का प्यार कहकर वे चिर नाता जोड़ लेती हैं। मीरां के प्रायः सभी पदों में मीरां स्वयं अपने गिरधर गोपाल की प्राणप्रिया पत्नी, दासी बनी हुई हैं। माधुर्य-भाव का इतना सीधा स्पष्ट प्रकाशन मध्ययुग के अन्य किसी कवि में नहीं मिलता।

2. माधुर्य भक्ति का प्रकाशन टेढ़ी खीर ही है। इसमें मानसिक लौकिक स्खलन की बहुत संभावना है। नन्ददास, कृष्णदास, हितहरिवंश आदि अनेक माधुर्य-व्यंजक कवि निश्चित ही इस मार्ग पर कुछ भटके हुए-से प्रतीत होते हैं। भक्ति का दामन जाने-अनजाने उनसे छूट गया प्रतीत होता है और लौकिक शृंगार भक्ति के छद्म आवरण को चीर कर प्रकट हो गया है। राधा-गोपी प्रेम-प्रकाशन में इन कवियों ने भद्दी लौकिक परम्परा के प्रभाव से स्थूल शारीरिक मिलन और ऐन्द्रिक उत्तेजना प्रकट करके बहुधा भक्ति के स्थान पर शृंगार रस का ही प्रकाशन किया है। यहाँ तक कि सूरदास जैसे पावन भक्त-हृदय-कवि भी इस दोष से सर्वथा मुक्त नहीं हैं। आराध्य को श्रद्धेय-पूज्य रूप में प्रस्तुत करने की बजाय इन्होंने कृष्ण को रसिक-लम्पट-सा बना डाला। इसी से माधुर्यभाव के उपासक अधिकांश कवियों की रसिक-भक्ति भक्तिभाव प्रेषण करने के स्थान पर शृंगार रस की ही अनुभूति कराती है। इनके विपरीत मीरां की माधुर्यभक्ति शतप्रतिशत निश्छलभक्ति है। उसमें लौकिकता कहीं छू तक नहीं गई। समूची पदावली भक्ति की रस-गागरी है, भाव की पूत स्वर-लहरी है। न कहीं नीवी-बंधमोचन, चुम्बन-परिरंभन आदि स्थूल शारीरिकता है, न मानसिक स्खलन। मीरां अपने प्रभु प्रियतम की प्रियतमा है, उस गिरधर की दासी है, जो सर्वसमर्थ, भक्तवत्सल, भक्त-उद्धारक और अविनाशी है। वह लौकिक नश्वर वर की वधू नहीं। मीरां के समस्त पदों में माधुर्यभाव के अन्तर्गत भी पूज्यभाव विद्यमान है। प्रभु अनन्त शक्तिमय, सर्व-समर्थ हैं, महान् है और मीरां उसकी कृपा, प्रेम, शरण की आकांक्षिणी है, लघु जीव है। आलम्बन में इस महदंश की प्रतिष्ठा के कारण मीरां का माधुर्यभाव भक्तिभाव ही है, शृंगार रस नहीं।

3. मीरां की विशिष्टता इस बात में भी है कि उन्होंने सरस साधना अर्थात् भक्ति को ही अपना साधन और साध्य बनाया, किसी प्रकार के दार्शनिक सिद्धांत या मतवाद के चक्कर में वह नहीं पड़ी। रामानुज, मध्व, निम्बार्क, बल्लभ, हरि-दासी या राधाबल्लभीय आदि किसी सम्प्रदाय से उन्हें कोई विशेष सरोकार नहीं था। इसी से वह किसी दार्शनिक ऊहापोह में नहीं पड़ी और न ही किसी सम्प्रदाय की विशिष्ट साधना-पद्धति या सेवा-विधि का आग्रह उन्होंने किया। इस दृष्टि से सूरदास आदि सभी भक्तों से मीरां की स्थिति भिन्न है। उनका काव्य विशुद्ध भक्ति का ही निदर्शक है; न उन्हें कबीर की तरह खण्डन-मंडन की आवश्यकता

थी, न सूरदास आदि की तरह सगुण-निर्गुण के वाद-विवाद तथा पुष्टिमार्ग की स्थापना का अवकाश था और न तुलसी के समान 'नाना पुराण निगमागम' के सार-संग्रह की आकांक्षा थी। वे केवल भक्त थीं—भक्ति की साकार प्रतिमा। उसके प्रणय और भक्ति को दार्शनिक तर्क-वितर्क की आवश्यकता नहीं थी। अतः उसके कोमल निश्छल हृदय से भक्ति की अन्तः सलिला निर्बाधरूप से अनायास ही फूट बही, उसकी तीव्रता की तुलना में कोई न ठहर सका।

4. मीरां के पूर्व और मीरां के समय में माधुर्य-भक्ति का वह रूप भी प्रचलित था जिसमें साधक आत्मा गुणातीत निराकार राम की बहुरिया बनी संयोग-वियोग की अनुभूतियों में से गुजरती है। ऐसी माधुर्य भावना रहस्य-साधना का रूप ग्रहण कर लेती है। मीरां यद्यपि सगुण-साकार गिरधर गोपाल की साधिका थी, पर तात्त्विक रूप में तो उसका गिरधर भी निर्गुण ब्रह्म ही है। अतः अभिसार, विरह, मिलन आदि से सम्बन्धित अनेक पदों में मीरां की माधुर्य-भावना रहस्यसाधना-सी भी बन गई है। सभी सगुण भक्तों में मीरां की इस बात में भी विशिष्टता है कि उनकी माधुर्य-भक्ति में जो रहस्यसाधना पाई जाती है, वह सूर, नन्ददास, परमानन्ददास, हितहरिवंश आदि अन्य कृष्णभक्तों में दिखाई नहीं देती। मीरां की इस रहस्यसाधना पर हम आगे विस्तृत प्रकाश डालेंगे, यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि इससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि मीरां निर्गुण की उपासिका थीं, युग-सत्य के कारण मीरां को निर्गुणमत में खींचने की गलती नहीं होनी चाहिये।

मीरां के आराध्य—मीरां की भक्ति के आलम्बन गिरधर गोपाल कृष्ण थे—यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है। मीरां के समकालीन तथा परवर्ती सभी भक्तों और कवियों ने मीरां को गिरधर गोपाल कृष्ण की उपासिका कहा है। न-केवल बल्लभसम्प्रदायी वार्ताकार, राधाबल्लभीय ध्रुवदास, चैतन्य-सम्प्रदायी प्रियादास आदि कृष्णोपासक कवियों-भक्तों ने मीरां का उपास्य सगुण कृष्ण माना है, अपितु रामोपासक नाभादास ने अपने 'भक्तमाल' में कहा है कि मीरां ने 'लोकलाज कुलकानि तजि' गिरधर को भजा। यही नहीं, निर्गुणिया संत सम्प्रदाय के राघोदास ने भी 17वीं शताब्दी में अपने 'भक्तमाल' में मीरां को गिरधर की उपासिका कहा है।

न-केवल मीरां की पदावली, अपितु लोक-परम्परा भी मीरां को कृष्ण-भक्त मानती आई है; जनता में यह चिरकाल से प्रचलित है :

नरसी के प्रभु सांवरिया हो सूरदास के श्याम।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, तुलसीदास के राम॥

स्वयं मीरां के पदों में 'मीरां के प्रभु गिरधर नागर', 'दासि मीरां लाल गिरधर', 'मीरां के प्रभु हरि 'अविनासी', आदि की प्रसिद्ध छाप मीरां को गिरधर गोपाल

की साधिका सिद्ध करती है। यही नहीं, मीरां के जीवन से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है कि उन्होंने आरम्भ से ही सगुण-साकार कृष्ण की प्रेमभक्ति अपने मन-प्राणों में बसा ली थी। मीरां का ब्रज-प्रेम, गोकुल-वृन्दावन-वास और अंततः द्वारिका में रणछोड़ जी की सेवा में स्वयं को समर्पित करना—सब उन्हें कृष्ण-भक्त सिद्ध करते हैं।

मीरां ने अपने इस आराध्य को अधिकतर 'गिरधर' नाम से पुकारा है, पर साथ ही 'बांके बिहारी', 'गोपाल', 'गोविन्द', 'हरि', 'श्यामसुन्दर', 'माधव', 'कान्ह', 'मुरारी', 'श्याम', 'मनमोहन', 'सांवरिया', 'नन्दनन्दन', गिरधारी', 'कृष्ण', 'किसनमुरारी', 'बंसीवारे', 'नन्दकिशोर,' 'बलवीर', 'ठाकुर', 'कुंज-बिहारी,' 'नन्दकुमार,' 'सांवरो,' 'मदनमोहन', 'मोहन', मुरली वाला', 'नंदलाल' आदि नामों को भी अपने पदों में अपनाया है। इन नामों से स्पष्ट है कि यह गिरधर ब्रजबिहारी नन्दनन्दन कृष्ण है।

1. मीरां का यह उपास्य मूल तात्त्विक रूप में निर्गुण-निराकार अविनाशी, असीम ब्रह्म है—'आदि अनादि साहब' है। इस तात्त्विक निर्गुण रूप का वर्णन मीरां के दो-चार पदों में ही प्रकट हुआ है। इसके आधार पर मीरां को निर्गुण-उपासिका नहीं कहा जा सकता। यह कृष्ण के तात्त्विक रूप की वैसी ही स्वीकृति है, जैसी तुलसी, सूर आदि सगुण भक्तों ने भी स्वीकार की है। स्पष्ट है, मीरा में यह स्वीकृति निर्गुण-भक्तों के प्रभाव से प्रकट हुई है; निम्न पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :

सतगुर मिलिया खूज पिछाणी ऐसा ब्रह्म मैं पाती।
सतगुर सूरा अमृत पीवे निर्गुण प्यासा जाती।
मगन भया मेरा मन सुख में गोविन्द का गुण गाती।
साहब पाया आदि अनादि नातर भव में जाती।

इस तत्त्व ब्रह्म रूप में मीरां ने अपने उपास्य को हरि, गोविन्द, राम, निरंजन ('जाको नाम निरंजन कहिए ताको ध्यान धरूँगी हो')। अगम ('चलो अगम के देस काल देखते डरैं'), निर्गुण आदि नामों और विशेषणों से पुकारा है।

2. मीरां के इस आलम्बन का दूसरा रूप है सगुण हरि या विष्णु का रूप। वही विष्णु-रूप कृष्ण, राम, नृसिंह आदि विभिन्न अवतारों के रूप में प्रकट होता है। इसी ने गज, गणिका, अजामिल-जैसे अनेकों का उद्धार किया है। यह हरि अधम-उद्धारक और भव-तारक है। उन हरिचरणों का स्पर्श करके प्रहलाद सद्गति पा गया, ध्रुव अटल शरण प्राप्त कर गए, गौतम-पत्नी अहिल्या का उद्धार हुआ और जिन चरणों से प्रभु ने कालियनाग को नाथ डाला, उन्हीं चरणों का स्पर्श मीरां पाना चाहती है :

मन रे परसि हरि के चरण।
जिण चरण भुज परसि लीने तरी गौतम घरण।
जिण चरण कालीनाग नाथ्यौ गोपलीला करण।

उस हरि की शरण ही मीरां चाहती है जिसने अनेक पौराणिक भक्तों का उद्धार किया।

इस विष्णु रूप की उपासिका मीरां के लिए कृष्ण और राम में कोई भेद नहीं। वही कृष्ण है, वही राम। यही कारण है कि अनेक पदों में मीरां अपने प्रभु को 'राम' नाम से भी सम्बोधित करती है। कई पदों में तो एक साथ राम और कृष्ण का उल्लेख मिलता है; देखिए :

मेरे मन राम नामा बसी।
तेरे कारण स्याम सुन्दर सकल लोगा हँसी।।

3. मीरां के उपास्य कृष्ण का कृष्ण-अवतार-रूप तो सर्वाधिक स्पष्ट और मुखर है। इस सगुण, साकार, वंशीधर, लीलामय, अवतारी ब्रजबिहारी, नंदनंदन, गिरधर नागर के प्रति ही मीरां की समस्त भक्ति-भावना एवं साधना केन्द्रित और अर्पित है। उसी 'सुन्दर वदन कमल दल लोचन बांकी चितवन मन्द मुसकानी' पर वह अपना तन-मन, धन वार डालती और उसी के चरणों में लपटती हैं। वह वांका यमुना के तट पर धेनु चारता और मीठी ध्वनि में वंशी बजाता है, उसी वंकट छवि में मीरां के नयन निपट अटक गए हैं। मीरां ने इस अवतारी नरदेह-धारी कृष्ण को गोपाल, कान्हा, गिरधर, नंदनंदन, मनमोहन आदि बीसियों नामों से पुकारा है। इसकी ब्रज-लीलाओं—कालीयदमन, चीर-हरण, राधा-गोपी-प्रेम, गोचारण, होलिकोत्सव आदि—का भी मीरां ने गान किया है और उसी के धाम वृन्दावन, द्वारिका आदि से अनुराग जताया है। उस बाल-कृष्ण की प्रभाती भी गाई है और उस यशोदा-नंदन बलवीर की रूपमाधुरी, मोर मुकुट, पीताम्बर पर मीरां बलि-बलि जाती है। मीरां के अधिकांश पदों में इस सगुण-साकार कृष्ण के प्रति ही उसकी भाव-आरती प्रकट हुई है, इसी से मीरां को कृष्णभक्त माना जाता है। कृष्ण के बालकृष्ण रूप की अपेक्षा मीरां उसके राधिकारमन गोपीपति तरुण रूप पर अधिक मुग्ध हैं और इसी मधुर रूप-सागर को उसने अपना पति, प्रियतम बनाया है : यही कारण है कि मीरां की भक्ति मुख्यत: स्वकीया भाव की माधुर्य भक्ति है। मीरां की प्रेमा-भक्ति भक्ति के सभी महत्त्वपूर्ण आयामों को छूती है। प्रभु-प्रेम और भजन ही उसका केन्द्र-बिन्दु है; वह अहैतुकी नि:स्वार्थ परा-भक्ति है। यद्यपि मीरां ने पुष्टिमार्ग में दीक्षा नहीं ली थी, पर सूर आदि पुष्टि-मर्गीय भक्तों से किसी प्रकार कम पुष्टि-भक्ति मीरां की भक्ति नहीं है। स्वयं मीरां परम पुष्टपुष्ट जीव थी; प्रेम-भक्ति की इतनी साकार तन्मयता अन्य भक्त-कवियों में तो क्या, सूर में भी उस हद तक नहीं, जितनी मीरां में पाई जाती है।

मीरां की रहस्य-साधना

अलौकिक प्रेम-व्यंजना में जब आलम्बन मूर्त्त होता है, साकार होता है, तो प्रेम-भक्ति का स्पष्ट उद्रेक होने से भक्ति-भाव की स्पष्ट अभिव्यक्ति हो जाती है, पर जब प्रेम-व्यंजना रहस्यमय निराकार तत्त्वब्रह्म के प्रति प्रकट होती है और उसमें श्रद्धा-भक्ति के स्थान पर मुख्यतः रहस्यमय प्रेम का प्रकाशन होता है तो इस साधना को रहस्यवाद (Mysticism) कहते हैं।

मीरां की रहस्यभावना या रहस्यवाद उसकी भक्ति का ही एक रूप है। पीछे हम बता चुके हैं कि मीरां ने ब्रह्म के तात्त्विक निर्गुण रूप को भी अपनी भावना का विषय बनाया है यद्यपि मीरां में यह निर्गुण-भावना भी सहज स्वाभाविक ही है और इससे मीरां को निर्गुणवादी नहीं माना जा सकता, क्योंकि अविनाशी निर्गुण-रूप मीरां के सगुण-साकार कृष्ण का ही तात्त्विक रूप है; तथापि मीरां पर संतमत के प्रभाव से भी इन्कार नहीं किया जा सकता। मीरां प्रेमपरक रहस्यवाद की ही साधिका हैं। वे न तो कबीर आदि की तरह ज्ञानी थीं, न निराला आदि की तरह दार्शनिक बुद्धिवादी। उसे तो केवल प्रभु-प्रेम की खुमारी थी। इसी से मीरां में दर्शनपरक रहस्यवाद नहीं है। प्रकृति के माध्यम को भी मीरां ने नहीं अपनाया। वह तो अपने राम से सीधा सम्बन्ध और परिचय रखती थी, अतः प्रकृतिपरक रहस्यवाद का भी उसकी पदावली में अभाव ही है। मीरां पर योग-ज्ञान-मार्ग का प्रभाव अत्यन्त सतही है, इसी से उनमें साधना-परक रहस्यवाद के भी दर्शन प्रायः नहीं होते।

सतगुरु ने ज्ञान का तीर मारा जो मीरां के हृदय पार 'निकस गया।' विरह-ज्वाला से उसका शरीर व्याकुल हो उठा। प्रेम की जंजीरपांव में पड़ गई। मीरां उस परमात्मा से मिलने, उसके दर्शन पाने को छटपटाने लगती है। दिन-रात नैन झरते हैं, खड़ी-खड़ी पंथ निहारती है। वह तन का दीपक, मन की बाती और प्रेम का तेल करके दिन-रात प्रणय-दीप जलाती है। अपने सांवरे पर वह धन-यौवन न्यौछावर करने को तैयार है। बड़े चाव से उसने बहुत-से बहुरंगे फूलों से सेज सजाई हुई है, पर साजन नहीं आये। विरहिणी प्रियतम से यही पुकार करती है कि हे प्रिय! इस विरहिणी को अपना लो :

> **तेरे कारन सांवरे धन जोबन वारों हो।**
> **या सेजिया बहु रंग की बहू फूल बिछाये हो।**
> **पंथ मैं जोहूँ स्याम का अजहूँ नँहि आये हो।।**
> **मीरां व्याकुल विरहिणी अपनी कर लीजै हो।**

मीरां ने अपने साहिब को अपनी आँखों में बसा लिया है। वह अपने त्रिकुटी-महल के झरोखे से झांकी लगाकर दीदार पाना चाहती है। शून्यमहल में

सुरत जगाकर उसने सुख की सेज बिछा रखी है। वह अपने प्रभु पर बलिहारी जाती है :

नैनन बनज बसाऊँ री जो मैं साहिब पाउँ।
इन नैनन मेरे साहिब बसता डरती पलक न नाऊँ री ॥
त्रिकुटी महल में बना है झरोखा तहां तें झांकी लगाऊँ री।
सुन्न महल में सुरत जमाऊँ सुख की सेज बिछाऊँ री ॥
मीरां के प्रभु गिरधर नागर बार बार बलि जाऊँ री ॥

उपर्युक्त पंक्तियों में संतमत के सहज योग का स्पष्ट प्रभाव है। अपने 'साहिब के कारणै' मीरां ने कुल की लाज छोड़ डाली। खाना-पीना, सोना-बैठना, सुध-बुध सब बिसर गये। साहिब बिना कैसे जीया जाए ! बारह मास व्याकुलता से कटते हैं। दर्शन की अभिलाषा पूरी होती ही नहीं।

सावन के महीने में सखियाँ अपने प्रियतमों के साथ झूला झूलती हैं पर मीरां अपने प्रिय के दर्शनों से वंचित है। काग उड़ाते और आशा करते ही दिन बीत रहे हैं। पंडित-ज्योतिषियों से वह प्रिय के शुभागमन का पता पूछती फिरती है। इस विरहिणी को प्रिय के दर्शन कब होंगे—कोई तो बताये। कोई तो प्रभु के आने की बात कहे, कोई तो मनभावन का समाचार दे ! वह निर्मोही न तो आता है, न कोई सन्देश ही भेजता है। दोनों नयन झर रहे हैं। मीरां विवश है, पांख नहीं हैं, नहीं तो उड़कर कभी की प्रिय के पास पहुँच जाती ! अभिलाषा का कैसा मार्मिक उदाहरण है :

कोई कह्यो र प्रभु आवन की।
आवन की मन भावन की ॥
आप न आवै लिख र्नाह भेजै बाण पड़ी ललचावन की।
कहा करूँ कुछ र्नाह बस मेरो पांख र्नाह उड़ जावन की।

विरहिणी आत्मा अगम के देश जाने के लिए अभिसार करती है। वहाँ प्रेम का सरोवर होगा जिसमें मुक्त आत्माएं आनन्द-क्रीड़ा कर रही होंगी :

चलो अगम के देस काल देखत डरै। वहां भरा प्रेम का हौज हंस केल्यां करै ॥

सोलह श्रृंगार सजाकर अभिसारिका अपने प्रिय को मिलने निकलती है। ऊँची-नीची राह रपटीली है, पांव नहीं ठहरता, बार-बार डिग जाता है ! पंथ बड़ा ही झीना (सूक्ष्म) है, सुरत झकोरा खाती है, रास्ते में कदम-कदम पर डाकू हैं। हा विधाता ! यह क्या किया ? इतनी दूर हमारा गाँव क्यों बसाया ? अन्ततः सतगुरु ने राह दिखाई और तब युग-युग से बिछुड़ी मीरां प्रीतम के घर पहुँची :

मीरां के प्रभु गिरधर नागर सतगुरु दई बताय।
जुगन-जुगन से बिछड़ी मीरा घर में लीन्हीं लाय।

मीरां ने तो एक सांवरे को वरा है, जिससे उसका 'चूड़लो' अमर हो गया है।

भला ऐसे वर को वरने से क्या लाभ 'जो जन्मै और मर जाय !' मतवाली मीरां प्रिय के प्रेम में दिवानी बनी नाचती फिरती है । 'कोई कहे मीरा भई बावरी कोई कहे मदमाती रे ।' विरह-वेदना का मीरां के पदों में बड़ा मार्मिक चित्रण हुआ है । इस दरद-दिवानी की पुकार बड़ी दर्दनाक है । घायल की गति घायल ही जान सकता है । वह कभी तो अपना कलेजा निकाल कर कौवे को देने के लिए तैयार हो जाती है ताकि वह उसके प्रीतम के पास लेजाकर उनके सामने खाय; कभी पाती लिख भेजना चाहती है, पर लिखे कैसे ! कलम पकड़ती है तो हाथ-तन काँपने लगते हैं, हृदय थर्रा उठता है, बातें सूझती ही नहीं, नैन झराय रहते हैं ! इस व्याधि का मर्म मूर्ख वैद्य क्या समझ सकता है ? नाड़ी देखने से इस रोग का क्या पता चलता है ? यह तो विरह-भुजंग की गुप्त चोट है । पपीहा, मोर, दादुर तो 'दाध्या ऊपर लूण लगाते हैं ।' ये उद्दीपन का काम करते हैं । पपीहा, 'पिव-पिव' की रट लगाने वाला कौन होता है ? 'पिव मेरा मैं पिव की रे तू पिव कहै स कूण ।'

सतगुरु की कृपा से मीरां को 'उस' का भेद पा गया । वह तो घट-घट-वासी हैं । मीरां के भी हृदय में बसा हुआ है । मीराँ का सब भ्रम समाप्त हो गया । जन-जन में उसे वही परम आतमा दिखाई देती है । ज्ञान का दीपक हाथ में लेकर अब वह अगम की अटारी पर निर्भय चढ़ सकती है । राम की खुमारी ही ऐसी है ।

प्रेमपगी मीरां अब अपने पिव से 'झिरमिट खेलन जाती' है और गाती खोलकर छाती से छाती लगा मिलती है । उसका प्रिय उसी में है, अब वह कहीं आती है न जाती है और पाती भी अब क्या लिखे, प्रिय परदेश में थोड़े ही हैं ? प्रेम-भट्टी का मद पीकर मेरा दिन-रात छकी रहती है :

मैं गिरधर रंग राती सैयां, मैं गिरधर रंग राती ॥
पंच रंग चोला पहर सखी मैं झिरमिट खेलन जाती ।
ओह झिरमिट माँ मिल्यौ सांवरो खोल मिली तन गाती ।
जिनका पिया परदेश बसत है लिख लिख भेजैं पाती ।
मेरा पिया मेरे हीय बसत है ना कहूँ आती जाती ॥

इस हृदय-मिलनोल्लास का वर्णन भी मीरां ने कई पदों में किया है । मीरां की सेज अब सूनी नहीं रही, उसके पिया घर आ गये । मन-प्राणों में बहार छा गई । प्रेम की रस-बूंदें बरसने लगी हैं । प्रकृति में भी वर्षा और वसंत ऋतु की मधुरिमा छा गई है, मीरां का मिलन-महोत्सव जो है ! उसका भाग्योदय हो गया है ।

मीरां मस्त हुई अब अपने प्रिय से होली खेलती है । शील-संतोष की केसर घोलकर प्रेम की पिचकारी चलाती है । उसका रोम-रोम प्रेम-रंग में रंग गया है । लाल गुलाल के बादल उड़ रहे हैं । और प्रेम की वर्षा हो रही है । बिना करताल-

पखावज के अनहद की झनकार से ही मिलन की आनन्ददायक होली का संगीत सुनाई दे रहा है। मीरां ने लोकलाज त्याग कर घट के सब पट खोल दिये हैं। वह प्रिय का निर्भर प्यार पा गई है :

फागन के दिन चार रे होरी खेल मना रे।
बिन करताल पखावज बाजै अनहद की झनकार रे॥
सील संतोख की केसर घोली प्रेम प्रीत पिचकार रे।
घट के पट सब खोल दिए हैं लोक लाज सब डार रे॥
होरी खेलि पीव घर आए सोइ प्यारी प्रिय प्यार रे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर चरण कंवल बलिहार रे॥

इस प्रकार विरह-मिलन की विविध अनुभूतियों से मीरां ने अपनी प्रेम-साधना व्यंजित की है। उसके प्रेम में घनत्व और गहनता है। दर्द, पीड़ा, उत्कंठा, अभिलाषा और मिलनोत्साह तथा मिलनानन्द की अनुभूति ही उनके पदों में व्याप्त है। उनका रहस्यवाद न तो आधुनिक कवियों का-सा दार्शनिक आधार व्यक्त करता है न जायसी आदि प्राचीन कवियों तथा निराला-महादेवी आदि आधुनिकों की तरह प्रकृति के क्षेत्र को छूता हुआ व्यापक ही बन पाया है, अपितु वह तो केवल प्रेम की मार्मिक व्यंजना है। प्रेम की ऐसी टीस, ऐसी सच्चाई आधुनिक कवियों में तो क्या प्राचीन कबीर आदि में भी विरल है।

मीरां की भाषा-शैली—कला-पक्ष

मीरां का काव्य तीव्र अनुभूति का काव्य है। भावानुभूति व्यक्त करना ही मीरा का उद्देश्य था। न भाषा को अलंकृत करने या सजाने-संवारने का उसे ध्यान था, न किसी प्रकार के चमत्कार-प्रदर्शन का ही उसे अवकाश था। फिर भी मीरां की भावमयी अभिव्यक्ति स्वतः ही सशक्त और प्रभावी बन गई है। कही-कहीं स्वाभाविक अलंकार-विधान भी स्वतः प्रकट हुआ है। सादृश्यमूलक अलंकारों में रूपक, उत्प्रेक्षा और उपमा का ही कुछ प्रयोग दिखाई देता है। मीरां ने साधना-परम्परा से प्राप्त उपमानों और प्रतीकों को ही अपनाया है। 'व्यस्त रूपक' से अलंकृत निम्न पंक्तियाँ देखिए : मूर्त-अमूर्त-योजना बहुत सुन्दर है :

'दीपक जोऊँ ग्यान काचढ़ूँ अगम अटारी हो,'
'सील संतोष की केसर घोली प्रेम-प्रीत पिचकारी रे।'
'प्रेम भटी को में मद पीयो छकी फिरूँ दिनराती।'

रूपक :

'दरसन-इमरत पास्यांरी।'
'विरह-समुंद में छोड़ गया नेह री नाव चढ़ाव।'

सांगरूपक :

या तन को दियना करौं मनसर करौं बाती हो।
तेल भरावौं प्रेम का बारौं दिन राती हो।

रूप-साम्य और प्रभाव-साम्य पर आधारित अप्रस्तुत-योजना कहीं-कहीं बिम्बात्मक बन गई है। उत्प्रेक्षा का रूप-साम्य का ऐसा प्रयोग देखिए :

'कुंडल झलकां कपोल अलकां लहराई।
मीन तज सरवर ज्यौं मकर मिलण आई।'

उपमा अलंकार के भी छुट-पुट प्रयोग मिलते हैं।

उपमा :

'अंग खीन व्याकुल भया मुख पिव पिव वाणी हो।
ज्यों चातक घन कौ रटै, मछरी बिन पानी हो'॥
'हरि बिनु मथुरा ऐसी लागै शशि बिनु रैन अँधेरी।'

अतिशयोक्ति—मीरां ने ऊहात्मक प्रयोग नहीं किये। कहीं-कहीं विरह-वर्णन में ही परम्परागत अतिशयोक्ति का प्रयोग हुआ है :

'गिणतां गिणतां घिस गई म्हारी आंगलियां री रेख'
'छप्पन कोटि जणा पधार्या दूल्हो श्री ब्रजनाथ'

विरोधमूलक अलंकार—विरोधों का चमत्कार भी मीरां ने नहीं दिखाया। कथ्य में स्वाभाविक विरोधाभास कही आ गया तो दूसरी बात है। निम्न पंक्तियां ऐसी ही हैं :

बिन करताल पखावज बाजै अनहद की झनकार।
बिन सुर राग छतीसों गावै रोम रोम रंग सार रे।

मीरां ने वर्ण-सौन्दर्य या शब्द-वैचित्र्य का भी कोई सचेतन प्रयास नहीं किया। अत: अन्य ब्रज-कवियों-जैसी अनुप्रास तथा नाद-सौंदर्य की छटा भी उनकी भाषा में नहीं है। भाव-प्रवाह में स्वत: ही कहीं-कहीं पदावली सानुप्रासिक हो गई है। एक-दो उदाहरण देखिए :

'बरसे बदरिया सावन की, सावन की मन भावन की।
सावन में उमग्यो मेरो मनवा, भनक सुनी हरि आवन की।
'नैनन बनज बसाऊँ री जो मैं साहिब पाऊँ'

श्लेष, यमक, वक्रोक्ति आदि शब्द-चमत्कार-प्रधान अलंकारों का भी मीरां ने विशेष प्रयोग नहीं किया। मीरां की अनलंकृत वाणी में निश्छल भावमयी अभिव्यक्ति की ही विशेषता है।

लाक्षणिक प्रयोग और मुहावरे—मीरां की स्वाभाविक अभिधा-प्रधान वाणी में लाक्षणिक प्रयोग और मुहावरों का स्वत: ही खूब समावेश हो गया है। कुछ उदाहरण देखिए : 'बाट जोवां', 'हाथ बिकाणी', 'रंग राँचा', 'करेजो खाय',

'लागी मोहि राम खुमारी हो', 'हरिसूं सैन लगाती', 'भजन बिना नर फीको' :

'नैन बिछास्यां हिवड़ो डास्यां सर पर राख्यू बिराज।'

'उणबिन सब जग खारो लागत और बात सब कांची'

'अब तो निभायाँ सरैगी, बाँह गहे की लाज'

लोकोक्तियों का प्रयोग भी मीराँ की भाषा में अपेक्षाकृत कम है।

नाथ-सन्त परम्परा में प्रयुक्त कुछ प्रतीक भी मीरां की रहस्य-साधनापरक पंक्तियों में पाये जाते हैं, जैसे 'चलो अगम के देस, वहाँ भरा प्रेम-हौज, हंस केल्यां करै।' 'पंच रंग चोला पहर सखी मैं झिरमिट खेलन जाती', 'त्रिकुटी महल में बना है झरोखा तहाँ तैं झांकी लगाऊँ री'। 'सुन्न महल में सुरत जगाऊँ सुख की सेज बिछाऊँ री।

मीरां के भक्ति-पद गीति-काव्य का श्रेष्ठ उदाहरण हैं। क्या आत्माभिव्यक्ति, क्या संगीत-माधुर्य और कोमल-कांत पदावली, क्या भाव-प्रवणता सभी दृष्टि से मीरां के गीत हिन्दी के उत्तम गेय पद हैं।

●●

4

कृष्णभक्त-कवि

रसखान

1. जीवन-वृत्त
2. रसखान की रचनाएँ
3. प्रेमवाटिका और रसखान का प्रेम तत्त्व-निरूपण
4. रसखान की भक्ति-भावना
5. रसखान का शृंगार-वर्णन
6. भाषा-शैली : कलापक्ष

जीवन-वृत्त

वही खेद की बात ! अन्य मध्ययुगीन कवियों की तरह, रसखान का जीवन-वृत्त भी अंधकार के गर्त में दबा पड़ा है। न अन्तःसाक्ष्य से उनके जीवन का कोई विशेष परिचय मिलता है, न बाह्य साक्ष्य से। अन्तःसाक्ष्य अर्थात् कवि की रचनाओं में केवल 'प्रेमवाटिका' के निम्न चार दोहे ही रसखान के जीवन की एक-दो बातों का संकेत देते हैं—

देखि गदर-हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान।
छिनहि बादसा-बंस की, ठसक छोरि रसखान ।।48।।
प्रेम-निकेतन श्री बनहि, आइ गोबरधन धाम।
लह्यौ सरन चित चाहिक, जुगल सरूप ललाम ।।49।।
तोरि मानिनी तें हियो, फोरि मोहिनी-मान।
प्रेमदेव की छबिहि लखि भए मियाँ रसखान ।।50।।
बिधु सागर रस इन्दु सुभ बरस सरस रसखान।
प्रेमवाटिका रचि रुचिर, चिर हिय हरष बखान ।।51।।

इन दोहों से जो संकेत मिलते हैं, वे इस प्रकार हैं—

1. रसखान दिल्ली नगर में रहते थे और बादशाह-वंश से सम्बन्धित

थे। जब दिल्ली में शासन-लिप्सा के कारण उपद्रव मचा तो दिल्ली नगर की श्मशानवत् दुर्दशा देखकर रसखान ने शाही-वंश का गर्व क्षणमात्र में त्याग दिया।

2. वह ब्रज भूमि में आये और युगल-स्वरूप राधा-कृष्ण की शरण में अपना चित्त लगा दिया।

3. अपनी मानिनी से मन तोड़कर और मोहिनी प्रिया का मान चूर कर वह प्रेमदेव कृष्ण की छवि पर रीझकर मियाँ रसखान हो गए।

4. सं० 1671 वि० में उन्होंने प्रेमवाटिका की रचना की।

आचार्य चन्द्रबली पांडेय ने रसखान को मुगल वंश का माना है। उनका तर्क यह है कि कवि ने 'बादशाह-वंश' का उल्लेख किया है और मुगलों ने ही अपने को बादशाह कहना आरम्भ किया था। उनसे पूर्व पठान सुल्तान कहलाते थे। पर यह तर्क कुछ जँचता नहीं क्योंकि शाह, शाही, बादशाही आदि शब्दों का प्रयोग शेरशाह, सलीमशाह, आदिलशाह, सिकन्दरशाह आदि राजाओं और राजवंशों में अप्रचलित नहीं माना जा सकता। बल्कि इन राजाओं ने गद्दी पाते ही 'खाँ' के स्थान पर 'शाह' का लकब धारण किया है। अतः रसखान को पठान वंश का मानना ही युक्ति-युक्त है। कुछ लोग उनका मूल नाम मियाँ रसखाँ मानते हैं। यह 'खाँ' भी पठान होने की गवाही देता है।

रसखान का दिल्ली-निवासी होना तो उपर्युक्त अन्तःसाक्ष्य से सिद्ध होता है, पर उनके जन्म-स्थान के बारे में मतभेद है। शिवसिंह सेंगर ने रसखान को जिला हरदोई के पिहानी स्थान का बताया है और उनका मूल नाम इब्राहीम खाँ पिहानी वाला माना है। पर डॉ० याज्ञिक का कथन है कि पिहानी की बस्ती को हुमायूँ-अकबर ने सं० 1612 वि० में बसाया था। इसमें संदेह नहीं कि पिहानी पठानों की प्रसिद्ध बस्ती थी और रसखान के एक शिष्य कादिर बख्श पिहानी के थे। हो सकता है कि रसखान भी पिहानी आते-जाते रहे हों और इसी से पिहानी के साथ उनका सम्बन्ध जुड़ गया हो। यह भी संभव है कि दिल्ली छोड़ने के बाद कुछ समय रसखान पिहानी ही रहे हों।

रसखान ब्रज में कब आये और कब उन्होंने गो० विट्ठलनाथ जी से दीक्षा ली? इस प्रश्न पर विचार करना चाहिए। नाभादास जी के 'भक्तमाल' में सं० 1643 वि० तक के प्रसिद्ध भक्तों का उल्लेख है, पर रसखान का उसमें तथा भक्तमाल की प्रियादास की टीका में कोई उल्लेख नहीं मिलता। इससे यह सिद्ध होता है कि रसखान सं० 1643 वि० तक भक्त-कवि के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त नहीं कर सके थे। गो० विट्ठलनाथ जी बल्लभ सम्प्रदाय की गद्दी पर सं० 1599 वि० में बैठे थे और सं० 1642 वि० में उनका गोलोकवास हुआ। डॉ० याज्ञिक आदि कुछ विचारकों ने सं० 1612 वि० में दिल्ली छोड़ने के तुरन्त बाद रसखान के ब्रज आने की बात मानी है। पर यह अनुमान गलत है। यदि सं० 1612 में

ब्रज आकर रसखान कृष्ण-भक्त बन जाते और आचार्य विट्ठलनाथ से दीक्षा लेकर कृष्ण-लीलागान करने लगते तो उनकी सं० 1643 तक प्रसिद्धि अवश्य फैल जाती और बल्लभ सम्प्रदाय के कवियों और भक्तों में उनकी तभी गणना हो जाती। सं० 1612 वि० में रसखान अपने यौवन के शिखर पर थे। अत: इसी समय भक्ति की दीक्षा और वैराग्य की कल्पना वैसे भी असंगत है। अत: रसखान स्थायी रूप में संवत् 1637 वि० के आस-पास ही ब्रज में रहने लगे होंगे और इसी समय उन्होंने गो० विट्ठलनाथ से दीक्षा ली होगी। इसके बाद ही रसखान ने कृष्ण-लीला के सरस भक्तिपूर्ण छन्द रचने आरम्भ किए होंगे। मूल 'गुसाईं चरित' (बेनी माधवदास-विरचित) के अनुसार रसखान ने सं० 1634 वि०से सं० 1637 वि० तक तीन वर्ष यमुना तट पर राम-कथा सुनी थी। अत: यही अनुमान होता है कि उस समय तक उन्होंने कृष्ण-भक्ति-सम्प्रदाय में दीक्षा नहीं ली थी।

बाह्य साक्ष्य—बाह्य साक्ष्य में सबसे प्राचीन रचना 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' है जिसमें गो० विट्ठलनाथ जी के शिष्य 252 भक्तों का उल्लेख है। इसकी 218 वीं वार्ता में लिखा है :

"अब श्री गुसाईं जी के सेवक रसखान पठान दिल्ली में रहते तिन की वार्ता। सो वा साहूकार को बेटा बहुत सुन्दर हतो। वा छोरा सों रसखान को मन बहुत लग गयो। वाही के पीछे फिर्यो करे और वाको झूँठो खाय और आठ पहर वाही की नौकरी करे।...एक दिना चार वैष्णव मिल भगवद्-वार्ता करते हते। करते-करते ऐसी बात निकसी जो प्रभु में चित्त ऐसे लगावनो जैसे रसखान को चित्त साहूकार के बेटे में लग्यो है। इतने में रसखान वा रस्ता निकस्यो, विनने ये बात सुनी। तब रसखान ने कही जो तुम मेरी कहा बात करो हो। तब वैष्णवन ने जो बात हती सो कही। तब रसखान बोले, प्रभु को स्वरूप दीखे तो चित्त लगाए। तब वा वैष्णव ने श्रीनाथ जी को चित्र दिखायो। सो देखत ही रसखान ने वो चित्र ले लियो और मन में ऐसो संकल्प कर्यो जो ऐसो सरूप देखनो जब अन्न खानों और उहाँ सूँ घोड़ा पे बैठ के एक रात में वृन्दावन आयो सो जाइके गोविन्द कुण्ड पर रह्यो। तब श्रीनाथ जी ने जानी यह जीव दैवी है और शुद्ध है...तब श्रीनाथ जी ने दरसन दिये।...फेर श्रीनाथ जी गुसाईं जी सूँ कही, यह जीव दैवी है...याकूँ सरन लेओ।...अब श्री गुसाईं जी श्रीनाथ के वचन सुनकें गोविंद-कुण्ड पै पधारे और वाकूँ नाम सुनायो और साक्षात् श्रीनाथ जी के दरसन श्री गुसाईं जी के स्वरूप में वाकूँ भए।...तब रसखान जी श्रीनाथ जी के स्वरूप में आसक्त भए। तब रसखान ने अनेक कीर्तन और कविता और दोहा बहुत प्रकार के बनाये। जैसे-जैसे लीला के दरसन विनकूँ भए वैसे ही बरनन किए।"

इन वार्ताओं की ऐतिहासिकता में सन्देह हो सकता है, क्योंकि ये पुष्टिमार्ग

के प्रचारार्थ लिखी गई प्रतीत होती हैं। पर इनमें आंशिक सत्य अवश्य है। रसखान की रचनाओं में कृष्ण-लीलाओं का लगभग वैसा ही विस्तृत वर्णन है जैसा अष्टछाप के सूरदास, परमानन्ददास, नन्ददास आदि कवियों में मिलता है। इससे सिद्ध होता है कि रसखान पुष्टिमार्ग से अवश्य ही सम्बन्ध रखते थे। वे गो० विट्ठलनाथ जी के शिष्य होकर कवित्त-कीर्तनों-द्वारा कृष्ण का गुणगान करने लगे होंगे, इस बात में संदेह का कोई कारण नहीं है।

वार्ता से रसखान का दिल्ली-निवासी पठान होना भी सिद्ध होता है और यह भी पता चलता है कि कृष्ण में आसक्ति होने से पूर्व रसखान किसी लौकिक आलंबन पर आसक्त थे। वार्ता में एक साहूकार के सुन्दर लड़के पर आसक्ति की बात कही गई है, पर रसखान के दोहों में 'मानिनी-मोहनी' का उल्लेख है। हो सकता है कि रसखान किसी लड़के पर भी आसक्त रहे हों और मानिनी-मोहनी भी उनकी प्रिय पत्नी या प्रेमिका रही हो।

सं० 1687 वि० में रचित 'मूल गुसाईं चरित' (बाबा बेणीमाधवदास-कृत) में कहा गया है कि तुलसी के 'मानस' की रचना सं० 1633 वि० में समाप्त हो जाने के बाद जिला हरदोई के स्वामी नंदलाल के शिष्य दयालदास ने उसकी एक प्रतिलिपि की और तीन वर्ष तक यमुना तट पर अपने गुरु और रसखान को 'मानस' सुनाया। यद्यपि 'मूल गुसाईं चरित' की प्रामाणिकता में संदेह किया जाता है, पर रसखान-सम्बन्धी यह उल्लेख सत्य हो सकता है।

वैष्णवदास कृत 'भक्तमाल प्रसंग' (रचनाकाल सं० 1844 वि०) आदि 'भक्तमाल' के परवर्ती परिवर्द्धित रूपों में रसखान को कंठीधारी बताया गया है। तुरक के कंठी पहनने से बादशाह नाराज हुए और रसखान को बुलाकर कारण पूछा। रसखान ने उत्तर दिया, "हुजूर, काठ की नाव में पत्थर भी तर जाता है। इसी से मैंने काठ की कंठी पहनी है। मैं पत्थर हूँ।" बादशाह ने कहा कि इतनी (सौ) कंठी तो हिन्दू भी नहीं पहनते तब रसखान ने कहा—"वे हल्के हैं, मैं भारी पत्थर हूँ।" इन किंवदन्तियों और बाह्य-साक्ष्यों से एक बात स्पष्ट सिद्ध होती है कि रसखान की गणना 17वीं शताब्दी के भक्तों में हो गई थी।

निष्कर्ष यह कि रसखान दिल्ली के पठान थे। वे पठान राजवंश से सम्बन्ध रखते थे। उनका जन्म लगभग सं० 1590 वि० में हुआ था और लगभग 85 वर्ष की आयु में सं० 1675 वि० में वे स्वर्ग सिधारे। जब पठानों का पतन हुआ तब सं० 1613 वि० के आस-पास रसखान को दिल्ली छोड़नी पड़ी। वह कई वर्ष ब्रज, पिहानी आदि स्थानों पर इधर-उधर घूमते रहे। दिल्ली रहते समय वह किसी सुन्दर लड़के पर आसक्त हो गए थे। पर ईश्वर-प्रेम की ओर प्रवृत्ति होने के कारण इन्होंने वैराग्य धारण कर लिया और अपनी पत्नी या प्रेमिका आदि सब भौतिक मोह-जाल त्याग दिए। सं० 1634 वि० से 37 तक तीन वर्ष उन्होंने

यमुना तट पर रामकथा सुनी। फिर गो० विट्ठलनाथ जी से दीक्षा लेकर कृष्ण-लीला-गान करने लगे। उन्होंने कृष्ण की ब्रजलीलाओं पर अनेक कवित्त, दोहे आदि रचे। कृष्ण-भक्त-कवियों में उनकी प्रसिद्धि फैल गई। सं० 1671 वि० में रसखान ने 'प्रेमवाटिका' की रचना की। वह अन्त समय तक कृष्ण-भक्ति में तल्लीन रहे।

रसखान की रचनाएँ

रसखान भक्त-कवि थे। अन्य अधिकांश कृष्ण-कवियों की तरह उन्होंने मुक्तक काव्य की रचना की है। रसखान ने अपनी इन फुटकर रचनाओं में से केवल 53 दोहों की रचना 'प्रेमवाटिका' का नामकरण और क्रमबद्ध प्रणयन किया था। शेष मुक्तक काव्य सवैये-कवित्त और कुछ दोहे-सोरठे तथा गेय पद हैं जिनमें सवैयों की संख्या अधिक है। 11 छन्दों की 'दान लीला' नामक रचना भी रसखान-रचित बताई जाती है। काव्यत्व की दृष्टि से रसखान के कवित्त-सवैये ही उनकी अक्षय कीर्ति के स्तंभ हैं। इनमें कवि ने कृष्ण-भक्ति, ब्रजानुराग, कृष्ण-प्रेम, कृष्ण-लीला-वर्णन, रूप-वर्णन, रूपासक्ति, संयोग-वियोग-वर्णन आदि विषय अपनाये हैं। प्राचीन संग्रहकारों ने रसखान के इन स्फुट पद्यों को 'कवित्त रसखान' 'रसखान के कवित्त,' 'रसखान के सवैया-कवित्त' आदि नामों से संकलित किया था। 'सुजान रसखान' नाम भी बाद में प्रचलित हुआ। ये कुल 225 पद्य हैं। इनमें लगभग 200 सवैया छन्द हैं।

'प्रेमवाटिका' और रसखान का प्रेम-तत्त्व-निरूपण

रसखान-रचित 'प्रेमवाटिका' की कोई हस्तलिखित प्रति आज प्राप्य नहीं है। सर्वप्रथम स० 1948 वि० में इसका प्रकाशन हुआ था। पं० किशोरीलाल गोस्वामी ने मूल रचना का "परिष्करण, परिवर्द्धन और समलंकरण" किया था। हो सकता है कि मूल प्रति कुछ खण्डित और अशुद्ध रही हो। पर मूल पाठ की गोस्वामीजी ने कितनी रक्षा की, कुछ नहीं कहा जा सकता। इस समय जो रूप प्राप्य है, वह गोस्वामी जी द्वारा संशोधित रूप ही है। कुछ विद्वानों ने इसे कवि की आरम्भिक साधारण रचना मानकर इसका रचनाकाल सं० 1671 वि० के स्थान पर सं० 1641 वि० माना है। कुछ विचारकों ने इसके 53 दोहों को क्रमबद्ध न मानकर 'दोहावली' नाम से संकलित किया है और इस प्रकार 'प्रेमवाटिका' नाम भी लोप कर दिया।

'प्रेमवाटिका' के 53 दोहों में कवि ने प्रेम-भक्ति का निरूपण किया है। अंतिम तीन दोहों में अपना सांकेतिक परिचय और एक दोहे में रचना-काल दिया है। कवि ने प्रेम-निकेतन श्रीराधा-कृष्ण को प्रेमवाटिका के दो मालिन-माली माना

है ।।1।। कवि कहता है कि लोग 'प्रेम' 'प्रेम' पुकारते हैं, पर सच्चे प्रभु-प्रेम को नहीं जान पाते, भला प्रेमसुधा को यदि जान जाएँ तो जन्ममरण का क्लेश ही क्यों हो ? ।।2।। प्रेम-पंथ अत्यन्त अगम और अद्भुत है । जो इस प्रेम-सागर में एक बार घुस जाता है, फिर इससे बाहर नहीं जाता ।।3।। प्रेम की मदिरा छानने से ही सागर-जल के देवता वरुण बन गए और प्रेम के कारण विष-पान करने पर महादेव की पूजा की जाती है ।।4।। प्रेम-रूपी दर्पण अद्भुत खेल दिखाता है; इसमें आत्म-स्वरूप शुद्ध नजर आता है । अर्थात् "जीव पाव निज सहज स्वरूपा" ।।5।। प्रेम-पंथ अत्यन्त सहज-सीधा भी है और अत्यन्त टेढ़ा भी । यह कमलनाल से भी कोमल है और साथ ही खड्ग की धार से भी तीक्ष्ण और कठिन है ।।6।।

रसखान ने पुष्टिमार्ग की प्रेमभक्ति को अपनाया था । इसलिए वह सब विधि-निषेध, मर्यादा, लोक, लाज, नियम-बंधन आदि को प्रेम-मार्ग में अनावश्यक बताते हैं । प्रेम की प्रबल धारा सब शास्त्रोक्त विधि-निषेधों, लोक-मर्यादा, नियम-बंधन आदि को बहा देती है ।।7।। प्रेम-पंथ में परमानन्द का चन्द्रमा सदा प्रकाशमान रहता है, कभी भी भ्रान्ति का तिमिर नहीं छाता । शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की तरह वह आनन्द-प्रकाश बढ़ता ही रहता है, कभी क्षीण नहीं होता ।।8।। बिना प्रेम-भक्ति के ज्ञान का गर्व व्यर्थ है, फीका और निस्सार है ।।9।। श्रुति-स्मृति, शास्त्र-पुराण सबका सार-तत्त्व प्रेम ही है, प्रेम-बीज के बिना हृदय में प्रेमांकुर कैसे उत्पन्न हो सकता है ? ।।10।। विषयानन्द सच्चा आनन्द नहीं है, प्रेम के बिना सच्चे आनन्द (ब्रह्मानन्द) का अनुभव नहीं होता ।।11।। ज्ञान, कर्म और उपासना आदि अन्य सब साधन अहंकार उत्पन्न करने के कारण मोक्ष के निश्चित साधन नहीं हैं। प्रेमा-भक्ति ही सिद्धि का निश्चित मार्ग है ।।12।। ('ज्ञान योग सब कर्म तें, प्रेम परै ही सांच'—नन्ददास, 'भँवरगीत') । शास्त्रों और कुरान को पढ़कर लोग पंडित ओर मौलवी बन बैठते हैं, पर यदि प्रेम-तत्त्व नहीं जाना तो क्या किया ? ।।13।। (ढाई अच्छर प्रेम के, पढ़ै सो पंडित होय—कबीर) नारद आदि मुनियों का कथन है कि काम, क्रोध, मद, लोभ, भय, द्रोह, मात्सर्य, आदि सब विकार प्रेम के सामने नहीं ठहर सकते ।।14।। सच्चा प्रेम स्वार्थ-कामना से रहित होता है । वह रूप-गुण, यौवन, धन, आदि का हिसाब नहीं लगाता ।।15।। एकरस या एकनिष्ठ प्रेम निभाना बड़ा कठिन और नाजुक होता है ।।16।। संसार में सब-कुछ जाना जा सकता है, पर प्रभु तथा प्रेम दोनों के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता । यह गूंगे के गुड़ का स्वाद ही है ।।17।। प्रेम को जाने बिना संसार में कुछ भी जाना नहीं जा सकता और इसे जान लेने पर शेष कुछ जानने को नहीं रह जाता ।।18।। प्रभु-प्रेमानन्द सब प्रकार के आनन्द-सुख से श्रेष्ठ है । नारी-प्रेम का सुख या विषयानन्द आदि भौतिक सुख ही नहीं, पूजा-उपासना, ध्यान-धारणा आदि भी शुद्ध प्रभु-प्रेम से बहुत दूर हैं ।।19।। मित्र-बंधु, पुत्र-कलत्र का लौकिक

प्रेम शुद्ध प्रभु-प्रेम से भिन्न है ।।20।। वही प्रमाण-सिद्ध शुद्ध प्रभु प्रेम है जिसमें प्रिय से प्रेम के प्रतिदान की आशा नहीं की जाती, जो प्रेम अहैतुक होता है और सदा एकरस रहता है तथा जिसमें प्रिय को ही सर्वस्व माना जाता है ।।21।। वही प्रेम उत्तम है जिसमें प्रेमी भगवान के विस्मरण का भय मानता रहे, कुछ भी अन्य काम न करे और सब कष्ट सहने को तत्पर हो और अपने प्रेम को आसक्तिपूर्वक एकरस बनाये रखे ।।22।। प्रेम की फांस बहुत कड़ी होती है। इसमें बहुत तड़पना पड़ता है ।।23।। प्रेम हरि का रूप है और हरि प्रेम-स्वरूप है। सूर्य और धूप के समान दोनों एक ही हैं ।।24।। यह अग-जग एक प्रभु का ही अनेक रूपों में प्रसार है। यहाँ ज्ञान, ध्यान, विद्या-बुद्धि, मत-मतांतर, विवेक आदि सब बिना प्रभु-प्रेम के धूल-समान हैं ।।25।। जो प्रेम-फांस में पड़कर मरता है, वह मरकर भी अमर हो जाता है, आवागमन के चक्कर से छूट जाता है, किन्तु जिसने उस प्रेम का मर्म नहीं जाना, वह मरणोपरांत बार-बार मरता है, उसे मरणरहित दिव्य जीवन प्राप्त नहीं होता ।।26।। संसार में सबसे प्यारी वस्तु देह मानी जाती है, पर प्रेमाभक्ति देह से प्यारी है क्योंकि इसके लिए देह-त्याग से भी नहीं चूकना चाहिए ।।27।। जिस प्रभु-प्रेम और भक्ति की प्राप्ति होने पर स्वर्ग और ईश्वर-रूप पाने की भी चाह नहीं रहती, वही शुद्ध प्रेमाभक्ति है ।।28।। कोई इस प्रेम को फाँसी कहता है, कोई तलवार, कोई नेजा, भाला या तीर कहता है तो कोई ढाल। पर इसकी चोट से रोम-रोम में माधुर्य छा जाता है। इस प्रेमासक्ति में जो मरता है, वही अमर जीवन पाता है, जो छककर गिरता है, वही सँभलता है, और जो इसमें अपने अहम् को चकनाचूर कर देता है, वही सिद्ध बन जाता है ।।29-30।। प्रेम का खेल अद्भुत है। इसमें प्राणों की बाजी लगानी पड़ती है, और तब आत्म-समर्पणपूर्ण आंतरिक अलौकिक प्रेम प्राप्त होता है ।।31।। सिर कटा देने पर प्रेमी सिरताज हो जाता है (सिर राखे सिर जात हैं, सिर काटे सिर होय।—कबीर) ।।32।। प्रेम की अकथ कहानी लैला ही अच्छी तरह जानती थी जिसने अपना मन अपने प्रिय मजनूँ में मिला दिया था और इस प्रकार दो शरीर एक जान हो गए थे ।।33।। केवल दो हृदयों का मिलना भी प्रेम नहीं। जब दो शरीर भी एक हो जाएँ अर्थात् द्वैत का सर्वथा त्याग हो जाय तभी सच्चा प्रेम मानना चाहिए ।।34।। सब प्रकार की मुक्ति से प्रेम-भक्ति बड़ी है। भक्ति ही अन्तिम प्राप्य है, इसे पाने पर सब प्रकार की मुक्तियाँ भाग जाती हैं ।।35।। हरि के सब अधीन हैं, पर हरि स्वयं प्रेमाधीन है, इसलिए प्रेम की बड़ाई है ।।36।। सब धर्मों का मूल वेद है, पर प्रेम प्रभु-मूल है, इसी से प्रेम परम धर्म है ।।37।।

रसखान ने वल्लभाचार्य की तरह अनन्य गोपी-प्रेम को महत्ता दी है। यद्यपि यशोदा, नन्द और ब्रज के ग्वाल-बाल सब धन्य हैं, जिन्हें भगवान् कृष्ण का प्रेम प्राप्त हुआ, पर अनन्य प्रेममूर्ति गोपियों के समान अन्य कोई नहीं। गोपी-भाव की

भक्ति सर्वोच्च है ।।38।। उस गोपी-भाव प्रेम का कुछ आनन्द पाकर उद्धव कृत-कृत्य हो गए थे । अब कौन उस रस-माधुरी का पान कर सकता है ?।।39।। श्रवण, कीर्तन, दर्शन आदि द्वारा प्रेम उत्पन्न होता है । पर उस प्रेम के शुद्ध और अशुद्ध नाम के दो भेद होते हैं ।।40।। स्वार्थ-मूल प्रेम अशुद्ध प्रेम होता है तथा सहज-संभूत निष्काम प्रेम शुद्ध कहलाता है। नारद, शांडिल्य, गर्ग आदि ने शुद्ध प्रेम-भक्ति के तत्त्वों का विस्तृत निरूपण किया है ।।41।। जो प्रेम सहज-स्वाभाविक, सरस, निष्काम, अडिग और एकरस होता है, वही शुद्ध प्रेम कहलाता है ।।42।। प्रेम उपजाने वाला बीज भी प्रेम है और जहाँ प्रेम उत्पन्न होता है, वह भूमि भी प्रेम ही है । अर्थात् प्रेम-मूल भगवान् से ही प्रेम उत्पन्न होता है और जिस जीव के हृदय में प्रेम उत्पन्न होता है वह भी प्रेम-स्वरूप है ।।43।। प्रेम से ही प्रेम उत्पन्न होता है, बढ़ता है और फलता-फूलता है ।।44।। प्रेम ही बीज है, वही अंकुर है, वही आधार है। डाल, पात, पुष्प-फल सब कुछ वही है। प्रेममय भगवान् से ही यह प्रेममय सृष्टि हुई है । प्रेम ही जगत का कर्त्ता, कारण, कार्य है ।।45-47।। जिससे, जिसमें और जिसके लिए जग में सौन्दर्य या विशिष्टता है, वह सब प्रेम ही है ।।46।।

इससे आगे चार दोहों में कवि ने स्वपरिचय और रचनाकाल दिया है। हम पीछे इनका अवलोकन कर चुके हैं । अन्त में कवि अपने ग्रन्थ का समर्पण श्रीकृष्ण के युगल चरणों में करता है और कामना करता है कि इस 'प्रेमवाटिका' में रसिक-गण-रूपी भ्रमर सदा विहार करते रहें ।।52।। और अन्तिम दोहे में कवि अपनी भक्ति-भावना को व्यंजित करता हुआ कहता है कि जिस कुंज-निकुंज में राधा-कृष्ण गोपियों के साथ विहार करते हैं, वहाँ रसखान कोयल और तोता बनकर कूजन करता है ।।53।।

इस प्रकार 'प्रेमवाटिका' में कवि की प्रेमाभक्ति का ही तात्त्विक निरूपण हुआ है। इसमें भावरस केवल अन्तिम दो दोहों में ही दिखाई देता है। यह रचना सिद्धान्त या विचार-प्रधान ही है। उच्चकोटि के भक्त होने के कारण रसखान को ऐसे गूढ़ प्रेम-भक्ति-निरूपण का पूर्ण अधिकार था । यद्यपि उपर्युक्त प्रेम-निरूपण किसी सम्प्रदाय-विशेष से नहीं बाँधा जा सकता, तथापि जिस निर्हेतुक, एकांगी, एकरस, गोपी-भाव-प्रधान, मर्यादा-निरपेक्ष सगुण कृष्ण-प्रेम का प्रतिपादन रसखान ने इस रचना में किया है, वह उन्हें बल्लभसम्प्रदाय से ही सम्बद्ध करता है। वैसे रसखान की प्रेमाभक्ति नारद, शांडिल्य आदि मुनियों के भक्ति-निरूपण पर ही आधृत है। एक-दो दोहों के आधार पर कुछ विद्वानों ने रसखान के इस प्रेम-निरूपण पर सूफी प्रभाव का अवलोकन किया है। एक दोहे में रसखान ने ब्रह्मानन्द के समान विषयानन्द में भी प्रेम का महत्त्व बताया है :

आनन्द अनुभव होत नहिं, बिना प्रेम जगजान।
कै वह विषयानन्द कै, ब्रह्मानन्द बखान ।।11।।

एक अन्य दोहे (33 वें) में कवि ने लैला के अनन्य लौकिक प्रेम की प्रशंसा की है। इससे कुछ विचारक भ्रांतिवश रसखान की प्रेम-पद्धति को सूफी-प्रभावित मान बैठे हैं। कवि के सवैयों या 'प्रेमवाटिका' में वह प्रभाव कहीं दिखाई नहीं देता। उनकी प्रेमाभक्ति का स्पष्ट आलम्बन सगुण कृष्ण है। उसके प्रति गोपी-भाव की अनन्य भक्ति को ही रसखान ने महत्त्वमण्डित किया है। भारतीय प्रेमाभक्ति के सिद्धांत ही 'प्रेमवाटिका' में पाए जाते हैं। सूफियों के लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम-प्राप्ति की स्थिति कहीं नहीं है। अतः रसखान के इस प्रेम-निरूपण में सूफीवाद की झलक मानना भ्रांति है।

रसखान की भक्ति-भावना

'प्रेमवाटिका' में कवि ने जिस प्रेम-भक्ति का तात्त्विक निरूपण किया है, उसकी भावाभिव्यक्ति उसने अपने स्फुट कवित्त-सवैया आदि छंदों में कर दिखाई। रसखान के काव्य से स्पष्ट विदित होता है कि चाहे वह कृष्ण-भक्ति के किसी सम्प्रदाय से सम्बद्ध न हुए हों, पर उनकी भक्ति-पद्धति वल्लभसम्प्रदाय की पुष्टिभक्ति के ही सर्वाधिक निकट है। बल्लभसम्प्रदायी वार्ता-साहित्य से उनका पुष्टिमार्ग में दीक्षित होना सिद्ध होता है, पर उन्होंने गोसाईं विट्ठलनाथ या बल्लभ आदि किसी की गुरु-महिमा का गान अपने किसी पद्य में नहीं किया। इससे प्रमाणित होता है कि उन्होंने बल्लभ सम्प्रदाय की पुष्टि-भक्ति का प्रभाव ही स्वीकार किया था, वे सूरदास, परमानन्ददास या नन्ददास की तरह बल्लभ सम्प्रदाय के कीर्तन-कवि नहीं बने थे। उनके काव्य में यद्यपि कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का वर्णन मिलता है, पर कृष्ण की नैमित्तिक और वर्षोत्सव लीलाओं तथा अष्टयाम-सेवा-विधि आदि साम्प्रदायिक विधियों को उन्होंने नहीं अपनाया। इसी से हम उन्हें बल्लभ-सम्प्रदायी कृष्ण-भक्त-कवि न मानकर सम्प्रदाय-मुक्त कृष्ण-भक्त कवि ही मानते हैं।

रसखान के आराध्य : यद्यपि रसखान ने एक-दो छन्दों में शिव और गंगा-यमुना की महिमा का भी गान किया है, पर उनके आराध्य व्रजचन्द्र कृष्ण हैं। रस-खान ने स्पष्ट शब्दों में कृष्ण के अवतारी रूप को अपनी प्रेमभक्ति का आलम्बन बनाया है। उनका महाप्रभु बालकृष्ण बनकर देवकी के गर्भ से भादों की कृष्णाष्टमी को उत्पन्न हुआ और जिस प्रभु को योगी लोग अपनी साधना की जाग्रत अवस्था में भी नहीं पा सकते, उसे यशोदा ने रात को अपने पास सोते हुए पाया :

> **'भादव साँवरी आठई कौ रसखान महाप्रभु देवकी जायो।'**
> **'काहु न चौजुग जागत पायौ सो राति जसोमति सोवत पायो।'**

जिस प्रभु का गुणगान शेषनाग, शारदा, गणेश, इन्द्र, शिव, ब्रह्मा आदि देवता और नारद-जैसे मुनि निरंतर करते हैं, जिसका ध्यान योगी-तपस्वी-सिद्ध सदा लगाते हैं, वेद जिसे अनादि, अनंत, अखण्ड बताते हैं, नारद, शुकदेव और व्यास-जैसे पंडित

और ज्ञानी भी जिसका पता न लगा सके, वही प्रभु कृष्ण-रूप में अपनी ब्रजलीला कर रहा है और उस वालकृष्ण को अहीर की लड़कियाँ छछिया-भर छाछ के लिए नचा रही हैं ! ब्रजराज सगुण कृष्ण के प्रति अपनी आस्था जताते हुए रसखान कहते हैं कि ब्रह्म को मैंने वेद-पुराणों में ढूंढ़ा, पर उसका भेद कहीं नहीं मिला। अन्त में प्रेम-स्वरूप कृष्ण के रूप में ही उसका पता चला। वह अपनी प्रिया राधा के पाँव दबाता हुआ कुंज-कुटीर में मिला। इसी ब्रजचन्द कृष्ण को कभी मिट्टी खाते बालक के रूप में, कभी अपनी किशोर लीलाएँ करते हुए देखकर रसखान नहीं अघाते। जो प्रभु सृष्टिकर्ता है, विराट् पुरुष है, निरंजन और एक है, वही नन्द के आंगन में माटी खाता फिरता है ! —

जगत को ठाटौ महापुरुष विराटी जो,
निरंजन निराटी ताहि माटी खात देख्यौ मैं ।।

इसी ब्रजविहारी कृष्ण की रूप-माधुरी पर रसखान सौ जान से फिदा हुए हैं। इसी गुंजमाल-मोर-मुकुट-पीताम्बर-धारी कृष्ण को उन्होंने अपना आराध्य बनाया है। इसी के प्रति अपनी **अनन्य भावना** व्यक्त करता हुआ कवि कहता है कि चाहे कोई ब्रह्मा, गणेश, महेश, भवानी, लक्ष्मी आदि किसी भी देवी-देवता की पूजा और भक्ति करे, मेरा तो एकमात्र साध्य कृष्ण है, कृष्ण के सिवाय मुझे किसी की चिन्ता नहीं, चाहे तीन लोक रहें, न रहें :

सेष सुरेस दिनेस गनेस ब्रजेस धनेस महेस मनावो।
कोऊ भवानी भजौ मन की सब आस सबै बिधि जाइ पुरावो।।
कोऊ रमा भजि लेहु महा धन कोऊ कहूँ मन बांछित पावौ।
पै रसखानि वही मेरो साधन और त्रिलोक रहौ कि नसावौ।।

उसी नन्दनन्दन 'बाँसुरी वारे स्याम' पर रसखान को विश्वास है। वही तो 'बड़ा रिझवार है', उसी की कृपा से हृदय के सब दुख दूर हो जाएँगे। वह 'राखन-हारो' है तो कोई क्या बिगाड़ सकता है? उसकी कृपा और **रक्षण पर विश्वास** जताते हुए रसखान कहते हैं कि द्रौपदी, गणिका, गज, गीध, अजामिल-जैसों का जिसने उद्धार किया, अहिल्या को मुक्ति प्रदान की, प्रह्लाद का दुख दूर किया, वह रक्षक हो तो फिर चिन्ता क्या ? —

द्रौपदी औ गनिका गज गीध अजामिल सौं कियो सो न निहारो।
गौतम-गेहिनी कैसी तरी, प्रहलाद को कैसे हरयौ दुख भारो।।
काहे को सोचि करै रसखानि कहा करि है रबिनन्द बिचारो।
ता खन जा खन राखियै माखन-चाखनहारो सो राखनहारो।।

रसखान ने दो-तीन पदों में राधा-कृष्ण की युगल-उपासना का भी भाव जताया है। एक दोहे में रसखान ने युगल की दया की आशा और विश्वास को प्रकट किया है :

सरस नेह लवलीन नव, द्वै सुजान रसखानि।
ताके आस बिसास सौं पगे प्रान रसखानि।।

अपने आराध्य कृष्ण के प्रति सर्वार्पण में ही रसखान जीवन की सार्थकता मानते हैं। वाणी की सार्थकता कृष्ण के गुण-गान में ही है, कानों की सार्थकता कृष्ण के वचनामृत में डूबने से है। हाथ वही सार्थक हैं जो कृष्ण की सेवा करें, पाँव वही सार्थक हैं जो कृष्ण का अनुगमन करें और प्राणों की सार्थकता इसी में है कि कृष्ण के साथ रहते हैं। कवि इसी से अपने आराध्य से प्रार्थना करता है कि यदि जीभ को अपनी इन्द्रिय-सार्थकता सिद्ध करनी है तो मुझे इस जीभ से अपना नाम उच्चारण करने दो, हाथों को अपने कुंज-कुटीरों में झाड़ू लगाने का सत्कार्य करने दो, मुझे ब्रज की पुण्य रज में अपने शरीर और अंगों को धूसरित करने दो और यदि आप मुझे निवास-स्थान देना चाहते हैं तो यमुना तट के कदम्ब की डाल का वास दीजिए, जहाँ बैठकर आप बाँसुरी बजाते हैं :

जो रसना रसना विलसै तेहि देहु सदा निज नाम उचारन।
मो कर नीकी करै करनी जु पै कुंज कुटीरन देहूँ बुहारन।।
सिद्धि समृद्धि सबै रसखानि लहौं ब्रज-रेनुका अंग संवारन।
खास निवास दियो जुपै तौ वही कालिन्दी-कूल कदम्ब की डारन।।

इन पंक्तियों में नाम-स्मरण, कर-सेवा, ब्रज-प्रेम, सामीप्य और सालोक्य भावना आदि पुष्टि भक्ति के कई रूप प्रकट हुए हैं। कवि की सामीप्य और सालोक्य भक्ति-भावना का भव्य प्रकाशन रसखान के प्रसिद्ध सवैये 'मानुष हौं तो वही रसखान' में भी हुआ है। भक्त सायुज्य मुक्ति नहीं चाहता, वह तो अपने आराध्य के परमधाम का ही अंग बन जाना चाहता है ताकि उस लीलामय की लीलाओं का प्रत्यक्ष दर्शन करता रहे। कृष्ण के ब्रज-प्रेम को व्यक्त करते हुए रसखान ने अपने प्रसिद्ध सवैये—'या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहुं पुर को तजि डारौं' में वस्तुतः अपना ब्रज-प्रेम ही प्रदर्शित किया है।

कवि सब प्रकार के जप-तप, समाधि-ध्यान, तीर्थ-व्रत, पुराण-कथा आदि साधनों को व्यर्थ समझता है। वह तो एकमात्र 'स्याम' के प्रेम को ही सबसे बड़ा साधन और सिद्धि मानता है :

एकसु तीरथ डोलत हैं इक बार हजार पुरान बके हैं।
एक लगे जप में तप में इक सिद्ध समाधिन में अटके हैं।
चेत जु देखत हो रसखान सु मूढ़ महा सिगरे भटके हैं।
साँचहि वे जिन आपुनपौ यह स्याम गुपाल पै वारि छके हैं।

कृष्ण-गोपाल पर स्वयं को न्यौछावर कर देना ही सच्ची साधना है। कवि ने इन पंक्तियों में अपनी अनन्य भावना प्रकट करने के साथ-साथ सभी बाह्य साधनों का भी खण्डन किया है। कृष्ण-प्रेम ही सबसे बड़ी सम्पत्ति है। कृष्ण-प्रेम बिना सब

प्रकार के वैभव, इन्द्र-समान राजाधिराज बन प्रभुता और धन-वैभव पाना, सब साधनों को अपनाना—गंगा-स्नान, दान-पुण्य, वेद-पाठ, ध्यान-जप, योग-साधना, तप-संयम, प्राणायाम, तीर्थ-व्रत आदि—सब व्यर्थ हैं :

जप बार-बार तप-संजम बयार-व्रत
तीरथ हजार अरे बूझत लबार को।
कीन्हौं नहीं प्यार नहीं सेयौ दरबार
चित्त चाह्यौ न निहारयौ जो पै नंद के कुमार को ।।

कंचन के साथ ही कामिनी के आकर्षण को झुठलाता हुआ कवि कहता है कि नारी के सौंदर्य पर मुग्ध हो कृष्ण-प्रेम-भक्ति से भटक जाना मूर्खता है। नारी के उन्नत उरोज स्वर्ण-कलश नहीं वरन् चाम में मढ़ी आम की गुठली हैं, यह सुन्दरियों की वेणी नहीं, अपितु नरक को ले जाने वाली सीढ़ियाँ हैं :

है कुच कंचन के कलसा न ये आम की गाँठ मढीक की चाम मैं।
बेनी नहीं मृगनैननि की यै नसेनी लगी जमराज के धाम मैं।।

इस प्रकार लौकिक अनासक्ति से ही कृष्ण-आसक्ति संभव है।

रसखान ने सूरदास, परमानन्ददास आदि अन्य कृष्ण-भक्त कवियों की तरह स्पष्ट रूप में विनय-भक्ति या नवधा भक्ति प्रकट नहीं की। कृष्ण-लीला-गान के रूप में ही उन्होंने स्मरण, कीर्तन, गुण-गान, नाम-महिमा आदि नवधा भक्ति के कुछ अंग अपनाये हैं। अर्चना, पाद-सेवन, सख्यादि कुछ अंगों का उनमें अभाव है। रसखान की भक्ति भी रूप-मार्ग की आसक्तियों पर आधारित है। रूपासक्ति का रसखान ने अनेक छन्दों में वर्णन किया है। 'प्रेमवाटिका' में कवि ने गोपी-भाव की महत्ता स्वीकार की है। अतः रसखान की भक्ति-भावना में गोपी-भाव के कारण उसका मुख्य रूप माधुर्य-भाव की भक्ति का ही है, यद्यपि उन्होंने वात्सल्यासक्ति को भी कुछ छन्दों में प्रकट किया है। रसखान के अनेक छन्दों में कृष्ण-गोपी-प्रेम की व्यंजना में न तो सूरदास की तरह अन्तिम पंक्ति में भक्ति-भाव का निदर्शन है, न अलौकिक प्रेम की स्पष्ट व्यंजना ही है। इसी से कई बार यह प्रश्न उठता है कि इस प्रेम को रसखान ने अपनी लौकिक अनुभूति के रूप में प्रकट किया है कि अलौकिक अनुभूति के रूप में ?

इस सम्बन्ध में हमें नन्ददास आदि अन्य कृष्ण-भक्त-कवियों की तरह रसखान के बारे में भी यही कहना पड़ता है कि कवि ने इस प्रेम की व्यंजना अपनी गोपी-भाव की माधुर्य भक्ति के रूप में ही की है। इसका एक बड़ा प्रमाण यह है कि कवि ने कुछ पद्यों में स्पष्टतः ब्रजबिहारी कृष्ण के भगवान्-रूप का वर्णन किया है। निम्न पद्य में भी स्पष्ट कथन है कि नन्द-यशोदा, राधा और गोपियों का कृष्ण-विरह पूर्णब्रह्म के प्रति है :

गोकुलनाथ वियोग प्रलै जिमि गोपिन नंद जसोमति जू पर।
वाहि गयौ अँसुवान प्रवाह भयौ जल मैं ब्रजलोक तिहूँ पर ।।

तीरथराज-सी राधिका प्रान सु तो रसखान मनौं ब्रज भू पर।

पूरन ब्रह्म ह्वै ध्यान रह्यौ पिय औधि अखैबट पात के ऊपर।।

अतः बाँके-बिहारी की बड़ी-बड़ी आँखों, नैन-कटाक्षों, मृदुल वाणी, मुरली-माधुरी, मंजुल मुस्कानि, कुंजन-कुंजनि डोलनि, घुंघराली लटें, श्याम शरीर, उरमाल, पीत-पट, मोरमुकुट, जरतारी पगिया वाली अलबेली मूरति और अद्‌भुत बानक के प्रति गोपियों की रूपासक्ति नारदीयभक्ति की ही आसक्ति समझनी चाहिए। इस दृष्टि से नारदीय भक्ति-सूत्र की कुछ आसक्तियाँ भी रसखान की भक्ति-भावना में समाविष्ट हैं पर सहृदय की अनुभूति की दृष्टि से ऐसे अनेक छन्दों में श्रृंगार रस ही माना जाएगा जहाँ अलौकिक भावना स्पष्ट नहीं है। अतः हमने रूपासक्ति, रूपलिप्सा, विरह-वेदना आदि से सम्बन्धित पद्यों को श्रृंगार रस के अन्तर्गत ही गिना है। वैसे वे कवि की गोपी-भाव की माधुर्य भक्ति के ही परिचायक हैं।

रसखान ने अन्य कृष्ण-भक्त-कवियों की तरह कृष्ण की जन्म-लीला से लेकर किशोर और यौवन-लीलाएँ—जैसे जन्म, छठी, गोचारण-लीला, कालीय दमन, चीरहरण लीला, कुवलयापीड़-बध, रासलीला, फाग-होली-उत्सव आदि का भी एक-एक, दो-दो छन्दों में वर्णन किया है। छठी के रूप में बाल-लीला का यह सवैया देखिये, यहाँ वात्सल्यासक्ति या वात्सल्य भाव की भक्ति भी स्पष्ट है :

लाल की आज छठी ब्रज लोग अनन्दित नन्द बड्‌यो अन्हवावत।

चाइन चारु बधाइन लै चहूँ ओर कुटुम्ब अघात न यावत।

सूरदास, नन्ददास, परमानन्ददास आदि अष्टछापी कवियों ने कृष्ण की बाल-लीला, जन्म-बधाई तथा अन्य लीलाओं व पर्व-उत्सवों का जो व्यापक और विस्तृत वर्णन किया है, वह रसखान में नहीं है।

रसखान ने एक-दो छन्दों में गंगा और शिव की महिमा भी गाई है जो उनकी उदार भक्ति-भावना की सूचक है। गंगा-महिमा का निम्न सवैया मार्मिक है :

बैद की औषध खाइ कछु न करै बहु संजम री सुनि मोसें।

तो जल-पान कियौ रसखानि संजीवन जानि लियौ रस तोसें।।

ए री सुधामई भागीरथी नित पथ्य अपथ्य बनै तोहि पोसें।

आक धतूरो चबात फिरै बिख खात फिरै सिव तेरे भरोसें।।

किन्तु गंगा और शिव का यह महिमा-वर्णन कवि को उदार वैष्णव ही सिद्ध करता है। रसखान ने शिव या गंगा को अपनी उपासना या भक्ति का आलम्बन नहीं बनाया। हम पहले ही कह चुके हैं कि रसखान ने प्रेम-भक्ति का सर्वथा भारतीय वैष्णवी दृष्टि से निरूपण और साधन किया है, उनकी प्रेम-भावना या भक्ति को सूफी-प्रभाव का परिणाम मानना भ्रांति ही है। 'प्रेमवाटिका' में कवि ने जो प्रेम-तत्त्व का निरूपण किया है, वह भी सर्वथा भारतीय दृष्टिकोण का परि-

चायक है। प्रेम-निरूपण-सम्बन्धी कुछ विचारों का स्वतः ही सूफी-प्रेम भावना के अनुरूप हो जाना यह सिद्ध नहीं कर सकता कि कवि पर सूफी प्रभाव गहरा था। डॉ० माजदा असद ने अपने शोध-प्रबन्ध 'रसखान काव्य तथा भक्ति-भावना' में जो यह कहा है कि "उनकी (रसखान की) भक्ति का बाहरी स्वरूप भारतीय है किन्तु आत्मा सूफी साधना से रंजित है"[1]—उससे सहमत होना कठिन है: क्या सगुण कृष्ण को आलम्बन बनाना, उसकी बाल छवि व रूप-माधुरी तथा लीलाओं पर आसक्ति, उसके परमधाम ब्रज से अनुराग, उसकी लकुटी, मुरली आदि पर न्योछावर होना, उसकी रक्षण-कृपा आदि पर विश्वास, उसके प्रति आत्मसमर्पण, उसका गुण-गान, महात्म्य-श्रवण-कीर्तन, राधा-कृष्ण के युगल रूप की उपासना, गोपी-भाव की माधुर्य भक्ति आदि बातें "भक्ति का बाहरी स्वरूप" है ? यदि ये सब बाहरी बातें हैं तो भीतरी आत्मा क्या हो सकती है ? 'प्रेमवाटिका' के एक-दो दोहों में लैला-मजनूं के प्रेम का हवाला तथा प्रेम-तत्त्व के निरूपण को ही देखकर रसखान पर सूफी प्रभाव मान लेना बड़ी भ्रांति है—विशेष रूप से इसे ही "भीतरी आत्मा" समझ लेना दुराग्रह ही है। अतः रसखान सच्चे वैष्णव भक्त थे। उन्हें स्वच्छन्द प्रेमी मानना भी भूल है। वे नन्ददास आदि कृष्ण-भक्तों की परम्परा के ही कृष्ण-भक्त-कवि हैं, इसमें जरा भी संदेह नहीं।

रसखान का शृंगार-वर्णन

रसखान का प्रेम-शृंगार-वर्णन भी सर्वथा हिन्दी कृष्ण-प्रेम-वर्णन की परम्परा का परिचायक है। उसमें कहीं भी सूफी-प्रेम-पद्धति का कोई चिह्न नहीं दिखाई देता। नंददास आदि कृष्णकवियों की तरह यह कृष्ण-प्रेम रूपासक्ति पर आधारित है। कृष्ण की मनोहर मूरति और रूप-माधुरी पर गोपियाँ और राधा मुग्ध हुई रहती हैं। संध्या के समय गोचारण से आते कृष्ण का मुख-मण्डल देखकर उनका दिन-भर का सारा ताप समाप्त हो जाता है—**"देखि सु आनन कौं रसखानि तज्यौ सब घोस को ताप-कसाला"**। पूर्व-जन्म के पुण्यों से ही कृष्ण-दर्शन का यह सौभाग्य प्राप्त होता है: **"पूरब पुन्यनि तें रसखानि सु मोहिनी मूरति आनि निहारी।"** कृष्ण का रूप-दर्शन 'तन तपनि बुझा' देता है और 'प्राननि को रिझा' देता है। उस रूप-सागर में गोपियों का मन डूब जाता है: **"रसखानि लखें मन बूड़ि गयौ मधि रूप के सिंधु कलोलत है।"** कृष्ण के बंक और विशाल नैनों के बाणों की चोट कौन नवेली सह सकती है ? ये हृदय को बेध डालते हैं और ब्रज-युवतियाँ तब कृष्ण-प्रेम में दीवानी हुई डोलती हैं। सब सुध-बुध खो बैठती हैं। द्रुम के साथ लिपटी बेल की तरह उनका कृष्ण से लगाव हो जाता है। सारे ब्रज में कृष्ण की

1. रसखान—काव्य तथा भक्ति-भावना, पृ० 312।

रूप-छवि तथा उनके कुंडल-ललित गंडस्थल पर क्रीड़ति अलक-लटों का कोलाहल मचा हुआ है : "रौरि परी छवि की ब्रजमण्डल कुंडल गंडनि कुंतल केलि ।" कभी उसकी मस्तानी चाल चित्त में चुभ जाती है, कभी पीत पट और मुकुट की झलक हृदय को बेध डालती है ।

इस रूप-माधुरी के गंभीर प्रभाव का वर्णन रसखान ने अनेक पदों में किया है । न-केवल नैन उस रूप-सुधा का पान करने को ललचाते रहते हैं और गोपियाँ लोकलाज त्याग कर उसके दर्शनों को व्याकुल रहती हैं, अपितु कृष्ण को देखकर वे अपनी तन-मन की सुध खो बैठती हैं, सिर पर रखा दधि-भाजन गिरकर टूट जाता है और लाज का नाता टूट जाता है :

छूट गयौ रसखानि लखें उर भूलि गई तन की सुधि सातो ।
फूटि गयौ सिर तें दधि-भाजन टूटिगयौ नैनन लाज को नातो ।।

वे 'सागर को सलिला जिमि' कृष्ण की ओर दौड़ती फिरती हैं, कुललाज के पुल टूट जाते हैं । उस सुधा-रस की घूंट का पान कर मन मत्त हुआ और-और पान करने को कृष्ण के संग लगा फिरता है । इस रूप-ठगौरी का वर्णन करते रसखान नहीं अघाते । ब्रज में कौन 'भटू' है जो कृष्ण ने 'लटू नहीं कीनी' । नैन-मार्ग से अब वह मूर्ति हृदय में भी बस गई है । गोपियां बिना दाम ही कृष्ण-प्रेम में बिक गई हैं । कृष्ण ने प्रेम का फंदा डालकर चित्त चुरा लिया है ।

कृष्ण भी नटखट है । गोपियाँ नीर-भरन को जाती हैं तो रोकटोक करता है, दधि बेचने जाती हैं तो दधि-दान लेता है । अकेली पड़ी गोपी की तो लाज ही ले लेता है और मनभाय करता है :

काह कहूँ सिगरी री बिथा रसखानि लियौ हँसि कै मुसकायौ ।
पाले परी मैं अकेली लली, लला लाज लियौ सुकियौ मन-भायौ ।।

रसखान ने जहां राधा-कृष्ण का प्रेम स्वकीय-रूप में चित्रित किया है, वहाँ गोपियाँ अधिकांशतः परकीया हैं । कृष्ण की मुरली-ध्वनि ने ब्रज में दुहाई-सी फेर दी । एक गोपी का तो उसने मुरली-ध्वनि में नाम ही गा दिया, बस उसकी सास पीछे पड़ गई :

काल्हि भटू मुरली-धुनि में रसखानि लियौ कहूँ नाम हमारौ ।
ता छिन तें भई बैरनि सास कितौ कियौ झांकन देति न द्वारौ ।।

पर अटक कब तक रहती ! उसकी बाँसुरी का जादू ही ऐसा है कि हर कोई खिचा आता है । कृष्ण हरदम बाँसुरी होठों को लगाये रहते हैं । रसखान ने जहाँ बाँसुरी के मुग्धकारी प्रभाव का वर्णन कई छन्दों में किया है, वहाँ एक-दो छन्दों में उसे लेकर गोपियों के सपत्नी-भाव का भी वर्णन किया है । गोपियों को बाँसुरी से ही ईर्ष्या हो जाती है :

कान्ह भए बस बाँसुरी के अब कौन सखि ! हमको चहि है।
निस द्योस रहें संग साथ लगी यह सौतिन तपन क्यों सहि है ।।

इस रूप-आकर्षण से अब गोपियों का **पूर्वराग** जाग जाता है। वे इसे अब नेह का बंधन समझ लेती हैं, **रूपासक्ति अब प्रेमासक्ति में बदल जाती है।** चाहे सारा गाँव निन्दा करे, पर गोपी कृष्ण-प्रेम नहीं छोड़ सकती : **"गाँव भरौ कोउ नांव धरौ सांवरी हौं बनिहौं सुकुमारी।"** आँखों का यह हाल है कि कृष्ण के बिना जलहीन मछली की तरह तड़पती हैं। **"उन्हीं बिन ज्यों जलहीन ह्वै मीन सी आँख मेरी अंसुवानी रहैं।"** आँखें मधु की मक्खियाँ हो गई हैं, भला नेह का यह बंधन कैसे छूट सकता है ?

रसखान ने सैंकड़ों पदों में कृष्ण के बांकपन और गोपियों की आसक्ति का ही अधिक वर्णन किया है। नारी-सौन्दर्य का वर्णन केवल दो-तीन छन्दों में राधा के रूप-वर्णन में हुआ है। ब्रह्मा ने संसार की प्यासी आँखों की तृप्ति के लिए अमृत-सार को संजोकर दूसरा चन्द्रमा ही राधा के रूप में धरती पर प्रकट कर दिया है। राधा की कमानी-सी भौंहें सब का गर्व चूर कर देती हैं, विशाल नेत्र खिले कमल से श्रेष्ठ हैं और खंजन, मीन, मृग को लजाने वाले हैं। राधा के रस-भरे स्तनों को देखकर ऋषि-मुनियों की भी समाधि टूट जाती है :

जाको लसै मुख चन्द समान कमानी सी भौंह गुमान हरैं।
दीरघ नैन सरोजहुँ तें मृग खंजन मीन की पाँत दरैं ।।
रसखान उरोज निहारत हीं मुनि कौन समाधि न जाहि टरैं।

रसखान ने सौन्दर्य के प्रभाव का ही मुख्यतः वर्णन किया है। उनके छन्दों में सौंदर्य का संश्लिष्ट चित्रण नहीं मिलता। वे एक-दो अंगों का परम्परागत ढंग से वर्णन करके प्रभाव जताने लगते हैं। इसी से न तो कृष्ण के रूप-सौन्दर्य के और न ही राधा के रूप के सौन्दर्य-चित्र उनके छंदों में विशेष पाये जाते। राधा की **वय-संधि** का यह परम्परागत वर्णन फिर भी कुछ सुन्दर बन पड़ा है। यौवनागम से राधा की तिरछी और भृकुटी तक फैली आँखों ने गर्वीली वक्रता धारण कर ली है। कमर पतली हो गई है। शरीर की कांति दामिनी से भी बढ़ गई है। अंगों में कामदेव की तरंगें लहराने लगीं हैं, उरोज उभर आए हैं। यौवन-ज्योति ऐसे दमक रही है, जैसे दीपक की बाती उकसा दी गई हो :

सोहै तरंग अनंग की अंगनि ओप उरोज उठि छतियाँ की।
जोबन-जोति सु यौं दमकै उकसाइ दई मनो बाती दिया की ।।

भरे समाज में राधा और कृष्ण सैन-संकेतों से ही अपना-अपना प्रेम एक-दूसरे को जताते हैं। दीपावली के दिन वृषभानु के घर ग्वाल-ग्वालिनों की भीड़ लग गई। उस समय राधा और कृष्ण ने आँखों से संकेत किये। कृष्ण ने आँखों में अंजन लगाया जो इस बात का संकेत था कि मैं तुम्हें अंजन की भाँति सदा आँखों में

बसाकर रखूंगा, राधा ने अपने मस्तक पर कुंकुम का तिलक लगाया और जताया कि तुम मेरे सौभाग्य-तिलक हो :

रसखान तबै हरि राधिका यौं कछु सैननि हीं रस बेल बई।
उहि अंजन आँखिनि आँज्यौ भटू इन कुंकुम आड़ लिलार दई।।

जेठ की तपती दुपहरी में राधा-कृष्ण का वन में मिलन होता है। तपती घाम सुख-धाम बन गई। दोनों 'बतरस' में ही मग्न हो गए। अंग-अंग में आनन्द छा गया :

मोहिनी मोहन सों रसखानि अचानक भेंट भई बन माहीं।
जेठ की घाम भई सुख धाम अनंद ही अंगहीं अंग समाहीं।।

कवि ने कृष्ण-राधा के दूलह-दुलहिन के रूप में मिलन का वर्णन भी एक सवैया में किया है : इस मिलन में कामोत्तेजना भी दिखाई देती है। पिया और प्यारी जब 'सनेह सने' विहार करते हैं तो "सिहरैं नव जोबन-रंग-अनंग सुभग अपांगनि की गहरैं"। यही नहीं, सुरत के वर्णन भी दो-तीन सवैयों में पाये जाते हैं। **सुरतांत नायिका** का वर्णन इन पंक्तियों में देखिए : नायिका का अलसाया मुख, रतनारी आँखें, सफेद कोए और रात-भर जागने के कारण जंभाई लेने से निकले आँसू ऐसे प्रतीत हो रहे हैं मानों चंद्रमा पर बिम्ब, बिम्ब पर कुमुद और कुमुद पर मोती हों—

सोई हुतीं पिय की छतियाँ लगि बाल प्रवीन महा मुद मानै।
केस खुले छहरैं बहरैं छबि देखत मैन अमानैं।।
वा रसमैं रसखानि पगीं रति रंग जगी अँखियाँ अनुमानैं।
चन्द पै बिम्ब औ बिम्ब कैरव कैरव पै मुक्ता प्रमानैं।।

रसखान ने तीन-चार सवैयों में राधा-कृष्ण और कृष्ण-गोपियों के होलि-फाग-मिलन का भी वर्णन किया है। इस संयोग में **क्षणिक मान** भी रस घोलता है। एक मानवती गोपी सखियों के मनाने पर जरा नहीं मानी, पर जब नभ घनमण्डल से आच्छादित हो गया, ऋतु सुहावनी हो गई तो उसका रोष कपूर की तरह उड़ गया !

सखियाँ मनुहारि कै हारि रहीं भृकुटी को न छोर ललीं नयौ।
चहुंधा घन घोर नयौ उनयौ नभ नायक ओर चितै चितयौ।।

वियोग-वर्णन : रसखान ने संयोग-अन्तर्गत प्रकृति के उद्दीपन का विशेष वर्णन नहीं किया। न उसने संयोग में षड्ऋतु वर्णन किया है और न वियोग में बारह-मासा-वर्णन। वियोग का अपेक्षाकृत कम वर्णन हुआ है। कृष्ण के वनांतर या पलकांतर विरह का वर्णन पूर्वराग या रूप-लिप्सा के ही रूप में हुआ है। कृष्ण के मथुरा चले जाने से ही वास्तविक विरह की स्थिति उत्पन्न होती है। गोपी ने कृष्ण के प्रेम में अपना सब कुछ न्योछावर कर दिया, पर कृष्ण ने यह क्या किया कि उससे मुँह मोड़कर ही चला गया।

वा मुस्कान पै प्रान दियौ जिय जान दियें वही तान पै प्यारी।
मान दियौ मन-मानिक के संग वा मुख मंजु पै जोवन वारी।।
वा तन कौं रसखानि पै री तन ताहि दियौ नहिं ध्यान बिचारी।
सो मुंह मोरि करी अब का हुए लाल लैं आज समाज मैं ख्वारी।।

वसंत ऋतु विरहिणी की विरह-ज्वाला को धधका रही है। बागों में खिले फूल, उन पर गूँजते भंवरे, मोरों का शोर, कोयल की काकली सब हृदय को बेध रहे हैं। ऐसी मादक ऋतु में सबके कंत विदेश से आ जाते हैं, पर कृष्ण ने कैसी निठुरता बरती है कि इस विरह-व्यथा का तनिक भी विचार नहीं करता :

ऐसे कठोर महा रसखानि जु नेकहू मोरी ये पीर न पावत।

मार्ग जोहते नैंन धुंधले पड़ गए हैं, गुण-गान करते जीभ थक गई है। अवधि गिनते-गिनते अंगुलियाँ थक कर हार गईं, पर कृष्ण के आने का कोई शुभ-शकुन नहीं मिला। कोई पथिक उस मनभावन के आवन की सूचना नहीं देता। अवधि वामन के डग की तरह बढ़ती जा रही है : प्रतीक्षा का कैसा सुन्दर प्रकाशन हुआ है—

मग हेरत घूंधरे नैंन भए रसना रट वा गुन गावन की।
अंगुरी गनि हार थकी सजनी सगुनौती चलै नहिं आवन की।।
पथिकौ कोऊ, ऐसो जु नांहि कहै सुधि है रसखान के आवन की।
मन भावन आवन सावन में कही औधि करी डग बावन की।।

विरह-ज्वाला को शान्त करने की अपेक्षा शीतल उपचार उसे और प्रज्वलित करते हैं। गुलाबजल और खस छिड़कना, कंजमाला का बिछावन तथा चंदन-लेप आदि सब व्यर्थ हैं। उल्टा जलन को और अधिक बढ़ाते हैं :

"एते इलाज बिकाज करौ रसखानि कों काहे को जारे पै जारौ।"

गोपियों को कुब्जा के प्रति ईर्ष्या होती है। वे अपनी विवशता प्रकट करती हुई कहती हैं कि हम क्या करें, दुख सहने के सिवाय और कोई चारा नहीं है। हमें और कुछ नहीं चाहिए, केवल कृष्ण को देखना चाहती हैं। यदि कृष्ण को अपनी दासी से ही प्रेम करने की आदत हो गई है, तो हे सखी, सब कृष्ण की दासियाँ ही बन जाओ :

"चेरियै सौं जु गुपाल रच्यौ तौ भलौ ही सबै मिलि चेरी कहावैं।"

इस सवैये में गोपियों की विवशता, दीनता, दर्शन-अभिलाषा आदि मनोदशाओं का सुन्दर प्रकाशन हुआ है। पर रसखान के शृंगार-वर्णन में वह व्यापकता, भावानुभूति की वह मनोवैज्ञानिक मार्मिक विविधता नहीं पाई जाती जो सूरदास के शृंगार-वर्णन में है। इस दृष्टि से रसखान नंददास से भी पिछड़े प्रतीत होते हैं। रसखान ने वियोग का अधिक वर्णन नहीं किया। संयोग में ही उनका मन अधिक रमा है। वियोग के अन्तर्गत पूर्वराग और मान का वर्णन रसखान ने

संयोग-हेतु रूप-लिप्सा, उपभोग-लालसा, पलकांतर विरह तथा क्षणिक मान के रूप में ही किया है। प्रवास का वर्णन भी कम ही हुआ है। उपर्युक्त उदाहरणों के अतिरिक्त केवल चार-पाँच सवैयों में रसखान ने गोपियों के उद्धव-प्रति वचन प्रकट किए हैं, पर इनमें उनकी मार्मिक विरह-व्यथा के स्थान पर निर्गुण और योग की हँसी उड़ाई गई है। गोपियाँ उद्धव का परिहास करती हुई कहती हैं कि हे सखी ! अब शृंगारादि छोड़कर शरीर पर भस्म धारण करो। न-जाने इस उद्धव को क्या पागलपन हो गया है, भला जब हमारे हृदय में मनमोहन कृष्ण बसा हुआ है तो मुख से 'गोरख जगाने' से क्या होगा ?

अंजन मंजन त्यागौ अली अंग धूरि भभूत करो अनुरागैं।
जो मनमोहन ऐसी बसी तो सबै री कहौ मुख गोरख जागैं।।

रसखान का संक्षिप्त वियोग भी संयोग की भूमिका अदा करता प्रतीत होता है। आगतपतिका का दुःख-संताप दूर हो गया। कान्ह के आने की खबर पाते ही उल्लास से उसकी अंगिया तरक उठी, अंग-अंग जगमगा गया जैसे दिया की बाती उकसा दी गई हो—

नाह-वियोग बढ़्यौ रसखानि मलीन महा दुति देह तिया की।
पंकज सो मुख गौ मुरझाई लगीं लपटें बरि स्यांस हिया की।
ऐसे मैं आनत कान्ह सुने हुलसें तरकी जु तनी अंगिया की।
यौं जग जोति उठी अंग की उकसाइ दई मानौ बाती दिया की।

रसखान के शृंगार-वर्णन में प्रोषितपतिका, आगतपतिका, मानिनी, क्रिया-विदग्धा आदि नायिकाओं के दो-चार रूप ही मिलते हैं। उन्होंने विविध नायिका-रूपों की ओर प्रवृत्ति नहीं दिखाई। इस प्रकार रसखान का शृंगार-वर्णन कृष्ण-काव्य-परम्परा में होता हुआ भी सूरादि की अपेक्षा सीमित है। पर सरसता और स्वाभाविकता उसमें खूब पाई जाती है।

भाषा-शैली : कला-पक्ष

भाषा : रसखान ब्रजभाषा के अमर कवि हैं। उन जैसी सरस और सरल ब्रजभाषा का प्रयोग बहुत कम कवियों में दिखाई देता है। सरलता और स्पष्टता का जो गुण रसखान की भाषा में पाया जाता है, वह अन्यत्र नहीं मिलता। रसखान की भाषा इस तथ्य को प्रमाणित करती है कि सरल से सरल शब्दावली भी गूढ़ भावों की व्यंजना में पूर्ण सहायक सिद्ध होती है। रसखान की ब्रजभाषा सरल, सहज, सुबोध, स्वच्छ, संगीतमय, सुकोमल और मधुर है। उनकी शब्दावली बड़े ढब से पद में सजी रहती है।

रसखान की भाषा देशज शब्दों से निर्मित है। उन्होंने बोलचाल की भाषा का सामान्य रूप अपनाया। यही कारण है कि उनकी भाषा में ठेठ अवधी या पूरबी

प्रयोग, तत्सम अरबी-फारसी या संस्कृत शब्द या ब्रज के भी ठेठ अप्रचलित सीमित शब्दों का प्राय: अभाव है। अस, केरी, आहि, अबार आदि अवधी के कुछ प्रचलित शब्द ही रसखान की भाषा में मिलते हैं। ये ऐसे शब्द हैं जो ब्रजमण्डल में भी प्रचलित हो गए थे और ब्रजभाषा के सामान्य सर्वमान्य रूप का अंग बन चुके थे। रसखान ने महबूब, जाँबाजी, नेजा आदि फारसी के शब्दों का तत्सम रूप भी बहुत कम अपनाया है। फारसी-अरबी आदि विदेशी शब्दों का जो थोड़ा-बहुत प्रयोग रसखान ने किया है, वह उन्हें तद्‌भव रूप में अपनाकर ही किया है, जैसे 'शुमार' को 'सुमार', 'ताक' को 'ताख' आदि। संस्कृत शब्दों का भी तद्‌भव रूप रसखान को अधिक प्रिय रहा है : 'छार', 'संपति', मानुष, हिय, सोहत आदि ऐसे ही सरल तद्‌भव रूप हैं। इस प्रकार रसखान की भाषा सामान्य सुबोध साहित्यिक ब्रजभाषा का उत्तम उदाहरण है। उनकी भाषा में प्रसाद गुण ब्रजभाषा के सब कवियों से अधिक है।

रसखान की भाषा सर्वत्र भावाभिव्यंजक और भावानुरूपिणी है। उन्होंने भक्ति, प्रेम और शृंगार के कोमल भावों की ही व्यंजना की है, इसी से इनकी भाषा माधुर्य-गुण से ओत-प्रोत है। परुष भावों की व्यंजना के अभाव से उसमें ओज गुण का भी अभाव है। रसखान की कोमल भाव-व्यंजना में कोमल शब्दों के बीच टवर्ग के मूर्द्धन्य वर्ण भी अपनी कठोरता त्यागकर किस प्रकार माधुर्यपूर्ण बन जाते हैं, यह निम्न पंक्तियों में देखिए :

सोहत कैसे हरो दुपटो सिर, तैसे किरीट लसे लटक्यो री।
को रसखान रहैं अटक्यो, हटक्यो ब्रजलोग फिरैं भटक्यौ री।

ब्रजभाषा का स्वाभाविक माधुर्य रसखान की भाषा की प्रमुख विशेषता है। उन्होंने मूर्द्धन्य और मीलित वर्णों तथा लम्बी-लम्बी सामासिक पदावली का बहिष्कार किया है। शब्दाडम्बर से रसखान सर्वत्र दूर रहे हैं।

कृष्णभक्त कवियों ने ब्रजभाषा को अत्यन्त लोकप्रिय व्यापक भाषा बना दिया था। सूरदास ने ब्रजभाषा की समस्त साहित्यिक शक्तियों का उद्‌घाटन कर दिया था, नंददास ने उसे और भी शब्द-मणियों से जड़ दिया था। यदि बिहारी ने ब्रजभाषा को समास गुण से विशेष अलंकृत और समर्थ बनाया तो रसखान, घनानन्द और मतिराम ने उसे परिष्कार, सहज सरलता और अकृत्रिमता प्रदान की।

रसखान की शब्द-योजना अत्यन्त अनूठी है। बहुधा उनके शब्द बिम्बों का निर्माण करते हैं जिससे भाषा में **चित्रोपम शक्ति** खूब आ गई है। यद्यपि रसखान के रूप-चित्रण में वैसी चित्रात्मकता नहीं है जैसी सूरदास और नन्ददास के काव्य में है, तथापि कहीं-कहीं भाषा की चित्रात्मकता बहुत प्रभावी है। बाँसुरी के प्रभाव का यह वर्णन बिम्बात्मक ही है। कृष्ण की बाँसुरी सुनकर गोपियों की क्या दशा होती है, इन पंक्तियों में देखिए :

जल की न घट भरें, पग की न पग धरें,
घर की न कछु करें बैठी भरै सांसु री।
एकै सुनि लोट गई, एकै लोट-पोट भई,
एकनि के दृगनि निकसि आए आँसु री।

सूरदास की "घुटरनु चलत रेनु तनु मण्डित मुख दधि लेप किये" जैसी चित्रात्मकता तो नहीं है, फिर भी इन पंक्तियों में बालकृष्ण का अच्छा चित्रण हुआ है :

धूरि भरे अति सोभित स्यामजू, तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत खात फिरें अंगना पग पेजनियाँ कटि पीरी कछौटी।
वा छवि को रसखान विलोकत वारत काम कलानिधि कोटी।
काग के भाग कहा कहिये हरि हाथ सौं लै गयौ माखन रोटी।

रसखान की सानुप्रासिक ब्रजभाषा संगीतात्मक नाद-सौंदर्य उत्पन्न करती है। छेकानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास, श्रुत्यनुप्रास आदि अनुप्रास के सब रूप रसखान के सवैयों में पाए जाते हैं। इनके उदाहरण हम अलंकार-योजना में आगे देंगे। इस सानुप्रासिक पदावली ने भाषा में माधुर्य भर दिया है। प्रवाह और संगीतात्मकता भी इसी से उत्पन्न हुई है।

रसखान ने मुहावरों और लोकोक्तियों से भी अपनी भाषा में स्वाभाविकता तथा सामर्थ्य लाने का प्रयास किया है। कुछ उदाहरण देखिए—

लोकोक्तियाँ : 'नहिं उपजैगी बांस नाहिं बाजे फेरि बाँसुरी', 'छोरा जायो कि मेव मंगायो,' 'मोल छला के लला न बिकैहों', 'माट फोरि चाटौ दही', 'नेम कहा जब प्रेम कियो' आदि।

मुहावरे : 'करयौ घर मो हिय मैं', 'यह कहा पाटी पढ़ी', 'ढोल बजाइ कै बेच्योहिय', 'डीठि सों डीठि मिली', 'जादिन तै नैननि लग्यो', 'मोहन जोहन में चित्त चोरत है', 'बजी ब्रजमंडल मांह दुहाई', 'लोचन दुरावहीं', 'हास के पानि परे हैं', 'कौन भटू जो लटू नहिं कीनि', 'कोउ नांव धरौ' आदि। रसखान की भाषा में लाक्षणिक प्रयोगों की भी कमी नहीं है : 'मोहन सों अटक्यो मनुरी', 'नागर दौर करी मनमाहिं', 'मन लीनों प्यारे चितै, पै छटांक नहिं देत', 'हिय ब्रजराज कुमार अर्यौ है', 'रंग पर्यौ है', 'मुसकान चुभी चित', 'विष सो बगरायौ', 'लाज की गांठ खोलत हैं' आदि।

मुहावरों और लोकोक्तियों से रसखान की भाषा में ब्रज-भाषा की सहज स्वाभाविकता और प्रभाव-शक्ति आ गई है तथा अन्य लाक्षणिक प्रयोगों से भाषा की साहित्यिकता समृद्ध हुई है। यद्यपि रसखान ने उक्ति-वैचित्र्य या वचन-विदग्धता का विशेष प्रयोग नहीं किया, पर कहीं-कहीं उक्ति-वैचित्र्य पाया जाता है। एक उदाहरण देखिए—

मन लीनो प्यारे चितै, पै छटांक नहीं देत।
ऐसी कहा पाटी पढ़ी, दल को पीछो लेत।

यहाँ 'मन' तथा 'छटांक' शब्दों के श्लेषात्मक प्रयोग से चमत्कार उत्पन्न किया गया है।

अलंकार-योजना—रसखान की भाषा में मैत्रीपूर्ण शब्दों के प्रयोग की बड़ी विशेषता है जो अनुप्रास अलंकार के कारण प्रकट हुई है। अनुप्रास, वीप्सा और यमक अलंकारों के प्रयोग से रसखान ने अपने छन्दों में धारा-प्रवाह गति, कोमलता और संगीतात्मक झंकार उत्पन्न की है। पंक्ति-पंक्ति में अनुप्रास शब्दालंकार दिखाई देता है। अनुप्रास के सभी रूप रसखान के सवैयों में पाये जाते हैं। कुछ पंक्तियाँ देखिए--

छेकानुप्रास—**'संकर से सुर जाहि जपैं चतुरानन ध्यानन धर्म बढ़ावैं।**
जापर देव अदेव भू-अंगना वारत प्रानन प्रानन पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियां छछिया भरी छाछ पर नाच नचावैं'।
'मानुष हौं तो वही रसखानि बसौं ब्रजगोकुल गांव के ग्वारन'।

इन पंक्तियों में 'संकर से सुर' में 'स' की, 'जाहि जपैं' में 'ज' की, 'ध्यानन धर्म' में 'ध' की, 'देव अदेव' में 'द' और 'व' की, 'प्रानन पावैं' में 'प' की, 'ताहि अहीर' में 'ह' की, 'छोहरियाँ छछिया' में 'छ' की, 'नाच नचावैं' में 'न' की और 'च' की प्राय: एक बार आवृत्ति छेकानुप्रास की द्योतक है। 'प्रानन प्रानन' में यमक भी है।

वृत्त्यनुप्रास—**'सेष गनेस महेस दिनेस सुरेस जाहि निरन्तर गावैं।'**
'सेस सुरेस दिनेस गनेस अजेस धनेस महेस मनायौ।'
'साज समाज-सधै सिरताज औ छाज की बात नहीं कहि पावे।'
'गाल गुलाल लगाइ लगाइ कै अंक रिझाई।'
'मो मन मोहन सों मिलि कै मधुरी मुस्कान दिखाइ दई।'

वर्णसमूह की या एक वर्ण की अनेक बार आवृत्ति से यहाँ वृत्त्यनुप्रास है। 'लगाइ लगाइ' में वीप्सा भी है। अन्त्यानुप्रास तो रसखान की हर जोड़ा पंक्ति में है। एक ही स्थान के अनुकूल वर्णों की आवृत्ति से अनेक पंक्तियों में श्रुत्यनुप्रयास भी पाया जाता है।

वीप्सा—वीप्सा में पद-आवृत्ति यहाँ कितनी प्रभावी है—"माई री वा मुख की मुसकानि सम्हारि न जैहै न जैहै।" इसी प्रकार "रूप सबै हरि वा नट को हियरें भटक्यौ अटक्यौ अटक्यौ री" में 'अटक्यौ' शब्द की आवृत्ति प्रेम की प्रगाढ़ता प्रकट कर रही है।

यमक—रसखान के सवैयों में यमक अलंकार भी सभी रूपों में जहाँ-तहाँ प्रयुक्त हुआ है। कुछ पंक्तियां देखिए—

(क) जो रसना रसना बिलसैं तेहि देहु सदा निज नाम उचारन।

(ख) विमल सकल रसखानि मिलि, भई सकल रसखानि।

(ग) राधिका जीहैं तो जीहैं सबै न तौ पीहैं हलाहल नन्द के द्वारे।

(घ) अधरान धरी अधरा न धरौंगी।

रसखान ने श्लेष अलंकार का भी कहीं-कहीं अच्छा प्रयोग किया है—'मन लीनों प्यारे चितै, पै छटांक नहिं देत' में 'मन' और 'छटांक' शब्दों में श्लेष है। वक्रोक्ति के प्रयोग भी पाँच-सात पदों में अच्छे हुए हैं। काकु-वक्रोक्ति तो कई पंक्तियों में दिखाई देती है, जैसे—'या ब्रज मंडल मैं रसखानि सु कौन भटू जू लटू नहीं कीनी।' 'को सजनी निलजी न भई अरु कौन भटू जिहिं मान बच्यो है।' आदि पंक्तियाँ।

ध्वन्यर्थव्यंजना का भी एकाध उदाहरण मिल जाता है। 'चहचही चुहूंकिन की' जैसी पंक्तियों में शब्द-ध्वनियों से ही अर्थ की व्यंजना हो जाती है।

अर्थालंकारों में उपमाओं के सुन्दर विधान में तो रसखान बहुत प्रवीण हैं। उपमा अलंकार के उदाहरण देखिए—

(क) जा रसखानि बिलोकत ही सहसा ढरि रांग सो आँग ढर्यो है।

(ख) सुन्दर हास सुधानिधि सों मुख मूरति रंग सुधारस सानी।

(ग) ऊजरी ज्यों बिजुरी सी जुरी चहुं गुजरी केलि-कला सम बाढ़ि।

(घ) मोर किरीट, नबीन लसैं मकराकृति कुंडल लोल की डोरनि।
ज्यों रसखान घने घन मैं दमकै बिना दामिनि चाप के छोरनि।

दृगों के लिए "ऐंचे आवत धनुष से, छूटे सर से जाहिं' कैसी अनूठी उपमाएँ हैं! सादृश्य के साथ-साथ अनेक प्रयोगों में प्रभाव-साम्य का भी रसखान ने ध्यान रखा है। 'रसखानि' गुबिन्दहिं यौं भजियै, जिमि नागरि को चित्त गागर मैं' में भी प्रभाव-साम्य ही है। रसखान के अधिकांश उपमान परम्परायुक्त होते हुए भी योजना में नवीनता दिखाई देती है। कुछ उपमान-योजनाएँ सर्वथा नवीन और अनूठी हैं। उपर्युक्त (क) पंक्ति में राँग की तरह अंगों के ढरने की कल्पना नई है।

रूपक का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में हुआ है। अनेक छन्दों में रूपक और उपमा का मिश्रित प्रयोग बड़ा भव्य है। गोपियों का मन कृष्ण की ओर ऐसा दौड़ा फिरता है जैसे सागर को मिलने के लिए सलिला दौड़ती है। कुललाज-रूपी पुल टूट गया है—"सागर को सलिला जिमि धावै न रोकी रुकै कुल को पुल टूट्यो।" इस पंक्ति में वाक्यार्थोपमा और व्यस्त रूपक हैं। नन्दकुमार अपनी वक्र दृष्टि को गोपी पर तिरछी बरछी के समान मारता है और नैन-बाणों को भौं-रूपी कमान पर कानों तक खींचकर चलाता है—"तिरछी बरछी सम मारत है दृग-बान कमान

सुकान लग्यौ।" इसमें उपमा, रूपक और भौं उपमेय के लोप से रूपकातिशयोक्ति अलंकार हैं।

निरंग रूपक की सुन्दर योजना इस पंक्ति में अवलोकनीय है—'रसखानि महावत-रूप सलौने को मारग तें मन मोरत है।' यहाँ कृष्ण के सलोने रूप को महावत कहा गया है जो गोपियों के मन-रूपी हाथी को अपने अंकुश से मार्ग से मोड़ देता है।

परम्परित रूपक इस पंक्ति में सुन्दर है : कृष्ण की लहराती लट गोपी की नैन-रूपी मछलियों को पकड़ने के लिए मछलियाँ पकड़ने वाली वंसी (काँटा) बन गई है—"लटकी लट मों दृग-मीननि सों बनसी जियवा नट की अटकी।"

सांगरूपकों का रसखान ने प्रयोग नहीं किया। कहीं-कहीं उपमाओं के मिश्रण से सांग रूपक का आभास-मात्र मिलता है। रसखान ने अनूठी उत्प्रेक्षाओं के द्वारा भी भाव और वस्तु-वर्णन को उत्कर्ष प्रदान किया है। एक-दो उदाहरण देखिए—

(क) **जोबन-जोति सुयौं दमकै उकसाइ दई मानो बाती दिया की।**

(ख) **नील-निचोल लपेटे हुए डरी और कांपती नवोढ़ा ऐसी प्रतीत हो रही है—**

"मनो दामिनी सावन के घन मैं निकसैं नहीं भीतर ही तरपै।"
गोधन धूरि की धूँधरी मैं तिनकी छवि यों रसखानि तकै री॥
पावक के गिरि तें बुधि मानौ चुंवा-लपटी लपटै ललकैरी॥

रसखान ने व्यतिरेक और चतुर्थ प्रतीप अलंकारों का भी सौंदर्य-वर्णन में खूब प्रयोग किया है। कृष्ण के अंग-प्रत्यंग-सौंदर्य की तुलना में उपमान कहां ठहर सकते थे! कृष्ण कामदेव से भी अधिक सुन्दर हैं—"वा छवि को रसखानि बिलोकत वारत कामकला निज कोटी।" (व्यतिरेक)। कृष्ण के पीताम्बर के आगे बिजली की आभा लजाती है।—"रसखानि लखै तन पीत-पटा सत दामिनी को दुति लाजति है।" (प्रतीप)। राधा और कृष्ण की 'मधुरी मुसकानि' पर खिले लाल कमल, रत्नों के भंडार, दाड़िम, बिम्बाफल, अमूल्य लाल न्यौछावर हैं—

कातिक क्वार के प्रात ही प्रात सरोज किते विकसात निहारे।
डीठि परे रतनाकर के दरके बहु दाड़िम बिम्ब बिचारे।
लाल सु जीव जिते रसखानि ते रंगनि तोलनि मोलनि कारे।
राधिका श्री मुरलीधर की मधुरी मुसकानि के ऊपर वारे॥

अपह्नुति का सुन्दर प्रयोग भी दो-तीन छन्दों में हुआ है। नारी के कुच-कंचन और वेणी का निषेध करता हुआ कवि कहता है :

हैं कुच कंचन के कलसा न ये आम की गांठ मढीक की चाम हैं।
बैनी नहीं मृगनैननि की ये नसैनी लगी यमराज के धाम हैं।

कहीं-कहीं अतिशयोक्ति और अत्युक्ति का प्रयोग भी स्वाभाविक रूप में हुआ है। कृष्ण की रूप-माधुरी, बंक-विलोकनी, मधुर मुस्कान, बाँसुरी-ध्वनि आदि के प्रभाव का वर्णन रसखान ने बड़े स्वाभाविक रूप में अतिशयोक्ति और अत्युक्ति-पूर्ण शैली में ही किया है। कृष्ण की 'मुसकानि' से एक गोपी बावरी हो उठी। कोई कहती है कि यह छली गई, कोई कहती कि डर गई, सास उसके स्वास्थ्य की कामना से अनेक व्रतों का संकल्प करती है, ननद दौड़-दौड़कर सयानों को बुलाती है—

कोऊ कहै छरी कोऊ मौन परी डरी कोउ,
कोऊ कहै मरी गति हरी अंखियानि की।
सास व्रत ठाने ननद बोलत सयाने धाइ,
दौरि-दौरि मानै-जानै खोरि देवतानि की॥

विरोधमूलक अलंकारों के भी कुछ प्रयोग रसखान के सवैयों में मिलते हैं। विरोधाभास का प्रयोग इस पंक्ति में देखिए—"जापर देव अदेव भू-अंगना वारत प्रानन प्रानन पावैं।" 'वारत प्रानन प्रानन पावैं' में विरोधाभास और यमक दोनों का चमत्कारी प्रयोग है। विरोधाभास और असंगति का सुन्दर प्रयोग इन पंक्तियों में देखिए—

जीवनमूरि-सी नेज लिये इनहूँ चितयो उनहूँ चितई री।
लाल लली दृग जोरत ही सुरझानि गुड़ी उरझाय दई री॥

जो चितवन जीवनमूरि है उसे ही बरछी कहने में विरोध तथा दूसरी पंक्ति में कार्य-कारण में असंगति है।

छन्द-प्रयोग—जैसाकि कहा जा चुका है, रसखान ने कवित्त, सवैया, दोहा आदि तीन-चार छन्दों का ही प्रयोग किया है। उनका मुख्य छन्द सवैया है। उनके सवैये इतने लोकप्रिय हुए हैं कि उनके सरस सवैये ही रसखान बन गए। सवैया छन्द छन्दों का राजा है। यह दीर्घ छन्द हिन्दी—विशेषत: ब्रजभाषा का लोक-प्रिय छन्द है। इसकी रवानी (प्रवाह), स्वरों का आरोह-अवरोह, सानुप्रासिक कोमलकान्त शब्दावली एक अनूठा संगीत-माधुर्य प्रकट करती है। बीस से अधिक अक्षरों का यह वर्णवृत्त ही हिन्दी की प्रकृति के सर्वाधिक अनुकूल सिद्ध हुआ। इसी से इसका अत्यन्त प्रचुर प्रयोग भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल के ब्रज कवियों ने किया। रसखान को इसके प्रयोग में विशेष सफलता इसीलिए प्राप्त हुई है कि 1. रसखान के सवैयों की पदावली अत्यन्त कोमल, अत्यधिक सानु-प्रासिक प्रवाहमयी है। ब्रज-भाषा का इतना साफ, सरल-सरस प्रयोग बहुत कम कवियों ने किया है। उनके सवैयों में संगीत की मधुर झंकार है। 2. भाषा-शैली की इस विशिष्टता के साथ ही उनमें भावों की अद्‌भुत सरसता है। सभी सवैये रस-भरे हैं, उनमें शृंगार और भक्ति की रस-लहरी प्रवाहित हुई है। 3. रसखान ने

सभी प्रकार के भगणाश्रित, सगणाश्रित मत्तगयंद, मदिरा, किरीट, दुर्मिल, सुमुखी आदि लोकप्रिय सवैयों का सफल प्रयोग किया है। इस छन्द को उन्होंने इतना सिद्ध कर लिया था कि सभी प्रकार के स्वर-आरोह-अवरोह की क्षमता उनके सवैयों में पाई जाती है। अक्षर-मैत्री, सस्वरता, प्रवाह, सानुप्रासिक पद-बंधों की कसावट, अनुप्रास, वीप्सा, यमक आदि आवृत्तिपरक शब्दालंकारों की प्रचुरता आदि गुणों से उनके सवैये अत्यन्त सरस बन गए हैं। 4. रसखान के छन्दों की लोकप्रियता का एक बड़ा कारण उनकी सरलता और सहजता है। न-केवल रसखान ने ब्रज-भाषा के प्रचलित सरलरूप का प्रयोग करके अपने सवैयों को सुबोध बनाया है, अपितु उनमें शृंगार और भक्ति के ऐसे भाव भरे हैं जो सहज ही हृदयग्राह्य हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में "रसखान के सवैयों में मृदुता है, लोच है, झंकृति है और है हृदय को छूने की अद्‌भुत शक्ति! तभी तो रसखान और सवैया एक-दूसरे के 'पर्याय' बन गये थे। तत्कालीन सहृदयजन किसी से 'सवैया' सुनने के लिए कहा करते थे "कोई रसखान सुनाओ।"

अन्त में कहा जा सकता है कि यद्यपि रसखान ने दोहे ('प्रेमवाटिका' में) और कवित्त छन्द का भी सफल प्रयोग किया है, पर उनकी अक्षय कीर्ति का स्तम्भ सवैया ही है। जो सफलता और विशिष्टता तुलसी-जायसी को दोहा-चौपाई शैली के प्रयोग में प्राप्त हुई है, जो निपुणता दोहे के प्रयोग में बिहारी ने दिखाई, गीत-शैली में जो महारत विद्यापति, सूरदास और मीरां को प्राप्त हुई, वही सवैया छन्द के प्रयोग में रसखान को हुई। उनके सवैयों में कलापक्ष और भावपक्ष का भव्य सामंजस्य है।

●●

5

कृष्णभक्त कवि

श्री हितहरिवंश गोस्वामी

1. जीवन-वृत्त
2. रचनाएँ
3. शृंगार-वर्णन, सौन्दर्य-वर्णन
4. भक्ति-भावना
5. भक्तिरस या भाषा-शैली : कला-पक्ष
   अलंकार-योजना, छन्द-प्रयोग, गीति-तत्त्व

जीवनवृत्त

राधाबल्लभीय सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक श्री हितहरिवश के पिता श्री व्यास मिश्र सहारनपुर जिले के देवबन्द स्थान-निवासी थे। वे सम्भ्रान्त कुल के गौड़ ब्राह्मण थे। श्री व्यास मिश्र अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान थे। कहा जाता है कि उनका सम्बन्ध किसी राज-दरबार से था जहाँ उन्हें 'चार हजारी' का मनसब प्राप्त हुआ था। इसी सम्प्रदाय के प्रसिद्ध भक्त चाचा वृन्दावन ने दास भी अपनी एक बधाई में हित जी के पिता को धर्मशील, ऋषिराज, ज्योतिषाचार्य, वेदज्ञ आदि गुणों से सम्पन्न कहा है।

कहा जाता है कि धन-वैभव होते हुए भी हित जी के माता-पिता पुत्र-अभाव से खिन्न थे। आखिर भगवान की कृपा से उन्हें पुत्र-प्राप्ति हो गई। अपनी ब्रज-यात्रा के समय हित जी की माता तारा रानी ने मथुरा के निकटवर्ती ग्राम बाद में बालक हरिवंश को जन्म दिया। मिश्रबंधु आदि कुछ विद्वानों ने देवबन्द को ही संभवत: इस कारण हित जी का जन्मस्थान मान लिया क्योंकि उनके पिता देवबन्द निवासी थे। पर उनकी ब्रज-यात्रा और बाद ग्राम में पुत्रोत्पत्ति का उल्लेख कई प्राचीन रचनाओं में मिलता है। इस बाद ग्राम में सं० 1559 वि० की वैशाख शुक्ला एकादशी दिन सोमवार को हित हरिवंश का जन्म हुआ।

राधाबल्लभीय श्री गोपाल प्रसाद शर्मा-रचित 'हित-चरित्र' आदि एक-दो

रचनाओं में इनका जन्म संवत् 1530 वि० दिया हुआ है, जो आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार "सब घटनाओं पर विचार करने से ठीक नहीं जान पड़ता।" कई प्राचीन वाणियों में संवत् 1559 विक्रमी का ही उल्लेख मिलता है।

भगवत मुदित-विरचित 'रसिकमाल' की एक प्रति में श्री हितहरिवंश के जन्म संवत् 1559 वि० का दो जगह उल्लेख हुआ है। पर आरम्भ के उल्लेख को मिटाकर उसकी जगह संवत् 1530 वि०लिखने का असफल प्रयास किया गया है। साम्प्रदायिक भावना के कारण, श्री हितहरिवंश को सूरदास, बल्लभाचार्य और स्वामी हरिदास से पूर्ववर्ती बताने की भावना ने ही संवत् 1559 वि० के स्थान पर सं० 1530 वि० रखने की प्रवृत्ति को जन्म दिया। कृष्णभक्ति के इन चारों सम्प्रदायों—बल्लभ सम्प्रदाय, चैतन्य सम्प्रदाय, हरिदासी और राधाबल्लभ-सम्प्रदाय—का केन्द्र-स्थान वृन्दावन बना हुआ था। इनके अनुयायी भक्तों में पारस्परिक मुठभेड़ होती रहती थी। अपने सम्प्रदाय और प्रवर्त्तक गुरु को श्रेष्ठ सिद्ध करने की होड़ ने बहुत-सी प्रामाणिक बातों को विकृत कर दिया। साम्प्रदायिक भावना ने ही हितहरिवंश जी के शैशव के साथ अलौकिक चामत्कारिक घटनाएँ जोड़ दीं। बाल्यकाल में स्वप्न में ही श्री प्रियाजी से प्रेरणा और गुरु-मंत्र प्राप्त करने की बातें ऐसी ही कपोल-कल्पित हैं।

किंवदन्तियों की यह बात सत्य हो सकती है कि छोटी अवस्था में ही हरिवंश जी की प्रवृत्ति राधा-कृष्ण-प्रेम पर रीझने की हो गई और उन्होंने श्री राधा को सपने में देखा तथा अपना गुरु बना लिया। अन्त:साक्ष्य तथा बाह्य साक्ष्य दोनों से श्री राधा जी के ही इनके गुरुहोने का उल्लेख मिलता है, कुछ विचारकों ने गौड़ीय सम्प्रदाय के श्री गोपाल भट्ट को हित जी का दीक्षा-गुरु मान लिया था पर अब यह भ्रांति दूर हो गई है। साम्प्रदायिक भावना के कारण ही यह प्रचारित किया गया कि अपना स्वतन्त्र सम्प्रदाय स्थापित करने से पूर्व श्री हरिवंश गौड़ीय सम्प्रदाय में दीक्षित थे।

चाचा वृन्दावनदास आदि सम्प्रदायी भक्तों ने हित जी के शैशव काल की जो चमत्कारी घटनाएँ लिखी हैं उन पर विश्वास करना कठिन है। हाँ, इतना अवश्य माना जा सकता है कि बाल्यकाल से हरिवंश जी की प्रवृत्ति धर्म और भक्ति में हो गई थी। 16 वर्ष की आयु में हित जी का विवाह रुक्मिणी देवी के साथ हुआ जिनसे इनके तीन पुत्र और एक पुत्री उत्पन्न हुई। संवत् 1585 वि० में ज्येष्ठ पुत्र वनचंद्र उत्पन्न हुआ, सं० 1587 वि० में कृष्णचन्द्र और सं० 1588 में तृतीय पुत्र गोपीनाथ का जन्म हुआ। पुत्री साहिबदे सं० 1589 वि० में जन्मी।

सं० 1585 वि० में हितहरिवंश की माता तारावती का तथा सं० 1590 वि० में पिता व्यास मिश्र का देहांत हो गया। माता-पिता की मृत्यु के पश्चात् हरिवंश जी वृन्दावन आ गए। उत्तमदास-कृत 'रसिकमाल' आदि एक-दो रचनाओं में

साम्प्रदायिक भावना के कारण वृन्दावन-आगमन का यह प्रसंग कल्पित किया हुआ है कि जब हरिवंश जी ने अपनी ब्रज-यात्रा आरम्भ की तो उन्हें एक रात सपने में श्यामा जी ने कहा कि रास्ते में एक चिरथावल गाँव में एक ब्राह्मण रहता है; वह अपनी दो कन्याओं का तुम्हारे साथ विवाह करेगा, तुम उन्हें स्वीकार कर लेना, वे तुम्हारी भक्ति में बाधक न होंगी। श्री श्यामा ने यह भी कहा कि वहाँ मेरा एक मूर्ति-रूप मिलेगा, उसे वृन्दावन ले जाकर मन्दिर में स्थापित करना। हरिवंश जी ने इसी तरह सब किया। इस प्रसंग और घटना पर विश्वास नहीं किया जा सकता।

वृन्दावन उस समय कृष्ण-भक्ति का केन्द्र बना हुआ था। स्वामी हरिदास और उनके हरिदासी सम्प्रदाय के भक्त-कवि, वल्लभ सम्प्रदाय के आचार्य और सूर आदि अष्ट-कवि, गौड़ीय सम्प्रदाय के श्री रूप गोस्वामी आदि भक्त आचार्य सब वृन्दावन में जमा थे। स्पष्ट है कि हित जी ने इन सम्प्रदायों और उनकी साधना-पद्धतियों का परिचय प्राप्त किया होगा। हरिवंश जी ने वृन्दावन का महत्त्व समझकर वहाँ अपना स्थायी वास बना लिया। इस आरम्भिक स्थापना-कार्य में नरवाहन नामक एक प्रभावशाली जमींदार ने हरिवंश जी की बड़ी सहायता की। नरवाहन हितहरिवंश जी की धर्म-प्रवृत्ति और भक्ति-भावना से बहुत प्रभावित हुआ था और उनका शिष्य बन गया था। हरिवंश जी ने वृन्दावन में कई मन्दिर बनवाये और उनमें श्री जी की प्रतिमाएँ स्थापित कीं। नरवाहन ने भी अपनी समस्त धन-दौलत श्री जी के चरणों में समर्पित कर दी।

वृन्दावन में श्री हितहरिवंश ने साधना के लिए चार 'सिद्ध केलिस्थल' स्थापित किए। इनमें से एक सेवाकुंज नामक केलि-स्थान पर हरिवंश जी ने श्री राधाबल्लभ की मूर्ति सर्वप्रथम स्थापित की। इस मूर्ति-स्थापना के साथ ही हरिवंश जी ने अपनी विशिष्ट साधना-पद्धति और अष्टयाम सेवा विधिवत् आरम्भ की। सेवाकुँज की यह स्थापना सं० 1591 वि० में हुई थी। इसके बाद दूसरा केलि-स्थान मानसरोवर नाम से स्थापित किया गया और फिर रासमंडल और वंशीवट की स्थापना हुई। हितहरिवंश द्वारा स्थापित ये चारों स्थल आज भी वृन्दावन में वर्तमान हैं। इनका महात्म्य आज तक अक्षुण्ण है।

भक्ति-दर्शन-सम्बन्धी हरिवंश जी के विचारों और साधना की नई पद्धति से इनकी ख्याति बढ़ने लगी। केलि-स्थलों की स्थापना से भी इनका प्रभाव पड़ा। दूर-दूर से भक्तजन इनके दर्शनार्थ आने लगे। चतुः सिद्धकेलि-स्थलों की स्थापना ही राधाबल्लभ सम्प्रदाय की स्थापना समझनी चाहिए। यह लगभग सं० 1591-1592 वि० का समय रहा होगा। बल्लभ सम्प्रदाय आदि अन्य वैष्णव सम्प्रदायों में राधा की महत्ता और युगलोपासना अपनाई जाने लगी। हितहरिवंश का प्रभाव दूर-दूर तक फैलने लगा। हरिराम व्यास-जैसे प्रकाण्ड विद्वान इनके शिष्य बने।

केवल 50 वर्ष की अल्पायु में ही हित जी निकुँज सिधार गए। सभी साम्प्रदायिक वाणियों में उनका निकुंजगमन काल सं० 1609 वि० के आश्विन मास की शरद् पूर्णिमा लिखा मिलता है। केवल 32 वर्ष की अल्पायु में सम्प्रदाय की स्थापना और शिष्यों की एक परम्परा खड़ी कर देना जितना आश्चर्यजनक है, उतना ही आश्चर्य इस बात से होता है कि हित जी केवल 50 वर्ष की आयु में दिवंगत हुए। संभवतः इस बात पर सहसा विश्वास न हो पाने के कारण ही आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आदि दो-तीन विद्वानों ने हित जी का वर्तमानकाल सं० 1640 वि० तक अनुमानित किया है। आचार्य शुक्ल जी ने अपने इतिहास में माना है कि हरिराम व्यास सं० 1622 वि० के लगभग हितहरिवंश के शिष्य हुए थे। इसी आधार पर शुक्ल जी ने हित जी का वर्तमान होना सं० 1622 वि० के पश्चात् लगभग सं० 1640 वि० तक मान लिया। परन्तु भगवत मुदित और उत्तमदास जी की रचनाओं में व्यास जी का वृन्दावन-आगमन सं०1591 वि० में कहा गया है। तभी वे हितहरिवंश जी के शिष्य हो गए थे। इसके अतिरिक्त हित जी के निधनोपरांत उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री वनचन्द्र जी सम्प्रदाय की गद्दी पर सं० 1609 वि० में ही बैठे थे—यह तथ्य न-केवल सम्प्रदायों की वाणी-रचनाओं से पुष्ट होता है अपितु मन्दिर की गद्दी-परम्पराओं के उल्लेख से भी सिद्ध होता है। अतः सं० 1609 वि० में ही हरिवंश जी का निकुंज-प्रवेश मानना उचित है।

हित जी का व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली था। उनकी निर्लोभता, उदारता, सहिष्णुता आदि सद् प्रवृत्तियों का उल्लेख भगवत् मुदित जी की 'रसिक अनन्य-माला' तथा सेवक जी की वाणी आदि कई रचनाओं में मिलता है। सम्प्रदाय में हितहरिवंश को वंशी का अवतार माना जाता है। उनकी वाणी वेणुनाद के समान मानी जाती है। उन्हें राधाबल्लभ सम्प्रदाय का आचार्य और परात्पर तत्त्व माना जाता है। उनकी जन्मबधाइयों तथा 'मंगलों' का गान सेवक जी, चाचा वृन्दावन आदि सभी सम्प्रदायी भक्तों ने किया है। जिस प्रकार हरिदासी सम्प्रदाय में हरिदास जी को अवतार माना जाता है, उसी प्रकार राधाबल्लभ सम्प्रदाय में श्री हितहरिवंश को सखी-रूप में ललिता आदि आठ प्रधान सखियों में भी सबसे अधिक अन्तरंग माना जाता है।

रचनाएँ

हित जी ने ब्रजभाषा में केवल 108 पद रचे जिनमें इन्होंने अपनी रस-पद्धति के अनुसार प्रेमभक्ति का सुन्दर गान प्रस्तुत किया है। 'राधासुधानिधि' नामक इन्होंने एक संस्कृत रचना भी की, जो श्री राधा जी की स्तुति का स्तोत्र-ग्रंथ है। ब्रजभाषा के 84 पद 'हित चौरासी' या 'हितचतुरासी' नाम से संग्रहीत हैं। ये पद माधुर्यभक्ति के प्रेरक और रस-सेवा के आधार बन गए। 'हितचौरासी' राधा-

बल्लभ सम्प्रदाय का आधार-ग्रंथ बन गया और अनेक भक्त और वैष्णव इन पदों को गाकर झूम उठे। हित जी के कुछ स्फुट पद और मिलते है जिनमें से लगभग आधे अर्थात् दस-बारह पदों और दोहों में गूढ़ सिद्धांत-निरूपण हुआ हैं। हित की आठ श्लोकों की एक छोटी 'यमुनाष्टक' रचना भी मानी जाती है, जिसकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। इसमें यमुना की स्तुति में आठ श्लोक हैं।

शृंगार-वर्णन, सौन्दर्य वर्णन

श्री हितहरिवंश के पदों में राधा-कृष्ण के प्रेम का जो स्वरूप वर्णित हुआ है, वह रसानुभूति की दृष्टि से पाठक को शृंगार रस की ही अनुभूति कराता है। चाहे स्वयं कवि ने सखी-भाव से राधाकृष्ण की प्रेम-केलि का गान और अन्त: दर्शन करके अपने आराध्य-युग्म के प्रति अपनी भक्ति-भावना ही प्रकट की हो, पर काम-क्रीड़ाओं की स्थूलता पाठक के मन में किसी प्रकार के भक्ति-भाव को नहीं जागने देती। निश्चय ही यह स्थूल ऐकान्तिक शृंगार है।

सौन्दर्य-वर्णन—कृष्ण-काव्य नर-नारी-सौन्दर्य-वर्णन में अद्वितीय है। नर (कृष्ण) के सौन्दर्य का चित्रण कृष्ण-काव्य की ही विशेषता है। सूरदास व नन्ददास आदि अष्टछापी कवियों ने कृष्ण की सौन्दर्य-श्री के जो विविध चित्र प्रस्तुत किए हैं, वे राधाबल्लभ सम्प्रदायी कवियों में नहीं मिलते। श्री हितहरिवंश की रस-रीति में राधा की प्रधानता है : यहाँ श्री राधा भोग्या हैं और कृष्ण भोक्ता या आश्रय है, अत: यहाँ नारी-सौंदर्य की प्रधानता है, कृष्ण का सौंदर्य बहुत कम चित्रित हुआ है। यद्यपि श्री राधा के अद्भुत रूप का वर्णन श्री हितहरिवंश और उनके अनुयायियों ने अनेक पदों में किया है, पर सूरदास के रूप-सौंदर्य-वर्णन की ऊँचाई तक वे नहीं पहुँच सके। हित जी के कई पदों में राधा की शोभा और सौंदर्य-श्री का वर्णन हुआ है। कुछ विचारकों ने हितहरिवंश और उनके सम्प्रदाय के प्रति पक्षपात प्रकट करते हुए यहाँ तक कह दिया है कि "रूप-सौंदर्य-चित्रण की दृष्टि से हित-चौरासी के पद भक्तिकालीन कवियों में श्रेष्ठतम कहे जा सकते हैं।"[1] परन्तु हमारा निवेवन है कि हितहरिवंश का रूप-सौन्दर्य-वर्णन सूरदास, नन्ददास आदि अष्टछापी कवियों की तुलना में बहुत फीका है। हित जी ने विशुद्ध सौन्दर्य-वर्णन के बहुत ही कम पद रचे हैं, अधिकतर पदों में सौन्दर्य के प्रभाव का ही वर्णन हुआ है। जिन दो-चार पदों में राधा का रूप-चित्रण हुआ है, उनमें भी संश्लिष्ट रूप-चित्रों का वह आकर्षण नहीं जो सूर, नन्ददास के पदों में मिलता है फिर भी एक-दो पदों में शिख-नख रूप में राधा का रूप-चित्रण 'हित चौरासी' में अच्छा हुआ है। एक दो उदाहरण देखिए : राधा के अंग-अंग सहज

1. डा० विजयेन्द्र स्नातक : राधाबल्लभ संप्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य, पृ० 313

माधुरी (माधुर्य) छाई हुई है जिसने श्याम को मुग्ध कर रखा है। उसके गूंथे बालों की कवरी और लटों के बीच सुनहरी कमल-सा मुख ऐसा प्रतीत होता है मानो अर्द्धचन्द्र को फनी ने ग्रस लिया हो। उसकी भँवें कामदेव के धनुष-सी सुन्दर हैं। नैनों में काजल की नोकीली रेखा तीर की नोक है, भाल पर स्निग्ध-तरल तिलक, गण्डस्थल पर झलकते ताटंक और नाक में चमकती मणि, कुन्दकली-से सफेद दाँत, कोमल किसलय-से सरस अधर हैं जो प्रियतम के मन को सुख देते हैं। चिबुक के मध्य तिल का काला बिन्दु शोभा बढ़ा रहा है, कसी हुई कंचुकि में उभरे हुए कुच, मोहन के मीन-रूपी मन के खेलने-हेतु गंभीर नाभिकुण्ड, कृश कटि, पृथु नितम्ब, कदली-तने-जैसी जंघाएँ, जावक-युक्त रक्त चरण-कमल! ऐसी सौन्दर्य की राशि ललना अपने प्रियतम के हृदय का आभूषण क्यों न बनेगी:

> ब्रज नव तरुणि कदम्ब मुकुटमणि श्यामा आजु बनी।
> नखशिख लौं अंग-अंग माधुरी मोहे श्याम धनी।
> यों राजत कवरी गूंथित कच, कनक कंज वदनी।
> चिकुर चंद्रकनि बीच अर्ध विधु मानो ग्रसित फनी।
> भृकुटि काम कोदंड, नैन सर कज्जल-रेख अनी।
> तरल तिलक, तांटंक गंड पर नासा जलज मनी।

—हित चौरासी पद 29

इस शिख-नख रूप-चित्रण में उपमान-योजना परम्परायुक्त ही है, पर राधा की रूप-छवि का पर्याप्त संश्लिष्ट चित्र यहाँ अंकित हो गया है। पूरे नख-शिख-वर्णन के पद 'हितचौरासी' में दो-चार ही हैं। रूप-चित्रण में नैनों की छवि का विशेष चित्रण कवियों का प्रिय विषय होता है। सूरदास ने राधा और कृष्ण के अनियारे, चंचल और बंक नेत्रों का अनेक पदों में भव्य चित्रण किया है। हित जी ने राधा के अनियारे, चपल-चंचल नयनों का विशेष चित्रण दो-तीन पदों में किया है। एक उदाहरण देखिए। इन नैनों की बात कहाँ तक कही जाय, इन्होंने खंजन, मीन, मृग-छौना—सबका मद चूर कर डाला, कोई उपमान इनकी तुलना में ठहरता ही नहीं। हे सुन्दरी राधे! सच बताना, तुमने इन्हें मोहन के वश में करने की ऐसी कितनी घातें सिखा रखी हैं? इन बंक, निडर, चपल-चंचल, तीखे और वर्णों (अरुण, श्याम और सित) वाले नेत्रों की रचना कैसे हो गई? अपने मृदुल-मादक और मधुर कटाक्षों से ये सबका सर्वस्व हरण कर लेते हैं—जरा भय नहीं मानते—

> खंजन मीन, मृगज मद मेटत कहा कहौं नैनन की बातें।
> सुनि सुन्दरी कहा धौं सिखाई मोहन वसीकरन की घातें।।

बंक, निशंक, चपल, अनियारे, अरुण श्याम सित रचे कहां तें।
डरत न हरत परायौ सर्वसु मृदु मधुमिव मादक दृग पातें ।।

(पद 73)

यह रूप-चित्रण अत्यन्त मादक एवं इन्द्रियोत्तेजक है। हितहरिवंश जी ने युगल की काम-केलि का खुला चित्रण किया है। राधा के चंचल मदमाते नेत्रों की 'वक्र-बिलोकनि' सुरत समय कितनी उत्तेजक होती है, इन पंक्तियों में देखिए : कृष्ण राधा के इन चंचल-चपल अरुण अनियारे नेत्रों पर करोड़ों खंजन पक्षियों को न्योछावर करने के लिए तैयार हैं। उसकी मनोहर वक्र विलोकनि सुरत-समर को उत्तेजित करने वाली है :

नैनन पर वारौं कोटिक खंजन ।
चंचल चपल अरुण अनियारे अग्रभाग बन्यौ अंजन ।।
रुचिर मनोहर वक्र विलोकनि सुरत समर दल गंजन ।

(पद 22)

सूरदास आदि अष्टछापी कवियों ने कृष्ण-दरस के प्यासे राधा व गोपियों के नेत्रों का वर्णन किया है। हित जी की रस-रीति में, इसके विपरीत, कृष्ण प्यासे हैं। राधा की रूप-छवि की एक झलक पाने के लिए कृष्ण के नेत्र लालायित रहते हैं। ये नयन-भ्रमर प्रिया राधा के मुख-कमल का ही रसगान करते हैं, पल-भर को इधर-उधर नहीं जाते। निमेष-मात्र अर्थात् पलक झपकने-भर का अन्तराल इन्हें व्याकुल कर देता है। ये रस-लोभी नेत्र राधा की आँखों में अंजन, कुचों में मृग-मद और नाभिकुण्ड में मीन की तरह समा जाना चाहते हैं :

कहा कहौं इन नैननि की बात ।
ये अलि प्रिया बदन अम्बुज रस अटके अनत न जात ।।
जब-जब रुकत पलक सम्पुट लट अति आतुर अकुलात ।
लम्पट लव निमेष अन्तरते अलप कलप सत जात ।।
श्रुति पर कंज, दृगंजन कुच बिच मृगमद ह्वै न समात ।
हित हरिवंश नाभि-सर जलचर जाँजत साँवल गात ।।

(पद 60)

हितहरिवंश की 'स्फुटवाणी' एवं 'हित चौरासी' में एक-एक पद कृष्ण के रूप-सौन्दर्य-वर्णन का भी मिलता है। इस रूप-वर्णन में वैसी सजीवता और चित्रात्मकता नहीं जो राधा-रूप-वर्णन में है। कृष्ण के श्यामशरीर, मनहरन मुस्कान आदि की रूप-माधुरी का निम्न पद में वर्णन देखिए :

लाल की रूप माधुरी नैननि निरखि नैकु सखी ।
मनसिज-मनहरन हास, साँमरी-सुकुमारि-राशि,
नखसिख अंग अंगनि उमगि सौभग सींव नखी ।। —स्फुटवाणी

विभाव के अन्तर्गत नारी-सौंदर्य का एक और अंग है—नायिका के अंगज और अयत्नज अलंकार। वेश-भूषा तथा शारीरिक सौंदर्य के अतिरिक्त यौवनागम के साथ नारी में जो अयत्नज हाव-भाव, चेष्टाएँ आदि प्रकट होती हैं, जो प्रेम-भाव-प्रेरित नहीं होतीं—वे सब विभाव-पक्ष के अन्तर्गत ही आती हैं। इस प्रकार बाह्य रूप-सौंदर्य के साथ-साथ नायिका के आंतरिक गुण—धैर्य, औदार्य, चातुर्य, माधुर्य आदि भी उसके विभावत्व को उत्कर्ष प्रदान करते हैं। राधा न-केवल रूप की आकरी है, अपितु वह चतुर नागरी, सुशीला, मधुबैनी, कोक-कला-कुशल तथा उदार सुकुमारी है और गुण आगरी भी है :

> **"आजु नीकी बनी राधा नागरी।**
> **ब्रज जुवति जूथ में, रूप अरु चतुरई शील सिंगार गुण सबन तें आगरी।"**
> **"नागरी निकुंज ऐन, किसलय दल रचि शैन,**
> **कोक कला-कुशल कुंवरि उदार री।"**

इस प्रकार अनिंद्य सुन्दरी राधा अपने रूप, गुण, शील से सबको मोहित करने वाली भव्य आलम्बन बनी हुई है। वह मधु-बोलनि और मृदु-सरस हासिनी भी है। नृत्यरत राधा का भव्य रूप देखिए—**निर्तनि भृकुटि बदन अम्बुज मृदु सरल हास मधु बोलनि।**" बृषभानु-नन्दिनी न-केवल सुन्दर वस्त्र-भूषण धारण कर साज-शृंगार करती हैं अपितु वह हाव, भाव, कटाक्ष आदि से भी नन्दनन्दन को रिझाती और सखियों को आनन्दित करती हैं।

रूपासक्ति—इस रूप-गुण-चित्रण के साथ ही **रूपासक्ति** का भव्य वर्णन कृष्ण-काव्य में पाया जाता है। हितहरिवंश जी के पदों में अधिकतर राधा के प्रति कृष्ण की रूपासक्ति का वर्णन हुआ है। एक-दो पदों में राधा या गोपी सखी की कृष्ण के प्रति रूपासक्ति का वर्णन मिलता है। एक पद देखिए : कृष्ण की छेड़छाड़, बाँकपन, मुरली की सरल तान तथा रूपमाधुरी ने कैसी नैन-ठगौरी लगा दी !

> **नन्द कै लाल हर्‌यौ मन मोर।**
> **हौं अपने मोतिन लर पोवति कांकरि डारि गयौ सखि भोर।**
> **बंक बिलोकनि चाल छबीली नरसिक शिरोमणि नंदकिशोर।।**
> **कहि कैसे मग रहत श्रवण सुनि सरस मुरली की घोर।।**
> **इन्दु गोविन्द बदन कैं कारण चितवन कैं भए नैन चकोर।।**

कृष्ण की मधुर मुरली-ध्वनि, कुंजों-निकुंजों का निभृत मनोहर वातावरण, वर्षा-वसंत आदि सुन्दर ऋतुएँ सब मिलकर उद्दीपन का कार्य करती हैं। ऐसी मादक परिस्थिति में मन प्रिय के साथ क्यों न बंध जाय ! ऐसी प्रेम-ठगौरी पड़ गई है कि लोक-लाज, रीति-नीति का कुछ भय नहीं रहा। बहाने-बहाने भी

कृष्ण-दरस की प्यास बुझाने का प्रयास होता है और 'निधरक' रूप से भी—

देखौ माई अबला के बल रास।
अति गज मत्त निरंकुस मोहन निरखि बंधे लट पास।।
अबही पंगु भई मन की गति बिनु उद्यम अनियास।
तब की कहा कहौं जब प्रिय प्रति चाहति भ्रकुटि विलास।।
कच संजमन व्यास भुज दरसति मुसकनि बदन विकास।
हा हरिवंश अनीति रीति हित कत डारत तन त्रास।।

राधावल्लभ सम्प्रदाय में राधा-कृष्ण का मिलन नित्य है। अतः हित जी की रचना में रूप-दर्शन, साक्षात्कार, मिलन आदि में कोई पूर्वापर क्रम नहीं है। उपर्युक्त रूप-चित्रण, रूपासक्ति आदि सब राधा-कृष्ण के नित्य मिलन और नित्य विहार का ही अंग हैं। केवल श्रृंगार रस के अध्ययन की दृष्टि से हम उन्हें विभावादि के क्रम में रख सकते हैं। राधाकृष्ण का नित्य विहार-वर्णन ही 'हितचौरासी' का मुख्य विषय है। इस नित्य मिलन में काम-चेष्टाओं की भरमार है। यद्यपि सुरत का खुला वर्णन हित जी के पदों में स्वल्प है, पर सुरतारंभ और सुरतांत-वर्णन की कोई कमी नहीं। राधा-कृष्ण आनन्द-मग्न हुए कुंजविहार करते हैं। दोनों की जोड़ी भूतल पर अद्‌भुत है, उनका परस्पर अनुराग अनुपम है। पराग और कर्पूर की सुगन्धि से पूर्ण निकुंज में कोमल किसलय की सुन्दर सेज बनी है। सुरतारंभ की तैयारी पूरी है। श्याम ने गोरी राधा को सेज पर बिठाया, हास-परिहास, चुम्बन, परिरंभन के बाद नीबी-बंधन खोलने का उपक्रम होता है। तभी सहसा राधा की दृष्टि प्रिय के उर-मुकुर पर जाती है। वहाँ अपने ही 'प्रतिबिम्ब' को देखकर राधा को भ्रम हो जाता है कि कृष्ण के हृदय में तो कोई और सुन्दरी समाई है। बस राधा मानवती हो जाती है। कृष्ण राधा की चिबुक पकड़कर प्रेमपूर्वक प्रतिबिम्ब की असलियत समझाते हैं, पर राधा तो 'नाहीं नाहीं' की रट लगा देती है जिसे सुनती हुई और प्रेमलीला को कुंज-रंध्रों से चोरी-चोरी देखती हुई ललिता आदि सखियाँ आनन्दलाभ करती हैं—

कोमल किसलय शयन सुपेशल तापर श्याम निवेशित गोरी।
मिथुन हास-परिहास परायन पीक कपोल कमल कर झोरी।।
गौर श्याम भुज कलह मनोहर नीबी बंधन मोचत डोरी।
हरि उर मुकुर विलोकि अपनपौ विभ्रम विकल मानयुत भोरी।।
चिबुक सुचारु प्रलोइ प्रबोधत पिय प्रतिबिम्ब जनाय निहोरी।।
नेति नेति वचनामृत सुनि-सुनि ललितादिक देखत दुर चोरी।
हित हरिवंश करत करधूनन प्रणयकोप मालावलि तोरी।।

—हित चौरासी पद 7

हितहरिवंश के राधा-कृष्ण -श्रृंगार-वर्णन का मुख्य यही स्वरूप है। इसमें वियोग

के लिए कोई स्थान नहीं। विप्रलंभ के जो मुख्य तीन भेद शास्त्रकारों ने माने हैं—पूर्वराग, मान, प्रवास—राधा-कृष्ण के नित्य-मिलन और विहार में वे संभव नहीं। यहाँ मान है; पर वह विप्रलंभ का रूप ग्रहण नहीं करता। यह मान भी संयोग का ही मान है। अष्टछापी कवियों ने ब्रज के चार प्रकार के विरह का वर्णन किया है—प्रत्यक्ष विरह, पलकांतर विरह, वनांतर विरह और देशांतर विरह, इनमें प्रत्यक्ष-विरह पलकांतर विरह वास्तव में अधिकाधिक दर्शन-पान की आकुलता के ही द्योतक होते हैं जिन्हें विरह नहीं माना जा सकता। हितजी आदि राधाबल्लभीय वाणीकारों ने 'प्रत्यक्ष विरह', 'पलकांतर विरह' और क्षणिक मान का ही वर्णन किया है, जो संयोग के ही उत्तेजक, उसी के रूप हैं। न यहां बनांतर विरह है, न देशांतर और न ही पूर्वराग और दीर्घमान को स्थान मिला है। उपर्युक्त पद में राधा का मान क्षणिक है। वह थोड़ी देर कृत्रिम मान जताकर और 'नाहीं-नाहीं' करके संयोग-रति में आनंद-रस ही घोल रही है। युगल-किशोर साथ रहते हुए भी विरह की-सी अतृप्ति का अनुभव करते रहते हैं। प्रत्यक्ष विरह यही है। देखते हुए भी पलकांतराय खलता है: **जब जब रुकत पलक सम्पुट लट अति आतुर अकु-लान'**—यह पलकांतर विरह है। इसी प्रकार क्षणिक मान भी प्रेमोद्दीपक बनकर अतृप्ति जगाता है। राधा के जरा-सा मुंह फेर लेने या फुला लेने पर कृष्ण अपनी दीनता प्रकट करते हैं, राधा के चरणों में नत होकर अनुनय-विनय करने लगते हैं। थोड़ी देर के इस अभिनय के बाद सखी दोनों का मिलन करा देती है, जो पहले से कहीं अधिक उत्कट और उन्मादक होता है। सखी राधा का मान छुटाती हुई कहती है—

छांड़ि दै मानिनी मान मन धरिबौ।
प्रणत सुन्दर, सुघर प्राण बल्लभ नवल,
बचन-अधीन सौं इतौ कत करिबौ॥

—हित चौ० पद 83

और कुंज-भवन में फिर मिलन होता है। वर्षा की फुहारें पड़ रही हैं, दोनों प्रेम-रस में भीज रहे हैं, मधुर वार्तालाप में मग्न हैं। सखियाँ रस की घातों का आनन्द लूट रही हैं:

दोऊ जन भीजत अटके बातन।
सघन कुंज के द्वारे ठाड़े अम्वर लपटे बातन॥
ललिता ललिता रूप रस भींजी बूंद बचावत पातन।
हितहरिवंश परस्पर प्रीतम मिलबत रति घातन॥

—स्फुट वाणी पद 23

दिनभर 'दरस-परस' होता है और रात-भर सुरत। राधा की सुरतांत अवस्था को सखियां पहचान लेती हैं, भला नागर-मधुप द्वारा नागरी का मंथन करना कहीं

छिपाये छिप सकता है ? राधा की सुरतांत-छवि का वर्णन करते हरिवंश जी नहीं अघाते—

तू रतिरंग भरी देखियत है री राधे रहसि रमी मोहन सौं रैन।
गति अति शिथिल, प्रकट पलटे पट, गौर अंग पर राजत ऐन।।
जलज कपोल, ललित लटकति लट, भृकुटि कुटिल ज्यों धनुष धृत मैन।
सुन्दरि सहव, कहब, कंचुकि, कत कनक-कलश-कुच बिच नख दैन।।
अधर बिम्ब दलमलित, आरस युत अरु आनन्द सूचत सखि नैन।
हितहरिवंश दुरति नहिं नागरि, नागर मधुप मथत सुख सैन।।

—स्फुटवाणी पद 10

इस निकुंज-विहार में कभी वन-हिण्डोला होता है, तो कभी अन्य क्रीड़ाएँ। रात्रि के रतिरंग के पश्चात् युगल-किशोर प्रातः झूला झूलते हैं। दोनों अनुराग-भरे मंद मधुर स्वर में गान करते हैं। सुकुमारी राधा हिंडोर की झकोर से डर-डर जाती है और प्रिय के उर से लपटाती है। दोनों की प्रेमलीला कितनी आनन्ददायक है—

झूलत दोऊ नवल किसोर।
रजनी-जनित रंग सुख सूचत अंग-अंग उठि भोर।।
अति अनुराग भरे मिलि गावत सुर मंदर कल घोर।
निरखि-निरखि फूलति ललतादिक विवि मुख चन्द्र चकोर।।

हितहरिवंश का शृंगार-वर्णन अत्यन्त सीमित है। उसमें अनुभावों तथा संचारी भावों की वह विविधता और छटा नहीं है जो सूरदास, नंददास के काव्य में पाई जाती है। अधिकांश पदों में सुरत, आलिंगन, चुम्बन आदि स्थूल अनुभावों का परिचय मिलता है। सुरत-समय राधा की 'नेति-नेति' का हरिवंश जी ने कई जगह आनन्द लिया है। इस 'कुट्टमित' अनुभाव का उदाहरण देखिए :

'वधू कपट हठि कोप कहत कल नेति नेति मधु बोल'
'मोहन मन मथत मार, परसत कुच नीवि हार।
वेपथुयुत नेति नेति वदति भामिनी।'

इस कृत्रिम या कपट-मान के आश्रय प्रिय-विक्षेप और विव्वोक अनुभावों की व्यंजना देखिए :

पिय चितवत तव चन्द्र वदन तन, अधमुख निज चरण निहारत।
वे मृदु चिबुक प्रलोत प्रबोधत, तू भामिनी कर सों कर टारत।।

मद की मत्त अवस्था इन पंक्तियों में देखिए :

आज सम्हारत नाहिन गोरी।
फूली फिरत मत्त करिनी ज्यों सुरति-समुद्र झकोरी।।

सुरत, विपरीत रति, कामकेलि, परिरंभन, रास-नृत्य आदि स्थूल क्रियाओं के

सिवाय इस शृंगार में और कुछ नहीं है। ऐसी स्थूल खुली अभिव्यक्ति इन भक्तों का अन्तर्मन कैसे शुद्ध और पवित्र रखती होगी! हमें तो इसमें भक्ति की कोई बात नजर नहीं आती। निश्चय ही यह सब वर्णन पाठक की दृष्टि से संयोग शृंगार ही है, जिसमें जीवन की उदात्तता भी विशेष नहीं है। विपरीत रति का उल्लेख इन पंक्तियों में देखिए :

परिरंभन विपरीत रति वितरित सरस सुरत निज केलि।
इन्द्रनील मणिमय तरु मानो लसत कनक की बेलि ।।

—हि० चौ० पद 30

श्री हितहरिवंश की राधा काम-कला-विशारद है, श्रीकृष्ण 'सुरत-सूर-रनधीर' हैं और इसी से उनका शृंगार-वर्णन काम-क्रीड़ा के सिवा कुछ नहीं। यह ऐकान्तिक प्रेम कुंज-निकुंज तक सीमित है। इसमें जीवन की अन्य तिक्त-मधुर अनुभूतियाँ नहीं। यहाँ तक कि भ्रमर-प्रसंग आदि अष्टछापी कवियों के विविध विषय भी यहाँ लुप्त हैं। केवल मिलन-सुख और इसमें परस्पर तत्सुखी भाव ही इसका कुछ औदात्त्य प्रकट करता है। प्रिया-प्रियतम एक-दूसरे को आनन्दित करने का ही लक्ष्य रखते हैं, राधा कहती है, मुझे जो-जो भाता है, वही प्रिय कृष्ण करते हैं और जो-जो कृष्ण को सुखद लगता है वही मैं करती हूँ…

जोई-जोई प्यारो करै सोई मोहि भावै,
भावै मोहि जोई, सोई-सोई करै प्यारै ।।
मोको तौ भावती ठौर प्यारे के नैननि में,
प्यारो भयो चाहै मेरे नैननि के तारै ।।
मेरे तन मन प्रानहू ते प्रीतम प्रिय,
अपने कोटिक प्रान प्रीतम मो सौं हारैं ।।
हितहरिवंश हंस-हंसिनी सांवल गौर,
कहो कौन करै जल-तरंगनि न्यारैं ।।

(हि० चौ० पद 1)

यही हरिवंश जी का शृंगार-वर्णन है—एकरस, ऐकान्तिक और ऐन्द्रिक।

भक्तिरस या भक्तिभावना

हितहरिवंश की मुख्य आराध्य श्री राधा है। पर उन्होंने श्री राधा का महत्त्व कृष्ण के माध्यम से ही स्वीकार किया है, इसलिए कृष्ण भी स्वत: उपास्य बन गये हैं। राधा का महत्त्व इसलिए है क्योंकि स्वयं भगवान श्रीकृष्ण भी राधा के भक्त एवं अनुरागी हैं। एक पद में हरिवंश जी ने राधा की स्तुति करते हुए कहा है : हे राधा ! तू महान है क्योंकि जिसे ब्रह्मा और शिव भी भजते हैं, उन भगवान कृष्ण से तू बनफूल चुनाती है ! जिस रसरूप भगवान के बारे में वेदों में 'नेति-

नेति' कहा गया है, उन्हीं का तू अधर-सुधा-रस चखती है। तेरा रूप अद्‌भुत है, मैं तेरा कुछ यशगान करने में ही समर्थ हूँ :

सुनि मेरी बचन छबीली राधा, तैं पायौ रस-सिंधु अगाधा।
जाहि बिरंची उमापति नाये तापैं तैं बनफूल बिनाये।।
जो रस नेति-नेति श्रुति भाख्यौ, ताकौ तू अधर-सुधा-रस चाख्यौ।
तेरौ रूप कहत नहिं आवै (जै श्री) हित हरिवंश कछुक जस गावै।।

राधा के साथ एक-दो पदों में हितहरिवंश ने केवल श्रीकृष्ण के प्रति भी अपनी भक्ति-भावना प्रदर्शित की है। अपने आराध्य के प्रति अनन्य भक्ति का उपदेश देते हुए हरिवंश जी शपथपूर्वक कृष्ण-गुण-गान का महत्त्व बताते हैं। 'हे भाई ! तुम्हें मेरी सौगंध है, कृष्ण के गुणों का स्मरण करो। संसार के कुत्सित वाद-विवाद, विकार—परधन, परदारा आदि—सब त्याग दो। ब्रजपति को भूलकर सांसारिक वस्तुओं में मोह रखना ऐसा ही है जैसे मणियों को छोड़कर काँच ग्रहण करना। अपना परलोक सुखमय बनाने के लिए इस कुटिल कलियुग में एकमात्र कृष्ण का गुणगान ही सहायक हो सकता है :

तातैं भैया मेरी सौं कृष्ण गुण संचु।
कुत्सित वाद विकारहिं परधन सुनु सिख मंद परतिय बंचु।।
मणिगण पुंज ब्रजपति छांडत हित हरिवंश कर गहि कंचु।
पाये जान जगत में सब जन कपटी कुटिल कलियुग टंचु।
इह परलोक सकल सुख पखर मेरी सौ कृष्ण संकु।।

—स्फुटवाणी पद 8

श्री हितहरिवंश वस्तुतः युगलोपासक हैं। उनकी भक्ति-पद्धति में तत्सुखी-भाव एवं सखी-भावयुक्त मधुर रस की अभिव्यक्ति हुई है। राधा-कृष्ण का प्रेम तत्सुख-सुखित्व भाव पर आधृत है और साथ ही सखी अर्थात् साधक या भक्त भी अपने युगल-किशोर को रति-रसानंद में मग्न देख आनन्दित होता है। एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा—'**झूलत दोऊ नवल किशोर**' वाले पद में कवि ने राधाकृष्ण के झूला झूलने, आलिगन-मिलन आदि का वर्णन करते हुए अंत में कहा है :

निरखि-निरखि फूलति ललितादिक बिवि मुख चन्द्र-चकोर।
दै असीस हरिवंश प्रशंसित करि अंचल की छोर।।

ललिता आदि सखियाँ जिस प्रकार कुंजरंध्रों से युगल और उनकी प्रेमक्रीड़ा देखकर आनन्दित होती हैं, उसी प्रकार भक्त भी इस प्रेम-गान से अलौकिक आनन्द प्राप्त करते हैं। यही हरिवंश जी की भक्ति का रूप है। युगल की अष्ट-याम-सेवा और नैमित्तिक सेवा के अवसरों पर गाये जाने वाले पद जैसे मंगला, शैया-समय, स्नान-शृंगार आदि से सम्बन्धित अष्टयाम सेवा के पद तथा होली-बसन्त, फूलडोल-झूलन आदि के नैमित्तिक सेवा के कुछ पद भी 'हितचौरासी' में

प्राप्य हैं। कृष्ण की वेणु-ध्वनि के अलौकिक प्रभाव और हित वेश नन्दलाल की महिमा का गान भी हरिवंश जी ने एक पद में किया है :

मैं जु मोहन सुन्यौ वेणु गोपाल को।
व्योम मुनियान सुर नारि विथकित भई,
कहत नहिं बनत कछू भेद यति-ताल कौ ।।
श्रवण कुण्डल छुरित रुरत कुंतल ललित,
रुचिर कस्तूरि चंदन तिलक भाल को।
चंद गति मन्द भई निरख छवि काम गई,
देखि हरिवंश हित वेष नंदलाल कौ।।

हरिवंश जी ने रासलीला का भी गान किया है। उन्होंने रास के प्रसंगों को अपनाकर केवल रास-रचना और उसके प्रभाव का ही वर्णन किया है। श्याम के साथ राधा रासमण्डल में शोभायमान है। ब्रजबालाओं के बीच राधा और नन्दलाल ऐसे शोभित हैं जैसे मर्कत मणियों के बीच घन-तड़ित। रास का एक पद देखिए, हरिवंश ने राधा की ही छवि का यहां भी वर्णन किया है—

श्याम संग राधिका रास मंडल बनी।
बीच नन्दलाल ब्रजबाल चंपक बरन,
ज्यों घन तड़ित बिच कनक मकंत मनी।।
लेत गति मान तत्त थेई हस्तक भेद,
सारेगम पधनि, ये सुप्त सुर नन्दिनी ।।
नित्यं रस पहरि पट नील प्रकटित छवि,
वदन जतु जलद से मकर की चन्दिनी।।
राग रागिनी तान मान संगीत मत,
थकित राकेश नव शरद की जामिनी।।
हित हरिवंश प्रभु हंस कटि केहरी,
दूर कृत मदन मदमत्त गजगामिनी।।

हरिवंश जी की भक्ति-भावना में नवधा भक्ति के अंग भी समाहित हैं। श्रवण, कीर्तन, नाम-स्मरण, पादसेवन, तन्मयता आदि तत्त्व राधाबल्लभ से ही सम्बन्धित हैं। इस प्रेम-स्मरण-भक्ति में निष्कामता अत्यावश्यक है। हरिवंश जी कहते हैं कि सबसे प्रेम-भाव रखना, निष्काम-भाव से हृदय में राधाबल्लभ लाल का ध्यान और मुख पर उनका नाम और वृन्दावन धाम में विश्राम करना—यही भक्त का कर्तव्य है :

सबसों हित, निष्काम मति, वृन्दावन विश्राम।
राधाबल्लभ लाल कौ हृदय ध्यान, मुख नाम।। स्फुटवाणी 24

मन में राधाबल्लभ लाल और श्री राधा की प्रेमभक्ति होनी चाहिए और

सशरीर सत्संगति में रहना चाहिए। कृष्ण कल्पतरु की सेवा से ही अलौकिक सुख प्राप्त हो सकता है :

तनहि राखि सत्संग में, मनहिं प्रेम रस भेव।
सुख चाहत हरिवंश हित, कृष्ण कल्पतर सेव।। स्फुटवाणी 25

युगल-किशोर की निकुंज-प्रेम-रत-छवि का पान करना ही हरिवंश जी नयनों का सबसे बड़ा सौभाग्य मानते हैं :

निकसि निकुंज ठाढ़े भये, भुजा परस्पर अंस।।
राधावल्लभ मुख कमल निरखि नैन हरिवंश ।।26।।

आँखें ही नहीं, समस्त इन्द्रियों का लाभ यही है कि वे राधा और कृष्ण की सेवा में अर्पित हो जाये। यदि राधा-कृष्ण का नाम नहीं रटती तो रसना बेकार है, कट जाए, आँखें यदि उस मंजुल मूर्ति को नहीं देखतीं तो फूट जायें, श्रवण उनका गुण नहीं सुनते तो फट जायें और राधा का यशगान यदि नहीं करती है तो वाणी व्यर्थ है—

रसना कटौ जु अनरटौ, निरखि बिन फुटो नैन।
श्रवण जु असुनौ बिन राधा यस बैन ।।27।।

अनन्यता का और भी स्पष्ट उल्लेख उनकी स्फुटवाणी के दो पदों में मिलता है। एक में हरिवंश जी ने अन्य सभी देवी-देवताओं के स्थान पर केवल श्यामा राधा को अपनी आराध्या माना है, राधा को प्राणनाथ कहा है—

रहौ कोऊ काहू मनहिं दिये।
मेरे प्राणनाथ श्री श्यामा शपथ करौ तृण छिये।।

एक पद में गोपी या सखी के कृष्ण के प्रति अनन्य भाव का प्रकाशन हुआ है। सखी कहती है, कोई चाहे जिसे अपना स्वामी बनाये, मैं तो कृष्ण के प्रेमरंग में डूब गई हूँ। मुझे किसी का डर नहीं। मैं लोक-लाज किसी की परवाह नहीं करती। सोते-जागते हरदम मोहनलाल ही मेरे मन में छाये रहते हैं। कितनी अनन्यता, कितना दृढ़ विश्वास, कितनी निर्भयता है इस भक्ति-भावना में ! यह गोपी-भाव न-जाने कैसे हरिवंश जी की 'वाणी' में प्रकट हो गया ?

मोहनलाल के रंग रांची।
मेरे ख्याल परौ जिन कोऊ दसौं दिसि मांची।
कन्त अनन्त करौ जो कौऊ बात कहौं सुनि सांची।
यह जिय जाहु, भलै सिर ऊपर, होय प्रकट ह्वै नाची।।
जाग्रत शयन रहत उर ऊपर मणि कंचन ज्यों पांची।
हित हरिवंश डरौ काके डर हौं नाहिन मति कांची। —स्फुटवाणी पद 12

कहते हैं, राधा-कृष्ण में अनन्यता के कारण हरिवंश जी ने एकादशी-व्रत का त्याग कर दिया था, क्योंकि एकादशी व्रत के दिन श्री राधा-कृष्ण-प्रसाद-अमृत

का त्याग उन्हें गवारा नहीं था। राधा-कृष्ण के प्रसाद-अमृत की तुलना में कोटि एकादशी व्रत तुच्छ हैं। नवग्रह आदि की पूजा तथा मर्यादा को वे तुच्छ समझते थे। उनका कथन था—'**जो पै कृष्ण चरण मन अर्पित तौ करिहै कहा नवग्रह रंक**'। भला भले और बुरे ग्रह बेचारे क्या कर सकते हैं? कृष्ण-कल्पतरु से अधिक शुभ ग्रह भी क्या दे सकते हैं?

इस प्रकार राधा-कृष्ण के प्रति अनन्यता, दास्य, रूपासक्ति, आत्म-निवेदन आदि भावनाओं को प्रकट करते हुए हरिवंश जी ने युगल के नित्य-विहार-दर्शन का आनन्द-लाभ ही अपनी भक्ति का लक्ष्य बनाया है।

भाषा-शैली—कला-पक्ष

हितहरिवंश जी ने सुन्दर ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। उनकी ब्रजभाषा में सूरदास, नन्ददास आदि अष्टछापी कवियों की भाषा की अपेक्षा संस्कृत के तत्सम शब्द अधिक प्रयुक्त हुए हैं। पर प्रचलित शब्दों को ही उन्होंने अपनाया है। उनके अनेक पदों की अनेक पंक्तियों में केवल क्रियापद और विभक्तियाँ ब्रजभाषा की रहती हैं, शेष समस्त पदावली संस्कृत के तत्सम शब्दों की दिखाई देती हैं। डॉ० विजयेन्द्र स्नातक के शब्दों में "संस्कृत की तत्सम पदावली को ब्रज भाषा के प्रवाह में ढालने की कला में हरिवंश जी को अद्भुत क्षमता प्राप्त है।" एक उदाहरण देखिए :

विद्रुम-फटिक-विविधनिर्मितधर नव कर्पुर पराग न थोरी।
कोमल-किसलय-शयन-सुपेशल तापर श्याम निवेशित गोरी॥

उपर्युक्त पंक्तियों में तत्सम शब्दों का सानुप्रासिक प्रयोग कितना मधुर है! संस्कृत की समासयुक्त पदावली भी ब्रजभाषा के प्रवाह में योग दे रही है।

हित जी ने संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ कहीं-कहीं बोल-चाल के शब्दों का बड़ा अनूठा प्रयोग किया है, एक उदाहरण देखिए :

नितंनि भ्रकुटि वदन अंबुज मृदु सरस हास मधु बोलनि।
अति आसक्त लाल अलि लंपट बस कीने बिनु मोलनि॥

उपर्युक्त पंक्तियों के अन्त में 'बोलनि' और 'बिनु मोलनि' शब्द कैसा माधुर्य भर रहे हैं!

तद्भव-बहुला पदावली में भी अनुप्रास की छटा, माधुर्य, प्रवाह, भाव-व्यंजना आदि सब गुण पाये जाते हैं :

बन की कुंजनि कुंजनि डोलनि।
निकसत निपट सांकरी बीथिनी परसत नाही निचोलनि॥

हरिवंश जी की भाषा में वैसी चित्रात्मकता और कलात्मकता नहीं है जैसी सूरदास और नन्ददास की भाषा में पाई जाती है। हरिवंश जी की एक बड़ी

विशेषता यह है कि इन्होंने अनलंकृत भाषा का भी अत्यन्त प्रभावी प्रयोग किया है। यह सम्भव हुआ है सार्थक और मैत्रीपूर्ण शब्दों की सहयोजना-द्वारा।

अलंकार-योजना

अलंकारों का अपेक्षाकृत कम प्रयोग हुआ है, फिर भी कहीं-कहीं सादृश्यमूलक अर्थालंकार और अनुप्रास, वीप्सा आदि शब्दालंकारों की छटा बहुत सुन्दर और स्वाभाविक है। सादृश्यमूलक अर्थालंकारों में उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा का तथा शब्दालंकारों में अनुप्रास का प्रयोग खूब हुआ है। सादृश्यमूलक अलंकारों में परम्परागत उपमानों का ही मुख्यत: प्रयोग हुआ है। कहीं-कहीं उपमान-योजना अनूठी है। कुछ उदाहरण देखिए :

उपमा-रूपक : 1. 'कनकलता-सी क्यों न विराजत अरुझी श्याम-तमाल हो।'
2. 'श्रीफल-ऊरज कंचन-सी देही, कटि केहरिगुणसिंभ झकोरी।'
3. 'बेनी-भुजंग चन्द्रसत बरनी, कदली जंघ जलचर गति चोरी।'
4. 'आज सम्हारत नाहिन गोरी।
फूली फिरत मत्त करनी ज्यों सुरत-समुद झकोरी ॥'

कहीं कृष्ण को नूतन घन और राधा को दामिनी बनाया गया है—'तू दामिनी मोहन नूतन घन'। पर काम-केलि-नायक-नायिका को उन्होंने हंस-हंसिनी या 'गज-करिनी' का रूप अधिक दिया है। मुख को इन्दु, नैन को चकोर, खंजन आदि का रूप परम्परागत ही है—

रूपक : 1. 'हित हरिवंश हंस-हंसिनी सांवल गौर,
कहो कौन करै जल तरंगनि न्यारे।'
2. 'हित हरिवंश जुगल करनी-गज विहरत प्रिय वन-प्यारी।'
3. इन्दु गोविन्द वदन के कारण चितवन कौं भये नैन चकोर।
4. भृकुटि-काम-कोदंड नैन-सर कज्जल रेख अनी।
नाभि गंभीर मीन-मोहन मन खेलन को हृदनी।

उत्प्रेक्षा : 1. परिरंभन विपरीत रति वितरित सरस सुरत निज केलि।
इन्द्रनील मणिमय तरु मानों लसत कनक की बेलि ॥
2. 'कोमल कुटिल अलक सुठि शोभित अवलंबित युग गंडन।
मानहुं मधुप थकित रस लंपट नील कमल के खंडन ॥'
3. कुच-युग पर नख-रेख प्रकट मनों शंकर शिर शशि टोल।
4. 'यों राजत कवरी गूँथित कच कनक कंज वदनी।
चिकुर चन्द्रिकनि बीच अर्ध विधु मानो ग्रसित फनी'।

कहीं-कहीं अनूठी कल्पना भी देखी जाती है : राधा की शिथिल अलसाई पलकों में गोलक की गति से (कटाक्षों से) मोहन रूपी मृग बिंध गया है—

शिथिल पलक में उठति गोलक गति बिंध्यौ मोहन-मृग सकत न चल री।
यहाँ उत्प्रेक्षा और रूपक का अनूठा प्रयोग हुआ है।
प्रतीप अलंकार : **कमल सुगंध विलास परावधि युगल मिले स्वर गावत।**
मृगज, मयूर, मराल, पिक अद्‌भुत कोटि मदन शिर नावत।।
राधा-कृष्ण के नेत्रों को देखकर मृगछौना, नृत्य को देखकर मयूर, गति से मराल, उनके गान को सुनकर भ्रमर और पिक तथा उनकी अद्‌भुत छवि को देखकर मदन भी नत-मस्तक हो गया।

हित जी ने सूरदास की तरह 'कूट' पदों की रचना नहीं की। एक-दो पदों के परम्परागत उपमानों के प्रयोग में रूपकातिशयोक्ति अलंकार प्रकट हुआ है, पर पद 'कूट' नहीं बना है। उदाहरण देखिए :

दान दै री नवल किसोरी।
मांगत लाल लाडिलौ नागर प्रकट भई दिन-दिन की चोरी।
नव नारंग कनक हीरावलि विद्रुम सरस जलज मनि गोरी।।
पूरित रस पीयूष जुगल घट कमल कदलि खंजन की जोरी।

कहीं-कहीं दृष्टांत, उदाहरण और वाक्यार्थोपमा आदि तर्कमूलक अलंकार भी दृष्टिगत होते हैं। उदाहरण का सुन्दर उदाहरण निम्न पद में देखिये :

प्रीति न काहू की कानि विचारै।
मारग अपमारग विथकित मन को अनुसरत निवारै।।
ज्यों सरिता साँवन जल उमंगत सनमुख सिंधु सिधारै।।
ज्यों नादहिं मन दिये कुरगनि प्रगट पारधी मारै।।
(जै श्री) हित हरिवंश हिलग सारंग सलभ शरीरहिं जारै।

दृष्टांत : **'यह जु एक मन बहुत ठौर करि कहि कौन सचु पायो।**
द्वै तुरंग पर चढ़त हठि परत कौन पै धायौ।'

शब्दालंकारों में अनुप्रास तो पंक्ति-पंक्ति में है। **'बन की कुंजनि कुंजनि डोलनि'**—में वीप्सा का सुन्दर प्रयोग हुआ है। ध्वन्यर्थव्यंजना (Onomatopoeia) के भी एक-दो उदाहरण मिलते हैं :

'कल कंकन किंकनि नूपुर धुनि सुनि खग मृग सचु पायौ।'

अनुप्रास आदि इन शब्दालंकारों के प्रयोग से हित जी की भाषा में संगीतात्मकता, नाद-सौन्दर्य और माधुर्य उत्पन्न हो गया है।

कहीं-कहीं लाक्षणिक प्रयोग और मुहावरें भी दिखाई दे ही जाते हैं। वैसे लोकोक्ति और मुहावरे का प्रयोग हित जी ने कम ही किया है। **"प्यारौ भयौ चाहै मेरे नैननि के तारे"**—में 'नैननि के तारे' मुहावरा प्रयुक्त हुआ है। लाक्षणिक प्रयोगों के भी एक-दो उदाहरण देखिए :

1. 'अब ही पंगु भई मन की गति बिनु उद्यम अनियास'

2. 'प्रीति न काहु की कानि विचारै।
नाइक निपुन नवल मोहन बिनु कौन अपनपौ हारै'।

3. नन्द के लाल हर्यौ मन मोर।

हित जी की भाषा के सम्बन्ध में डॉ० विजयेन्द्र स्नातक ने कहा है, "ब्रज भाषा का जैसा समृद्ध और प्रांजल रूप हितहरिवंश जी की वाणी में प्रस्फुटित हुआ है वैसा किसी अन्य भक्त-कवि की रचना में नहीं हुआ। हमारे इस कथन को कदाचित् पक्षपातपूर्ण समझा जाय और सूरदास तथा नन्ददास-जैसे सुप्रसिद्ध कवियों की ब्रजभाषा को उनसे बढ़कर बताया जाय किन्तु समीक्षा की कसौटी पर हमारा कथन खरा उतरेगा। सूरदास की भाषा में ब्रज भाषा का आंचलिक पुट है, लोक भाषा के अधिक समीप होने के कारण मसृण और परिष्कृत शब्दों की ओर उनका झुकाव नहीं है। नन्ददास ने अवश्य शब्द-चयन में परिष्कार पर बल दिया है और शब्द-मैत्री तथा ध्वन्यात्मक नाद-सौंदर्य को अपनाकर 'नन्ददास जड़िया' का पद पाया है, किन्तु नन्ददास की भाषा में हितहरिवंश के समान समृद्धता नहीं है।"[1]

यद्यपि स्नातक जी ने पक्षपात की बात का पहले ही निषेध करना चाहा है, पर हमें कहना पड़ रहा है कि विद्वान लेखक के उपर्युक्त कथन में कुछ पक्षपात ही प्रतीत होता है। यदि भाषा की समृद्धता से स्नातक जी का अभिप्राय संस्कृत की तत्सम-बहुल पदावली के प्रयोग से है, तो हमें कुछ नहीं कहना है। पर किसी कवि की भाषा में संस्कृत की तत्सम पदावली से ही समृद्धता नहीं आ जाती। इसमें संदेह नहीं कि हरिवंश जी की भाषा का रूप उनके समस्त पदों में एक-सा ही है, जबकि सूरदास, नन्ददास की रचनाओं में भाषा का प्रयोग बड़ा असमान है : कुछ पदों और रचनाओं में उनकी भाषा उत्कर्ष के चरम पर पहुँची दीखती है तो कुछ छंदों, पदों और रचनाओं में उनकी भाषा का बड़ा ही लचर प्रयोग हुआ है। पर किसी कवि की भाषा-शैली की शक्ति उसकी उत्कृष्टतम रचनाओं के ही आधार पर आँकी जाती है। हमें यह कहने में जरा भी संकोच या पक्षपात का भय नहीं रहा है कि सूरदास और नन्ददास-जैसी श्रुति-मधुर, अभिव्यंजनापूर्ण, कलात्मक और समृद्ध भाषा का प्रयोग हरिवंश जी नहीं कर सके। नन्ददास और सूरदास-जैसी शब्द-मैत्री, सानुप्रासिकता, चित्रात्मकता तथा ध्वन्यात्मकता और कलात्मक अलंकृति हरिवंश जी की भाषा में नहीं है।

छन्द-प्रयोग—हितहरिवंश जी ने लय, गति, यति, ताल से विविध राग-रागनियों में बंधे पदों (गीतों) का ही मुख्य प्रयोग किया है। अतः उनकी मुख्य शैली गेय पद-शैली है, पर फिर भी उन्होंने अपनी 'स्फुट वाणी' में 4 दोहे, द कुण्डलिया छन्द, दो छप्पय और चार सवैयों की रचना भी की है। दो-चार सवैये और छप्पय 'हित चौरासी' में भी प्राप्य हैं।

1. राधाबल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य, पृ० 328

गीति तत्त्व—श्री हितहरिवंश ने केवल 108 पदों की रचना की। 84 पद उनकी 'हित चौरासी' में संकलित हैं और 14 पद स्फुट वाणी में हैं। हित जी बड़े संगीतज्ञ विद्वान थे। साहित्य और संगीत में उनकी समान गति थी। उनके सभी पद विविध राग-रागनियों में बंधे हैं। 'हित चौरासी' के पद 24 रागों में हैं। छः पद राग विभास में, 7 बिलावल में, 4 राग टोडी में, 2 आसावरी में, 1 गौड़ में, 9 राग गौरी में, 7 देवगंधार में, 16 सारंग में, 6 कल्याण में, 4 राग मलार में, 9 कान्हरे में, 7 धनाश्री में, 2 वसंत में और 4 राग केदारे में हैं।

शृंगार रस की सरसता से ओत-प्रोत हित जी के पदों में तदनुकूल कोमल-कांत माधुर्य-व्यंजक पदावली का प्रयोग हुआ है। अनुप्रास की योजना में पंक्ति-पंक्ति में संगीतात्मकता और मंजुल प्रवाह उत्पन्न हो गया है। व्रज भाषा की सानुप्रासिक विशेषता हित जी की पदावली में भी खूब पाई जाती है। नाद-सौंदर्य से संगीत की अद्भुत छटा उनके गीतों में आ गई। गति, यति, लय और तुक में बँधे उनके गीत दोनों प्रकार का आनन्द प्रदान करते हैं—एक भाव-जन्य रसानन्द, दूसरा संगीतमय ध्वनि का रसानन्द। एक उदाहरण पर्याप्त होगा :

> **वन की कुंजनि कुंजनि डोलनि।**
> **निकसत निपट सांकरी बीथिनि परसत नांहि निचोलनि॥**
> **प्रातकाल रजनी सब जागे सूचत सुख दृग लोलनि।**
> **आलसवंत अरुण अति व्याकुल कछू उपजति गति गोलनि॥**
> **निर्तन भृकुटि वदन अंबुज मृदु सरल हास मधु बोलनि।**
> **अति आसक्त लाल अलि-लंपट बस कीने बिनु मोलनि॥**
> **बिलुलित सिथिल स्याम छूटी लट राजत रुचिर कपोलनि।**
> **रति विपरीत चुम्बन-परिरंभन चिबुक चारु टक टोलनि॥**
> **कबहुँ श्रमति किसलय सिज्या पर मुख अंचल झक झोलनि।**
> **बिन हरिवंश दासि हिय सींचत बारिधि-केलि-कलोलनि॥**

इस पद में गीत-काव्य की कोमलकांत पदावली, संगीतात्मकता, प्रसाद और माधुर्य गुणयुक्त सानुप्रासिक शब्द-योजना, प्रवाहात्मकता आदि भाषा-शैलीगत विशेषताओं के साथ-साथ भाव-प्रवणता, संक्षिप्तता, भाव-ऐक्य आदि गुण भी स्पष्ट हैं। गीति-काव्य में आत्माभिव्यक्ति अथवा अन्तः पक्ष की जितनी प्रधानता हो उतना ही उसकी प्रभाव-शक्ति बढ़ी-चढ़ी होती है। यद्यपि हरिवंश जी के पदों में राधा-कृष्ण-प्रेम का वर्णन हुआ है और सीधी आत्माभिव्यक्ति नहीं है, पर सूर के लीला-गान की तरह हर पद के अन्त में उनके नाम की छाप उनके गीतों को पर्याप्त निजीपन प्रदान कर देती है।

गीत और गीति-काव्य की उपर्युक्त सभी विशेषताएँ होते हुए भी हितहरिवंश के पदों में न तो मीरां के पदों तथा सूर, तुलसी आदि के विनय-भक्ति के पदों-

जैसी आत्माभिव्यंजना पाई जाती है, अर्थात् उनके पद उतने अन्तर्मुखी (Introvert) नहीं हैं, जितने मीरां के पद, न ही उनमें राग रागिनियों की वैसी संगीतात्मक विविधता पाई जाती है जैसी सूरदास के पदों में, और न ही उतनी भावप्रवणता और भाव-गहनता ही दीखती है जितनी मीरां और सूरदास के पदों में है। हितजी के पदों में वैसी सहजता और लोकगीत-शैली की प्रवृत्ति भी नहीं पाई जाती, जो मीरां और सूरदास के पदों की विशेषता है।

सूरदास और मीरां के पदों में जैसे प्रत्येक पद की टेक में भाव सिमटा हुआ रहता है और अन्तिम पंक्ति में भक्त की आत्मा जैसे अपने आराध्य के भाव में लीन प्रतीत होती है, वह विशेषता भी हितहरिवंश की पदावली में नहीं है। पदावली का संगीत-माधुर्यपूर्ण सहज-प्रवाह जैसा सूर के पदों में है, वैसा हित जी के पदों में नहीं। यही कारण है कि संगीतकारों में भी हितहरिवंश के पद उतने लोकप्रिय नहीं हो पाए जितने सूर, मीरां आदि के पद लोकप्रिय हुए। इसमें संदेह नहीं कि उस युग में संगीत की शास्त्रीय पद्धति के विकास में हितहरिवंश के पद भी उपयोगी और महत्त्वपूर्ण रहे, किन्तु शास्त्रीय संगीत की ध्रुपद आदि शैलियों तथा शास्त्रीय रागों की विविधता की जो विशेषता सूरदास के पदों में पाई जाती है, वह हितहरिवंश के पदों में नहीं है।

हितहरिवंश की पदावली में वर्णनात्मकता भी अपेक्षाकृत अधिक होने के कारण भावप्रवणता उतनी नहीं आ पाई। सूर के पदों-जैसी भाव-विविधता भी हित जी की पदावली में नहीं है। हितहरिवंश के पदों में भाव-स्थिति अत्यन्त सीमित है। उन्होंने केवल कुंज-विहार-लीला के अन्तर्गत प्रेम का सीमित प्रकाशन किया है। इसी से उनके पदों में भावों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति और भाव-विविधता नहीं है। हित-प्रभु का विषय केवल शृंगार रहा है। और शृंगार के भी अत्यन्त सीमित क्षेत्र को उन्होंने छुआ है। इसी से हित जी के पदों में भावानुभूति की दृष्टि से एकरसता-सी पाई जाती है। सच तो यह है कि औदात्त्य की दृष्टि से भी सूर के पदों की तुलना में हितहरिवंश के पद बहुत हल्के पड़ते हैं। भगवद्भक्ति का ही नहीं, मानवीय उदात्त भावानुभूतियों का भी जैसा स्पष्ट, मार्मिक, वैविध्यपूर्ण प्रकाशन सूर के पदों में हुआ है, वैसा हितहरिवंश के पदों में नहीं है।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि यद्यपि हितहरिवंश के पद हिन्दी साहित्य में विद्यापति की समृद्ध गीत-परम्परा को आगे बढ़ाने वाले सिद्ध हुए और गीतकार के रूप में हितहरिवंश का महत्त्व अक्षुण्ण है तथापि हितहरिवंश सूरदास, मीरांबाई तथा तुलसीदास जैसे प्रथम श्रेणी के प्राचीन गीतकार-कवियों की कोटि में नहीं ठहरते। संगीतकारों और गायकों में जैसे सूरदास और मीरां के पद लोकप्रिय हुए वैसे हितहरिवंश के नहीं। फिर भी हित-प्रभु के कुछ पद गीत-काव्य के चरमोत्कर्ष को प्रकट करते हैं, सन्देह नहीं।

●●

6

अष्टछाप के विशिष्ट कवि

परमानन्ददास

1. जीवन-वृत्त—वाह्य साक्ष्य, जन्म-तिथि तथा गोलोकवास तिथि ।
2. रचनाएँ
3. परमानन्ददास की रस-भाव-व्यंजना
   (क) वालसल्य रस-वर्णन (ख) श्रृंगार-वर्णन (ग) भक्ति-भावना (घ) अन्य रस-भाव
4. परमानन्ददास की भाषा-शैली—कलापक्ष

जीवन-वृत्त

परमानन्ददास के जीवन की भी अधिकांश मध्यकालीन कवियों की तरह अन्त: साक्ष्य से कोई रूप-रेखा नहीं बनती है। उनके पदों से उनका बल्लभ-सम्प्रदायी कृष्णभक्त होना तो स्वयंसिद्ध है : अपने गुरु बल्लभाचार्य, बल्लभकुटुम्ब तथा ब्रज-भूमि के प्रति प्रेम और भक्ति की भावना परमानन्ददास ने कई पदों में प्रकट की है—एक पद में कवि ने अपनी अनन्य भक्ति प्रकाशित करते हुए कहा है कि कृष्णप्रेम में मैंने जीवन के सब सुख छोड़ दिये हैं और अपने घर में ऐसे रहता हूँ जैसे चलता मुसाफिर :

छांड़ि अहार बिहार और देह सुख, औरे चाह न काऊ।
परमानन्द बसत है घर में जैसे रहत बटाऊ॥

इस पद से कुछ ऐसा ध्वनित होता है कि परमानन्ददास गृहस्थ में रहते हुए भी गेही-धर्म छोड़े थे। एक-दो पदों में कवि ने ढोंगी और पाखण्डी संन्यासी तथा दिगम्बर आदि बनने वालों की निन्दा की है। कवि की दीनता, विनम्रता, आचरण की शुद्धता आदि भावनाएँ भी सांकेतिक रूप से उनके व्यक्तित्व पर प्रकाश डालती हैं। अन्त:-साक्ष्य से इसके सिवा और कुछ पता नहीं चलता।

बाह्य साक्ष्य—'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' से पता चलता है कि परमानन्ददास का जन्म कन्नौज (जिला फर्रुखाबाद) में कन्नौजिया ब्राह्मण के यहाँ' हुआ था। इनके माता-पिता के नाम का कहीं से कोई पता नहीं चलता। डा० दीनदयाल गुप्त ने कहा है कि कन्नौज में मैंने परमानन्ददास के प्राचीन निवास-स्थान

का पता लगाया, परन्तु वहाँ से कवि के अथवा उसके निवास-स्थान या वंशजों के बारे में कोई पता नहीं चला। 'वार्ता' से ही पता चलता है कि 'कन्नौज में परमानन्ददास जी बहोत ही प्रसन्न बालपने रहते। पाछें ये बड़े योग्य भये और कवीश्वरहूं भए।' इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि दीक्षा से पूर्व परमानन्ददास बालपन से कन्नौज में ही रहे और उनका जीवन सानन्द बीता। 'वार्ता' में ही लिखा मिलता है कि परमानन्ददास के जन्म से पूर्व उनके पिता निर्धन थे और परमानन्ददास के जन्म के साथ ही उन्हें कहीं से धन मिला था। इसी से पुत्र को भाग्यवान् मानकर—आनन्द का कारण समझकर—उन्होंने उसका नाम परमानन्द रखा : "यह पुत्र बड़ौ भाग्यवान है जाके जनमत ही मोकों परम आनन्द भयो है। सो मैं या पुत्र को नाम परमानन्ददास ही धरूँगो।"

एक अन्य वार्ता तथा उपर्युक्त पद के अन्त: साक्ष्य से यह भी अनुमानित होता है कि वे अपने पिता के घर में रहते हुए भी सांसारिकता और धन-संग्रह की प्रवृत्ति से दूर थे। इनके पिता को इनकी यह नि:स्पृहता अच्छी नहीं लगती थी, तब परमानन्ददास ने अपने पिता से कहा, "मैं तो द्रव्य को संग्रह कबहूँ नाहीं करूँगो और तुम खायबे लायक मोसों नित्य अन्न लेउ।" इसी प्रसंग में परमानन्ददास ने यह भी स्पष्ट कह दिया कि मैं विवाह नहीं करूंगा। परन्तु माता-पिता धन के कुछ लालची थे और पुत्र की प्रकृति से असंतुष्ट थे। अतः वे अच्छी आजीविका के लिए दक्षिण में रहने लगे। परमानन्ददास कन्नौज में ही रहे। कुछ समय बाद वह बल्लभाचार्य जी से दीक्षित होकर ब्रजमंडल पधारे। वार्ता-साहित्य से यह भी विदित होता है कि बल्लभ सम्प्रदाय में आने से पूर्व ही वे कीर्तन-भजन और गान-विद्या में प्रवीण और कीर्तनकार के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे : "सो परमानन्ददास ने अपने घर कीर्तन को समाज कियो, सो गाम-गाम मैं प्रसिद्ध भये। सो परमानन्ददास गान-विद्या मैं परम चतुर हते।"

बल्लभाचार्य की प्रेरणा से पूर्व कृष्ण की विनय-भक्ति और माधुर्य-भाव-भक्ति मुख्यरूप से प्रचलित थी। बाललीला-गान या नवनीतप्रिय कृष्ण की वात्सल्य भक्ति को आचार्य बल्लभ ने विशेष रूप से प्रेरित किया। तभी अड़ैल में ही आचार्यजी ने परमानन्ददास को अपनी शरण में ले लिया और दीक्षा दी। आचार्य का अड़ैल-वास का यह समय सं० 1576 माना जाता है। अतः परमानन्ददास का बल्लभ सम्प्रदाय में शरणागति का समय लगभग सं० 1576 सर्वमान्य है।

तत्पश्चात् कुछ समय अड़ैल में ही रहकर परमानन्ददास "नवनीतप्रिय जी को नित नए पद करिके सुनावते" रहे। फिर उन्होंने आचार्यजी के साथ ब्रज को प्रस्थान किया। फिर ब्रज में ही वे जीवन-पर्यन्त रहे और कीर्तन-सेवा में लगे रहे। बल्लभ-सम्प्रदाय में उन्होंने खूब प्रतिष्ठा पाई। सूरदास और परमानन्ददास दोनों की सब भक्तों और कवियों पर वरीयता थी। गोसाइं विट्ठलनाथ ने इन दोनों

को ही पुष्टि-मार्ग के सागर कहा था : "इन दोऊन कें कीर्तन की संख्या नाहीं, सो दोऊ सागर कहवाये।"

वार्ता से पता चलता है कि व्रज में वे सुरभी कुण्ड पर एक कुटिया में रहते थे और वहीं एक दिन "युगललीला में मन लगाय के परमानन्ददास देह छोड़िके श्री गोवर्द्धननाथ जी की लीला में जाय प्राप्त भये।"

जन्म-तिथि तथा गोलोकवास-तिथि—किसी भी लिखित साक्ष्य से परमानन्ददास के जन्म अथवा मृत्यु की तिथियाँ नहीं मिलतीं। बल्लभसम्प्रदाय में यह किंवदन्ती या विश्वास प्रचलित है कि परमानन्ददास महाप्रभु बल्लभाचार्य से आयु में 15 वर्ष छोटे थे। बल्लभाचार्यजी का जन्मकाल बल्लभसम्प्रदायी ग्रंथों, वार्ता-साहित्य तथा जन्म-दिवस मनाने की परम्परा से सं० 1535 सर्वमान्य है। इस आधार पर परमानन्ददास का जन्मकाल सं० 1550 ठहरता है। ऊपर हम उनका शरणगति-काल सं० 1576 बता चुके हैं। परमानन्ददास की जीवनी के जो संकेत 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' से प्राप्त होते हैं, उनसे यही लगता है कि उस समय परमानन्ददास अपनी पूर्ण युवावस्था में थे जबकि वे विवाह-प्रस्तावों को ठुकरा चुके थे और अपनी वाद्य-गायन-विद्या को विकसित करने में लगे थे। गुरु-दीक्षा पाने तथा काव्य-सृजन के आरम्भ का भी यही समय हो सकता है। अतः बल्लभ-सम्प्रदाय की किंवदंती तथा शरणागति के समय के प्रमाण से परमानन्ददास का जन्म सं० 1550 ठीक ही है। बल्लभसम्प्रदाय में परमानन्ददास का जन्म-दिवस गोकुलनाथजी के प्राकट्य के दिन अर्थात् अगहन सुदी सप्तमी सोमवार के दिन मनाया जाता है। अतः अगहन सुदी सप्तमी सं० 1550 को परमानन्ददास की जन्मतिथि माना जा सकता है।

परमानन्ददास ने गोसाईं विट्ठलनाथ की विद्यमानता में देह-त्याग किया था। गो० विट्ठलनाथ की मृत्यु सं० 1642 में हुई थी। इससे यह सिद्ध हुआ कि परमानन्ददास की मृत्यु सं० 1642 से पहले हुई थी। परमानन्ददास ने अपने एक पद में गो० विट्ठलनाथ के सातों पुत्रों की बधाई गाई है और सातवें पुत्र घनश्याम जी की स्तुति में कहा है, "श्रीघनस्याम, पूरन काम, पोथी मैं ध्यान।" इससे सिद्ध होता है कि श्री घनश्याम की अवस्था 10 या 12 साल की बाल्यावस्था रही होगी जिसमें बालक पोथी बांचने लगता है। घनश्याम जी का जन्म सं० 1628 में हुआ था। अतः इस पदरचना के समय अर्थात् सं० 1638 के आसपास परमानन्ददास विद्यमान थे। अतः उनकी मृत्यु सं० 1638 और 1642 के बीच किसी समय हुई होगी। सम्प्रदायी साक्ष्य से यह भी विदित होता है कि परमानन्ददास की मृत्यु कुंभनदास जी के निधन के बाद हुई थी। डॉ० दीनदयाल गुप्त ने कुंभनदास का मृत्युकाल सं० 1639 निश्चित किया है। अतः परमानन्ददास का गोलोकवास सं० 1640-41 के आसपास ही ठहरता है।

रचनाएँ

नागरी-प्रचारिणी-सभा की खोज रिपोर्ट (1902) में परमानन्ददास-कृत 'दान-लीला' का उल्लेख हुआ था। संभवत: इसी आधार पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आदि कुछ इतिहासकारों ने 'दानलीला' को परमानन्ददास-कृत बताया। किन्तु न तो यह रचना कहीं प्राप्त हुई है और न इसका विवरण ही मिलता है। यही बात 'ध्रुव-चरित्र' के बारे में है। नागरी-सभा की खोज रिपोर्ट (सन् 1906) में ही इसे परमानन्ददास-कृत सूचित किया गया है। पर इन दोनों रचनाओं के अस्तित्व का संदेह ही है। परमानन्द नाम के और भी कई कवि हुए हैं, संभवत: ये किसी अन्य परमानन्ददास की रचनाएँ होंगी। अष्टछापी परमानन्ददास के तो केवल फुटकर पदों का ही उल्लेख बल्लभसम्प्रदायी ग्रंथों में मिलता है। सच तो यह है कि बल्लभसम्प्रदायी कीर्तन-संग्रहों (भाग 1, 2, 3) में जो कुल लगभग 500 पद परमानन्ददास के संगृहीत मिले हैं तथा 'रागसागरोद्भव', 'रागकल्पद्रुम', 'रागरत्नाकर' आदि अन्य संगीत-संग्रहों में परमानन्ददास-कृत पद संकलित हैं, उन सबसे यही प्रमाणित होता है कि परमानन्ददास-विरचित केवल फुटकर पद ही उनकी प्रामाणिक रचना हैं। 'दानलीला' के प्रसंग पर उनके कुछ पद मिलते हैं। हो सकता है किसी संग्रहकर्ता ने 'दानलीला' के पदों को अलग से संकलित करके परमानन्ददास के नाम से 'दानलीला' रचना का उल्लेख कर दिया हो। परमानन्ददास के पदों की संख्या काफी रही होगी। तभी तो उनके पदों के संग्रह को सागर कहा गया। 'परमानन्द सागर' की जो हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त हुई हैं उनमें से एक में परमानन्ददास के लगभग 800 पद संकलित हैं, एक दूसरी प्रति में पद-संख्या 500 है, एक अन्य में लगभग 400 पद हैं। 'परमानन्दसागर' की एक हस्तप्रति में, जो लगभग 150 वर्ष पुरानी है, पदों की संख्या 1101 है। इसी प्रकार 'परमानन्ददास जी के कीर्तनपद' नाम से जो बड़ा संग्रह है, उसमें भी लगभग 1000 पद संकलित हैं। 'परमानन्ददाससागर' या परमानन्ददास-कीर्तन-संग्रहों की इन हस्तप्रतियों से पता चलता है कि सब संग्रहों में एक-से पद नहीं हैं। सभी संग्रहों के पदों की संख्या लगभग दो हजार प्रतीत होती है। इनमें कम-से-कम एक हजार पद निश्चित रूप से प्रामाणिक माने जा सकते हैं। कवि ने अपने नाम की छाप मुख्यत: पांच प्रकार से प्रकट की है : 1. परमानन्द प्रभु, 2. परमानन्ददास, 3. परमानन्द, 4. दास परमानन्द और 5. परमानन्द स्वामी। इन पाँच प्रकार की छापों से युक्त उनके पदों को प्रामाणिक माना जा सकता है। वैसे भी कवि की प्रवृत्ति कृष्णलीलाओं का भावपूर्ण गान करने की ही रही है। यही कारण है कि परमानन्ददास ने सूरदास की तरह भागवत के अनुसार कृष्ण की अन्य कथाओं का वर्णन नहीं किया। उन्होंने छन्द-शैली का भी विशेष प्रयोग

नहीं किया। अतः परमानन्ददास की प्रामाणिक रचना लगभग एक हज़ार पदों से युक्त 'परमानन्दसागर' ही मानी जा सकती है।

परमानन्ददास की रस-भाव-व्यंजना

(क) वात्सल्य रस-वर्णन

परमानन्ददास का काव्य भाव-प्रधान है। कवि ने अपने आराध्य भगवान् कृष्ण की भाव-भीनी लीलाओं का वर्णन करना ही अपना उद्देश्य बनाया है। अत्यन्त सरल स्वाभाविक और प्रायः निरलंकृत भाषा में परमानन्ददास ने विभिन्न राग-रागनियों में जो निश्छल भावाभिव्यक्ति की है, वह उन्हें एक श्रेष्ठ भावुक कवि और भक्त सिद्ध करती है। न उन्हें नन्ददास की तरह दार्शनिक मतवाद प्रकट करने का अवकाश था और न ही भाषा को अलंकृत और वाग्वैदग्ध्यपूर्ण बनाने की ही चिंता थी। उनके काव्य में शतप्रतिशत भावधारा ही प्रवाहित हुई है। अन्य अष्टछापी कवियों की तरह परमानन्ददास भी कोमल भावनाओं के ही कवि हैं। भगवद्-रति की जैसी स्पष्ट भक्तिपूर्ण व्यंजना परमानन्ददास के पदों में हुई है, वैसी नन्ददास में नहीं। सूरदास और परमानन्ददास में भक्तिभाव की नन्ददास की अपेक्षा अधिक स्पष्ट अभिव्यक्ति इस तथ्य की द्योतक है कि उत्तरोत्तर अष्टछाप के कवियों तथा अन्य कृष्णभक्त कवियों में लौकिक शृंगारिक प्रवृत्ति का अधिकाधिक समावेश होता गया। सूरदास और परमानन्ददास के पदों में बाल-भाव की व्यंजना भी नन्ददास आदि परवर्ती अष्टछापी कवियों से कहीं अधिक मात्रा में पाई जाती है। परमानन्ददास के जीवन की 'वार्ता' से पता चलता है कि अड़ैल में महाप्रभु बल्लभाचार्य ने परमानन्ददास को कृष्ण की बाललीला-गान के लिए विशेष रूप से प्रेरित किया था। यही कारण है कि परमानन्ददास के काव्य में वात्सल्य रस और बाल-भाव का चित्रण भी पर्याप्त पाया जाता है।

'परमानन्द सागर' में किस रस की प्रधानता है? इस प्रश्न का कोई दो टूक उत्तर देना आसान नहीं, क्योंकि उनके पदों में जितनी माधुर्य भाव की व्यंजना है, लगभग उतनी ही वात्सल्य रति और बाल-भाव की स्थिति है और भक्ति-रस भी लगभग बराबर मात्रा में ही है। वास्तव में परमानन्ददास ने प्रत्येक पद में अपनी भगवद्रति ही प्रकट की है। इस बात का विशेष ध्यान उन्होंने नहीं रखा है कि वह बाल-भाव में अधिक प्रकट हो या माधुर्य-भाव में अथवा श्रद्धा-भक्ति-पूर्ण महिमा-गान के रूप में। यही कारण है कि उनके पदों से हमें वात्सल्य रस, शृंगार-रस और भक्ति-रस की लगभग बराबर-सी अनुभूति होती है।

अष्टछापी कवियों में सूरदास और परमानन्ददास का बाल-वर्णन तथा वात्सल्यचित्रण सर्वाधिक एवं सर्वश्रेष्ठ है। यद्यपि परमानन्ददास सूरदास-जैसा

कलापूर्ण एवं विस्तृत वर्णन नहीं कर पाये तथापि उनका बालवर्णन और वात्सल्य रस-चित्रण पर्याप्त व्यापक एवं अनुभूतिपूर्ण है। इसमें कवि ने बाल-रूप-चित्रण, बाल-क्रीड़ा, बाल-मनोविज्ञान आदि विभावपक्ष का भी, सूरदास की तरह, विस्तृत चित्रण किया है। माता के हृदय की स्नेहमयी झाँकियाँ अनेक पदों में पाई जाती हैं जिनमें मातृ-वात्सल्य का सुन्दर प्रकाशन हुआ है।

परमानन्ददास के भाव-वर्णन के सम्बन्ध में एक बात कहना जरूरी है। सूरदास की तरह परमानन्ददास ने भी अपने प्रायः प्रत्येक पद की अन्तिम पंक्ति में कृष्ण के अवतारी प्रभुरूप की व्यंजना तथा उसके प्रति अपनी भाव-आरती उतारने का सर्वत्र ध्यान रखा है। इसी से उनके काव्य में वात्सल्य-रस और शृंगार-रस की विशुद्ध अभिव्यक्ति बहुत कम पदों में हो पाती है। उनका वात्सल्य रस और शृंगार-रस दोनों ही भगवद्रति के सम्बन्ध से स्वतः ही उदात्त हो गए हैं। डॉ० दीनदयाल गुप्त आदि कुछ विद्वानों ने इस स्थिति को **"काव्य-रस के प्रवाह में रुकावट"**[1] माना है। इस सम्बन्ध में हमारा निवेदन यह है कि अंतिम पंक्ति में कृष्ण के लोकोत्तर रूप की ऐसी व्यंजना न तो रस-व्याघात उत्पन्न करती है और न किसी प्रकार का अनौचित्य लाती है। इसे रसाभास की स्थिति या रस का अनुचित प्रवर्त्तन नहीं माना जा सकता। वास्तव में भगवान् से सम्बन्धित होने से यह सब प्रकार का भाव-प्रकाशन उदात्त हो गया है। यदि अन्तिम पंक्ति से वात्सल्य रस-भाव या शृंगार-रस की "अनुभूति टूट कर अद्भुत रस और भक्ति-भाव की महत्ता में बदल भी जाती है" तो यह भाव-परिवर्तन की ही दशा है न कि भाव-समाप्ति की। इसमें अनौचित्य तभी माना जाता जबकि यह परिवर्तन दो विरोधी भावों की योजना (जैसे शोक के साथ हास्य या वीर के साथ भयानक) के रूप में होता। वात्सल्य रस और शृंगार-रस का अद्भुत रस या भक्ति-रस से कोई विरोध नहीं है। अतः सूरदास, परमानन्ददास आदि के ऐसे पदों में रस-बाधा नहीं मानी जा सकती। हमारा निश्चित मत है कि अन्तिम पंक्ति की इस अलौकिक व्यंजना से हमारा भाव-परिवर्तन भी बहुत कम स्थानों पर ही हो पाता है। अधिकांशतः हम यही समझते हैं कि यह बाल-वर्णन या शृंगार-चित्रण किसी साधारण लौकिक प्राणी का न होकर अलौकिक परमात्मा का है। अतः इस परमात्म-सम्बन्ध से शृंगार आदि की स्थूलता का भी परिहार हो जाता है और भावोदात्तता की स्थिति स्वतः उत्पन्न हो जाती है। सूरदास, परमानन्ददास आदि के काव्य में सामाजिक भावोदात्तता तो नहीं है, हाँ, भगवान् के साथ सब भावों का सम्बन्ध होने से अलौकिक भावोदात्तता उसमें अवश्य माननी पड़ती है।

1. देखिए 'अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय', पृ० 799

परमानन्ददास का वात्सल्य-वर्णन बालक कृष्ण के जन्म या प्राकट्य से आरंभ होता है। जन्माष्टमी के दिन गोकुल में कृष्ण-जन्म हुआ। सारे गांव में आनन्द छा गया, गोकुल में बधाई बज उठी। सब लोग माता यशोदा और नंद बाबा के घर बधाई देने आ पहुंचे। व्रज में अहीर फूले-फूले फिरने लगे; यशोदा रानी ने सुखसागर श्याम-शरीर पुत्र को जन्म दिया है! मंगलाचार और वेदपाठ की ध्वनि गूंज उठी। नंदराय आनन्द-मग्न हो गए हैं:

व्रज में फूले फिरत अहीर !
ढोटा भयो नंद बाबा के सुखनिधि स्याम सरीर ।।
मंगल कलस दूब दधि अच्छत वेद पढत द्विज धीर ।
फूले नंदराय फहरावत छिरकत कुमकुम नीर ।।

नंद बाबा ने पुत्र-जन्म की खुशी में मागध, सूत और बंदीजन तथा अन्य ब्राह्मणों एवं गुणियों को गो, बच्छ तथा धन एवं आभूषण का दान दिया। सबने **"बारंबार निहार कमलमुख हियो सिरायो है।"** माता यशोदा धन्य है जिसकी **"बहुत दिनन की आसा पूंजी बांछित फल पायौ है।"**

न-केवल गोकुल अपितु समस्त व्रज-मण्डल में इस शोभासिंधु बालक के जन्म की चर्चा फैल गई। एक गोपी गोकुल में दधि बेचने आई। यशोदा की गोद में बालक कृष्ण को देखा, उस रूप-राशि का वह अपनी सखी से यों वर्णन करती है:

सोभा सिंधु न अनत रही री ।
नंदभवन भरि उपटि सखि री व्रज की बीथनि फिरत बही री ।।
देखन आजु गई हुती सजनी बेचन गोकुल मांझ दही री ।

बालक कृष्ण धूलि-धूसरित अवस्था में जब माता से लिपट जाता है और गोद में बैठ तथा ठोड़ी पकड़ कुछ तुतलाकर बोलता है, तब माता अपने को धन्य मानती है और आनन्द-अनुराग से सराबोर हो जाती है। वह बार-बार मुख-चुम्बन करती नहीं अघाती। माता के इस उच्छाह का कौन वर्णन कर सकता है?

सब गोपियां बालक को शुभाशीष देती हैं; इसका बाल भी बांका न हो:

रानी जु तिहारो घर सुबस बसौ ।
सुनिरी जसोदा या ढोटा कौ न्हातहि जनि बार खसो ।।

बालक को पालना झुलाया जाता है। गोपी इस अद्भुत सुन्दर बालक को किस प्रकार मोद से भरकर झुलाती है, देखिए:

अद्भुत देख्यो नन्द भवन मैं लरिका एक भला ।
कहा कहूं, अंग-अंग प्रति सोभा कोटिक काम कला ।।
गावति हँसति हँसावति ग्वालिन झुलावति पकरि डला ।
परमानन्द को ठाकुर मोहन नन्द लला ।।

नन्हीं-नन्हीं दो दूध की दतियाँ देखकर माता कितनी उल्लास से भर जाती है ! बालक की रुनक-झुनक बजती पैंजनियाँ और अटपटी मृदु वाणी किसे मोहित नहीं करती ?

बारी मेरे लटकन पग धरो छतियाँ।
कमल नैन बलि जाऊँ बदन की सोभित नन्हीं-नन्हीं द्वै दूध की दतियाँ ।।
रुनक-झुनक पग बाजत पैंजनियाँ अलबल, कलबल बोलो मृदु बतियाँ ।।

कृष्ण लला का मुख-दर्शन ग्वालिनों के लिए शुभ मंगलकारी हो गया। एक ग्वालिन यशोदा के घर लाल का मुख देखने आई और कहती है; कल मैं कृष्ण का मुख देखकर दधि बेचने गई थी, जाते ही बिक गया और दूना लाभ हुआ, यही नहीं, कल ही घर में गाय ने बछिया दी ! अपने लाल की लटकन-मटकन और पोंहची-नूपुर की रुनझुन देख-सुनकर माता मोद से भर जाती है। जब ग्वाल-बाल चुटकी दे देकर कृष्ण को नचाते हैं तो माता प्रसन्न होती है।

माता अब बालक को दूर खेलने जाने से मना करती है, उसके सुख-स्वास्थ्य तथा कुशल-मंगल की उसे पूरी चिंता है : "**दूरि खेलन जिन जाऊ मनोहर मारेगी काहू की गैय्या।**"

और कनक-आँगन में कृष्ण की बाल-क्रीड़ा देखिए, अपने प्रतिबिम्ब को पकड़ने के लिए बालक दौड़-दौड़ कर थक जाता है। माता उसकी यह लीला देख आनन्दित हो उठती है :

क्रीड़त कान्ह कनक आंगन।
निज प्रतिबिम्ब बिलोकि किलकि धावत पकरन को परछाँवन ।।
पकरन धावत, भ्रमित होत आवत उलटि लाल तहँ डावन।
'परमानन्द' प्रभु की यह लीला निरखत जसुमति हँसि मुसकावत ।।

कृष्ण अब ग्वाल-बालों से खेलने लगा है। वह पतंग उड़ाता है, पेंच लड़ाता है; वह चौगान में गेंद खेलने लगा है, चंचल घोड़े को दौड़ाता और रथ-दौड़ की होड़ लगाता है। इसी खेल-खेल में एक दिन श्रीदामा से कृष्ण हार जाते हैं और खीझ के कारण पोत देने से जवाब दे देते हैं। बाल-क्रीड़ा और बाल-मनोविज्ञान का सूर का प्रसिद्ध पद परमानन्ददास के पदों में भी कुछ पाठ-भेद से पाया जाता है :

खेलत में को काको गुसैय्यां।
स्रीदामा जीते तुम हारे बरबट कत करत रिसैय्यां ।।
जाँति-पाँति कुल तें जु बड़े हो कछु इक अधिक तिहारे गैय्याँ।
याही तें जु देत अधिकाई हम सब बसत तिहारी छैय्यां ।।
रूहठ करँ तासौं को खेलैं सखा रहैं इक ठैय्याँ।
परमानन्द प्रभु खेल्यो चाहो तो पोत देहो करि नंद दुहैय्यां ।।

क्या इसी बात की धौंस जमाते हो कि तुम्हारे चार गायें अधिक हैं ? खेल में रूठ करने वाले से भला कौन खेलना पसंद करेगा ? कृष्ण को अगर खेलना है तो सीधी तरह पोत देनी पड़ेगी। बाल-स्वभाव की कैसी स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है !

बाल-मनोविज्ञान के सूरदास एवं परमानन्ददास दोनों ही अपूर्व पारखी थे। सूरदास की तरह परमानन्ददास ने भी बाल-क्रीड़ा का सुन्दर वर्णन किया है। कृष्ण बलराम की शिकायत माता से करते हैं, बलराम सब ग्वाल-बालों के साथ मुझे तमाशा दिखाने के बहाने बहकाकर घने जंगल में ले गया और वहाँ से सब मुझे अकेला छोड़कर यह कहते हुए वापस भाग आए कि हौवा काट खाएगा। मैं डरता-काँपता गिरता-पड़ता बड़ी कठिनाई से बचकर आया हूँ। बलराम मुझे मोल का लिया हुआ और काला कह-कहकर चिढ़ाता है। माता बलराम और उसके साथियों को दुष्ट कहती है, तब कहीं कृष्ण को कुछ संतोष होता है :

मैया निपट बुरो बलदाऊ।
कहत है बन बड़ो तमासो सब लरिका जुरि आऊ॥
मोहू कौं चुचकारि चले लै जहाँ बहुत बड़ो बन झाऊ।
ह्वाँहीते कहि छाँड़ि चले सब काटि खायरे हाऊ॥
डरपि काँपि कै उठि ठाडो भयौ कोऊ न धीर धराऊ।
परि-परि गयो चल्यौ नहीं जानै भाजे जात अगाऊ॥
मोसौ कहत मोलकौं लीन्हो आप कहावत साऊ।
'परमानन्द' बलराम चबाई तैसेई मिले सखाऊ॥

नटखट कान्ह अब उत्पात मचाने लगा है। वह जिस किसी के घर में घुसकर माखन-चोरी करता है, भांडे फोड़ डालता है। ग्वालिनें यशोदा को उलाहना देती हैं :

यहां लौं नेक चलो नंदरानी जू।
अपने सुत के कौतुक देखो कियो दूध में पानी जू॥
मेरे सिर की चटक चूनरी लै रस में वह सानी जू।

माखन-चोरी के उलाहने सुनकर माता यशोदा कृष्ण से पूछती हैं : बेटा, तू पराये घर जाकर दूध-दही की चोरी क्यों करता है ? अपने घर में क्या कम है ? सब ग्वालिनें उलाहना देती हैं कि हमारी दोहनी कान्ह ने फोड़ डाली ! बालकृष्ण अपनी सफाई देता है और कहता है कि इन्हें हमारा खेलना अखरता है, इसीसे झूठे दोष लगाती हैं।

माता रोज-रोज के उलाहनों से खीझ कर कह उठती है—**अरी मेरो तनक सो गोपाल कहा करि जाने दधि की चोरी।** और रंचक माखन खा भी लिया होगा तो क्या आसमान टूट पड़ा ? क्यों चिल्ला-चिल्लाकर सारे गांव को हिला रही

हो ? जितना मोहन ने खाया हो, उससे दुगुना मेरे से ले लो। मेरा बालक मेरी आँखों का तारा और घर का दीपक है, इसको बुरा-भला न कहो, अपितु शुभाशीष दो : माता के इस स्नेह का क्या कहना !

ढोटा रंचक माखन खायो।
काहे को करुई होति री ग्वालिनी सब ब्रज गाजि हलायो ।।
जाकों जितनों तुम जानति हौ दूनौ मेरे लेहू।
मेरो कान्ह रहे दूबलो आसिस सबै मिलि देहू ।।
कमल नयन मेरी अंखियन तारो कुल दीपक ब्रज गेह।
'परमानन्द' कहत नंदरानी सुत प्रति अधिक सनेह ।।

माता अपने सुधानिधि श्याम को आँखों की ओट ही होने देना नहीं चाहती। दिन में थोड़ी देर खेलने जाता है, तो माता को युग-कल्प बीतने के समान लगता है, इस शीतल सुधा-सागर का पान करते आँखें नहीं अघातीं :

बलि गई श्याम मनोहर गात।
तिहारो बदन सुधानिधि सीतल अंचवत दृग न अघात ।।
पलक ओट जिन जाऊ पियारे कहत जसोदा मात ।।

माता अपने लाल को बड़े चाव से मीठी खीर, षड्रस भोजन बनाकर खिलाती है। वह कंचन थाल में परसती है और हवा करती हुई सुत-मुख निहारती है। बाल-कृष्ण को माखन-रोटी भाती है, ग्वालिनें स्नेह से भरकर कृष्ण को **माखन-रोटी देय नचावति'**। गोचारण से आते हुए कृष्ण की इस रूप-माधुरी पर माता बलि-बलि जाती है। कृष्ण गोप-वृन्द में ऐसे शोभित हैं जैसे नक्षत्रगण में पूर्ण-चन्द्र :

आवत हैं गोकुल के लोचन।
नन्द किसोर जसोदा नन्दन मदन गोपाल बिरह दुख मोचन ।।
गोप वृन्द में ऐसे सोभत ज्यों नक्षत्र मंह पूरन चन्द।

बालहठ एक सामान्यानुभूति है। कभी बालक चांद खिलौना लेने की हठ करता, है [कभी किसी और बात पर रूठ जाता है। माता दधि बिलौती है, तो रूठा बाल-कृष्ण उसकी रई पकड़कर खड़ा हो जाता है। वह उसे दधि बिलोने नहीं देता :

अहो दधि मथन करे नन्द रानी।
बारे कन्हैया आर न कीजै छांड अब देहौ मंथानी ।।

प्रातः समय माता अपने सुत को जगाती है : मेरे राजीवलोचन जागो, प्रातः हो गया, संग के सखा अपनी-अपनी गाय लेकर द्वार पर आ खड़े हैं, गोपाल तुम भी उठो, !

बालक कृष्ण बहुत देर से चाहता था और माता से कहता था—**'मैया री मैं गाय चरावन जैहों'**। आखिर कुछ बड़ा होने पर एक दिन माँ-बाप ने ग्वालों तथा बलराम के साथ गोपाल को भी गाय चराने भेज दिया। शाम को घर आकर बालक कृष्ण बड़े गर्व से कहता है कि मैंने पूरी सफलता से गायें चरायीं, उन्हें पूरी तरह हेरे रखा और ठीक तरह टेर कर बुलाया। अन्य ग्वाल-बालों से जब गायें नहीं संभली तो मैंने उन्हें हेरा।

छोटे बालक कृष्ण से बड़े ग्वाल-बाल अब रोज-रोज गायें हिराने लगे—आप तो दादा बनकर खेलते और आराम करते, बेचारे कृष्ण को पेल देते हैं। बालक घर आकर माता से शिकायत करता है। सूरदास से मिलते-जुलते शब्दों में परमानन्ददास की एतत्सम्बन्धी निम्न पंक्तियां देखिए :

मैया हौं न चरैहौं गाय।
सगरे ग्वाल घिरावत मोपे दूखत मेरे पांय ॥
हौं जानत मेरे कुंवर कन्हैया लेत हिरदय लगाय ॥
'परमानन्ददास' को जीवन ग्वालन पर जसुमतिजू रिसाय ॥

बालपन से ही बालक के ब्याह की बातें चलने लगती हैं।

बड़ा होने पर सचमुच ब्याह की बात चलने लगती है। बरसाने से प्रस्ताव आता है।

माता की अभिलाषा—**कब देखोंगी दुलह दुल्हन अपने कुल के देव मनायें**—पूरी होती है। आज ललन की सगाई का दिन है, माता गोपांगनाओं को मंगलाचार के लिए बुलाती है। कृष्ण को सजा-संवार कर तैयार करती है। कृष्ण को रत्न-चौकी पर बैठाकर विप्रवर तिलक करते हैं, ढोल-नौबत बजती हैं, माता फूली फिरती है और बेटे पर वसन-आभूषण न्यौछावर करती है : कितना हर्षोत्साह-उल्लास है !

आज ललन की होत सगाई।
आवोरी गोपीजन मिलिकें गावो मंगलचार बधाई ॥
नखसिख अंग सिंगार महर मनि मोतिन की माला पहराई।

कृष्ण-जन्म और बाल-लीला की तरह परमानन्ददास ने सात-आठ पदों में राधा के जन्म और पालना झूलने आदि बाल-क्रीडाओं का भी वर्णन किया है। रावल में बधाई बज उठी : वृषभानु जी के घर कीर्ति माता ने राधा को जन्म दिया है। ढाढ़ी और ढाडिनें आकर गीत गाने लगी। कीर्ति ने कुंवरी के चन्द्रवदन पर वार-वार कर हीरा, हाटक, हार आदि याचकों को दान दिए। रूप-राशि राधा का मुख देखकर सब मोद से नाच उठे :

कुंवरी परगटी गान गावत ढाढ़ी ढाडिन आए।
हीरा हाटक हार अमोलक रानीजू पहिराई।
बारि-बारि कुंवरी के मुख पर सबकों देत लुटाई ।।

इसी प्रकार दो-चार पदों में परमानन्ददास ने दशरथ के घर राम-जन्म की बधाई तथा राम के पलना झूलने की बाल-क्रीड़ा का वर्णन किया है। किन्तु ऐसे पदों में वात्सल्य रस की व्यंजना कम ही हुई है क्योंकि कवि का भक्ति-भाव अधिक स्पष्ट हो गया है।

परमानन्ददास ने वात्सल्य की वियोग-दशा का वर्णन नहीं किया। कुछ पदों में कृष्ण के मथुरागमन के समय माता यशोदा के हृदय की पुकार बहुत मार्मिक है। अक्रूर कृष्ण को मथुरा ले जाने के लिए आते हैं। माता का हृदय अत्याचारी कंस से आशंकित है, वह भला अपने लालन को कैसे मथुरा भेज दे! माता अक्रूर से विनति करती हैं कि कृष्ण मेरे प्राणाधार हैं, उन्हें यहीं रहने दो।

जब माता के रोकने पर भी कृष्ण के जाने का ही निश्चय होता है, तो माता अक्रूर के पांव पड़कर विनति करती है कि मेरे 'प्रान-अधार' कृष्ण को जल्दी ही वापस लाने की कृपा करना :

ब्रज जन देखे ही जीयत।
मेरे नैन चकोर सुधाकर हरि मुख दिष्टि पीयत ।।
तुम अक्रूर चले लै मधुवन मेरे प्रान अधार।
रामकृष्न गोकुल के लोचन सुन्दर नंद कुमार ।।
इतनी करी पाइ लागति हों बेगि घोष लै आवहु।
'परमानन्द स्वामी' हैं लरिका पांय लागि समुझावहु ।।

कृष्ण के प्रवास-जन्य वात्सल्य विरह का परमानन्ददास के पदों में अभाव है। प्रवास विरह का एकाध पद ही मिलता है। भवंरगीत-प्रसंग के निम्न पद में ब्रजवासियों तथा माता यशोदा की व्यथा का मार्मिक चित्रण हुआ है :

ब्रज के बिरही लोग बिचारे।
बिन गोपाल ठगे से ठाढ़े अति दुर्बल तन हारे ।।
मात जसोदा पंथ निहारत निरखत सांझ संवारे।
जो कोउ कान्ह कान्ह कहि बोलत अंखियन बहत पनारे ।।
यह मथुरा काजर की रेखा जो निकसे सो कारे।
'परमानन्द स्वामी' बिनु ऐसे जैसे चंदा बिनु तारे ।।

इस प्रकार वात्सल्य रस का—मुख्यत: उसके संयोग पक्ष का बहुत सुन्दर प्रकाशन 'परमानन्द सागर' में हुआ है। बाल-रूप, बाल-स्वभाव, बाल-क्रीड़ा एवं मातृ

हृदय का ममतापूर्ण उल्लास बड़े ही स्वाभाविक एवं मार्मिक रूप में चित्रित हुआ है।

(ख) शृंगार-वर्णन

अष्टकवियों में बाल-वर्णन और वात्सल्य-चित्रण तो मुख्यतः सूरदास और परमानन्ददास ने ही किया, किन्तु माधुर्य भाव की व्यंजना में शृंगार रस का चित्रण सभी अष्टछापी कवियों ने किया है। यद्यपि परमानन्ददास का शृंगार-चित्रण सूरदास और नंददास-जैसा विस्तृत, व्यापक और पूर्ण कलात्मक नहीं है, तथापि उसमें अलौकिक सम्बन्ध की स्पष्ट अभिव्यक्ति, पवित्रता और अनुभूति की स्वाभाविक मार्मिकता सूरदास-जैसी ही है और सूरदास-नंददास जैसी प्रसंगों की विविधता तथा संयोग-वियोग-अवस्थाओं की अनेकरूपता नहीं है, तथापि रूपासक्ति और विरह का पर्याप्त मार्मिक वर्णन पाया जाता है।

परमानन्ददास ने रूपासक्ति का अनेक पदों में वर्णन किया है। कृष्ण की बांकी चितवन, श्याम-शरीर, घुंघराली लट, पीतपट, मोरमुकुट, कंठमाल, ललित कपोल, बांसुरी-वादन आदि अनेक रूप-चेष्टाएँ गोपियों और राधा के हृदय में प्रेम-ठगौरी लगा देती हैं! साहचर्य-संभूत आकर्षण और प्रेम बढ़ता जाता है। गोचारण से आते हुए कृष्ण की यह रूप-माधुरी किसे मोहित नहीं करती :

> **वो मुख देख्यौ हो मोहि भावै।**
> **मदन गोपाल जगत कौ ठाकुर बनतैं जब घर आवै॥**
> **लोचनलोल नासिका सुन्दर कुण्डल ललित कपोल॥**
> **दसन कुंद बिम्बाधर राते मधु ते मीठे बोल॥**

आलम्बन कृष्ण के रूप का ऐसा और इससे भी अलंकृत वर्णन सूरदास ने अपने अनेक पदों में किया है। परमानन्ददास के एतत्सम्बन्धी दो-चार पद ही हैं। त्रिभंगीलाल की मुस्कान कितनी चित्ताकर्षक है, कामदेव भी इस रूप-राशि के आगे त्रास खाता है :

> **भलो है स्याम की मुसुकावनि।**
> **कर-पल्लव गहि त्रिभंग बेनु धरि मीठी है गावनि॥**

इस रूप-सागर का पान करने के लिए गोपियाँ व्याकुल रहती हैं।

रूपासक्ति के कारण गोपियाँ कृष्ण का मुख देखते रहना चाहती हैं। इस रूप-दर्शन से आँखों को जो आनन्द मिलता है, वह कहते नहीं बनता :

> **पिय मुख देखत ही पै रहिये॥**
> **नैंनन कौ सुख कहत न आवै जा कारण सब सहिये।**
> **हौं आसक्त भई या रूपै बड़े भाग तैं लहिये॥**

रूपासक्त ग्वालिनें उस मुखचन्द्र को देखकर तन-मन की सुधबुध खो बैठती हैं। पनघट पर पानी भरने जाती हैं, तो तट पर खड़ी कृष्ण को निहारती रहती हैं, जल भरने की सुध नहीं रहती, मार्ग में कृष्ण दिखाई दे जाते हैं तो घर का रास्ता भूल जाती हैं। दूध मथने वाली एक ग्वालिन कृष्ण को देखते ही किस प्रकार खो जाती है और तन-मन की सुध भुलाकर विपरीत व्यवहार करने लगती है, यह इन पंक्तियों में देखिए :

गुवालिनी ठाड़ीए मथति दह्यौ।
उलटि रई मथनिया टेढ़ी बिनहि नेत कर चंचल ॥

राधा भी मन-प्राणों से कृष्णासक्त है। एक दिन जमना नदी पर स्नान करने गई, सामने कृष्ण खड़े थे। राधा बाल सुखाने के बहाने वहां खड़ी रहती है और कृष्ण से मिलने के लिए व्याकुल हो जाती है :

राधा माधौ सों रति बाढ़ी।
चितवति तहाँ जहाँ नन्दनंदन सब तौ लियौ मन काढ़ी ॥

नैन-नैन मिलते ही मन उलझ गया। वन-मार्ग में गोपाल का स्वरूप देखकर बाला जकी-तकी और ठगी-सी रह गई। उसे घर का मार्ग ही नहीं सूझता, हरि और उसके मार्ग पर ही दृष्टि टिक गई।

आरम्भ में लोक-लाज का भय भी कुछ व्यवधान प्रतीत हुआ, इस लाज के कारण खुलकर कृष्ण-दर्शन और मिलन नहीं हो पाता था। पर जब कृष्ण के बिना रहा ही नहीं जाता तो लोक-वेद की कोई कहाँ तक परवाह करे! राधा सब की निन्दा सहती है। दृष्टि (दर्शन) से जो अनुराग उत्पन्न हो गया है, उससे राधा का मन ही हरा गया। अब कृष्ण के पीछे ही मन डोलता रहता है, मन, वचन और कर्म से जब और कोई गति ही नहीं रही तो लोक-वेद की लाज कहाँ तक रहती :

राधा माधव बिनु क्यों रहै।
एक स्याम सुन्दर के कारन और सबनि की निंदन सहै ॥

गोपियाँ अब लोक-लाज को तिलांजलि दे देती हैं, लागी भला कैसे छूटे ?

'परमानन्द' लागी ना टूटै लाज कुआँ मैं पटकौ।

यह अनुराग एकांगी नहीं है। लरिकाई को यह प्रेम दो-तरफा है। लड़कपन का पारस्परिक खेल अब छेड़-छाड़ में बदल गया है। कृष्ण गोपियों को पनघट, वन-मार्ग, सांकरी गली तथा कुंजों-निकुंजों में छेड़ने लगते हैं। ग्वालिनें दधि बेचने जाती हैं, तो उनसे दान माँगते हैं, दधि-भाजन फोड़ डालते हैं। 'दान-लीला' के पदों में परमानन्ददास ने कृष्ण की इसी छेड़-छाड़ तथा गोपी-कृष्ण-प्रेम की मार्मिकता प्रकट की है। गोरस बेचने को जाती हुई गोपियों को कृष्ण रोक लेते हैं और हाथ, आँचल पकड़कर दधि-दान माँगते हैं :

रंचक चाखन दै री वह्यौ।
अद्‌भुत स्वाद स्रवन सुनि मोपै नाहिन परत रह्‌यौ ॥

कभी गोपियाँ कृष्ण की त्रिभंग सूरत और नटवर वेश पर फ़िदा होती हैं तो कभी मुरली-ध्वनि से आकृष्ट होकर उस सुधा-सागर के पास दौड़ी जाती हैं। एक गोपी स्पष्ट स्वीकारती है कि मेरा मन मुरली की सुरीली तान ने पकड़ लिया है, मैं जकी-तकी रह गई। घर से जल-भरण के बहाने निकली थी कि इतने में गोचारण को जाते समय मोरमुकुटधारी कृष्ण दिखाई पड़े और उनकी मुरली-ध्वनि सुनाई दी :

जकि रही सुन मुरली की टेर।
इततैं हौं निकसी पानी मिस तबहिं भइ गाइन की बेर ॥
मोर चन्द्रिका धरे स्याम घन चपल नयन की हेर।
'परमानन्द प्रभु' मिलेरी खरिक मँह यातें भई अबेर ॥

परमानन्ददास ने कृष्ण की मुरली के प्रभाव-सम्बन्धी बीसियों सुन्दर पद रचे हैं। जैसे सूरदास ने राधा-कृष्ण-मिलन के कई छोटे-छोटे सरस प्रसंगों की उद्‌भावना की है, वैसे ही परमानन्ददास ने भी दो-चार मौलिक कल्पनाएँ की हैं। किशोरी राधा ने कृष्ण की मुरली छिपा ली। बाद में मुरली लौटाने के बहाने किशोरी कुंवर कान्ह के घर आई और कहने लगी कि मुझे यह मुरली वन में पाई है, कृष्ण ने बहाना बनाया, 'हा ! मुरली के साथ मेरी पोंची भी बंधी थी, वह कहाँ है ?' चतुर राधा ने कहा, 'मैंने तुम्हारी पोंची नहीं देखी, चलो तुम्हें वन में वह स्थान दिखा दूँ, जहाँ से मुरली मिली है, अपनी पोंची भी ढूँढ़ लेना।' दोनों एक ही प्रेम-चतुराई पढ़े थे, पुनः मिलन का अवसर पा लिया और माता यशोदा को झांसा दे डाला !

मैं हरि की मुरली बन पाई।
सुन जसुमति संग छाँड़ि आपनो कुंबर जगाय देन हौं आई ॥

परमानन्ददास ने राधा-कृष्ण और गोपी-कृष्ण-मिलन के अनेक चित्र प्रस्तुत किये हैं। कभी जल-क्रीड़ा, कभी रास-लीला, तो कभी होलि आदि उत्सवों पर यह मनोहर मिलन होता है।

होली के हुरदंग का क्या कहना ! कनक-पिचकारियों से प्रेम का रंग छिड़का जा रहा है। राधा-माधव परस्पर गुलाल मलते और अबीर उड़ाते हैं। गोपियाँ भी कृष्ण से मन-भाया करती हैं, कोई कृष्ण के फेंटे और शरीर को एक रंग में डुबोकर और कोई उनकी आँखें आंज कर भाग जाती है, कोई उनकी मुरली छीन लेती है, एक मोहन को मीठी गाली सुनाती है। एक ओर बसंत में वृन्दावन रंग-बिरंगे फूलों से खिला है और पिक-भौंर और कीर-मोर कलकूजन करते हैं,

दूसरी ओर होली के रंग से खिले कृष्ण और व्रजांगनाएं और उनकी आमोदमयी क्रीड़ाएँ हैं :

नंद कुंवर खेलत राधा संग यमुना पुलिन सरस रंग होरी।
नव घनश्याम मनोहर राजत श्याम सुभग तन दामिनी गोरी।।
केसरि के रंग कलस भरे बहु संग सखा हलधर की जोरी।
हाथन लिये कनक पिचकाई छिरकी ब्रज की नवल किसोरी।।

परमानन्ददास ने कई पदों में रास-लीला या रास-मिलन का भी सुन्दर वर्णन किया है। जब कृष्ण ने 'कर गहि अधर धरी मुरली' तो ब्रजबालाएँ घर-वार छोड़कर 'हा हरि' 'हा हरि !' कहती हुई कृष्ण के पास पहुँच गईं।

रास का महानृत्यायोजन होता है। इस नृत्य का क्या कहना ! शरद्-शर्वरी में राधा-कृष्ण और गोपी-कृष्ण का यह महामिलन अद्भुत है !

ब्रज बनिता मधि रसिक राधिका बनी सरद की राति हो।
निरतत ततथेई गिरधर नागर गौर स्याम अंग कांति हो।।

यद्यपि परमानन्ददास का यह रासलीला-वर्णन नन्ददास की 'रासपंचाध्यायी'-जैसा पूर्ण कथात्मक एवं वैसा सजीव प्रभावकारी नहीं बन सका है तथापि कुछ पदों में पर्याप्त मार्मिकता है।

कृष्णानुरागी इन अष्टछापी कवियों ने राधा आदि गोपियों के मान का वर्णन भी किया है। काव्य-शास्त्र में मान विरह-पक्ष माना जाता है, पर यह क्षणिक मान वास्तव में संयोग को तीव्र करने का ही हेतु बनता है, अतः राधा के क्षणिक मान को संयोग का ही हेतु समझना चाहिए। मानिनी राधा को दूती या सखी कहती है : राधा, चल तुझे श्याम बुला रहा है, मान छोड़ दे। देख, वह वंशी की धुन में तेरा ही नाम गा रहा है; यह मदमाती रुत मान का नहीं, मिलन का आह्वान कर रही है :

चलि राधे तोहि स्याम बुलावै।
वह सुनि देखि बैनु मधुरे सुर तेरो नाम हि लै लै गावै।।
देखौ वृन्दावन की शोभा ठौर-ठौर द्रुम फूलें।
कोकिल नाद सुनत मन आनन्द मिथुन बिहंगम झूलें।।
उन्मद जोबन मदन कुलाहल यह औसर है नीको।
'परमानन्द प्रभु' प्रथम समागम मिल्यो भावतो जीको।।

प्रकृति का यह उद्दीपनकारी रूप परमानन्ददास के पदों में यद्यपि बहुत कम प्रकट हुआ है; नंददास ने तो इस दिशा में बारहमासा और षड्ऋतु वर्णन करके कमाल ही किया है, सूरदास ने भी प्रकृति के अनेक उद्दीपक चित्र अपने पदों में प्रकट किए हैं, और इस दृष्टि से परमानन्ददास बहुत पिछड़े हुए हैं, तथापि फुटकर रूप में उन्होंने भी कहीं-कहीं वृन्दावन की मादक शोभा का वर्णन किया है।

भला जब 'नाच नच्यो तब घूंघट कैसो। लोक लाज डर पटकि पछोर्यो।

गोपियां कृष्णप्रेम में इतनी तल्लीन रहती हैं कि घर के काम-काजों में भी उन्हें कृष्ण का ध्यान रहता है। दधि बेचने जाती हैं तो भाव में खोई बहुधा दधि का नाम भूलकर गोपाल नाम ही पुकारने लगती हैं।

यद्यपि परमानन्ददास ने शास्त्रीय आधार पर शृंगार का क्रमिक लक्षणगत सांगोपांग चित्रण नहीं किया, तथापि उनके शृंगार-वर्णन में स्वतः ही संयोग-वियोगात्मक शृंगार के अनेक पक्ष अकृत्रिम रूप में प्रकट हो गए हैं। गोपियों के हर्ष, उल्लास, आशा, उत्कंठा, चिन्ता, निराशा, पश्चात्ताप, आत्मनिवेदन, विनय, खीझ, रीझ आदि अनेक संचारी भावों का चित्रण हुआ है। उनकी प्रेमगत अनेक स्थितियों और दशाओं का वर्णन परमानन्ददास के पदों में पाया जाता है। मुस्कान, कंप, रोमांच, अश्रु, जड़ता आदि सात्त्विक अनुभाव भी सभी प्रकट हुए हैं। शृंगार-रस में प्रेमिकाओं की भिन्न-भिन्न दशाओं के कारण नायिका-भेद भी शृंगार-शास्त्र का विषय बना हुआ है। परमानन्ददास के पदों में वासकसज्जा, अभिसारिका, संभोगहर्षिता, खण्डिता, मानिनी आदि नायिका-रूप स्वतः ही प्रकट हुए हैं। संयोग-वर्णन में परमानन्ददास ने सुरत-क्रीड़ा-जैसे मर्यादाहीन वर्णन करने में भी संकोच नहीं किया। सुरतान्त के ऐसे वर्णनों में इनकी आध्यात्मिकता बिल्कुल खण्डित हो जाती है।

राधा-कृष्ण का साहचर्य का प्रेम विवाह-बंधन में पुष्ट होता है। कृष्ण दुल्हा बनता है और वृषभानु-नंदिनी दुलहिन बनकर आती है :

सजनी री गावो मंगलचार।
चिरजीवो वृषभानु नन्दिनी दुल्है नंदकुमार॥
मोहन के सिर मुकुट विराजत राधा के उर हार।
भामर लेत प्रिया और प्रीतम तन-मन दीजै वार।
यह जोरी अविचल स्री वृन्दावन क्रीडत करत विहार॥

राधा-कृष्ण की यह जोड़ी कितनी भव्य है, एक करिनी है तो दूसरा मत्त गज; राधा मालति है तो कृष्ण भोगी भँवर, वह रसिकनि है, तो वे रसिक-शिरोमणि। यदि राधा ग्वालिन है तो कृष्ण माखनचोर; राधा गौरवर्ण है तो कृष्ण स्याम शरीर : यह प्रीति का प्रेम से संयोग है :

साँची प्रीति भई इक ठौर।
मृगनैनी कमलदल लोचन, लाल स्याम राधा तन गौर॥

फागुन में होरी और सावन के महीने में हिंडोरा भूलना भी ब्रज-प्रेम का प्रिय विषय रहा है। राधा-कृष्ण और ब्रजबालाएँ झूला झूलते हैं, प्रकृति भी उनके गीत-संगीत और नृत्योल्लास में स्वर-ताल दे रही है:

हिंडोरे झूलैं गिरबरधारी।
जमुना की तट परम मनोहर संग राधिका प्यारी ।।
झूलन आई सकल ब्रज सुन्दरि षटदस भूषन सारी।
नाचत गावत करत कुलाहल देत परस्पर तारी ।।

विरह पक्ष—लगभग साठ पदों में परमानन्ददास ने गोपी-विरह का सुन्दर वर्णन किया है। यद्यपि उनका वियोगपक्ष संयोग-पक्ष की अपेक्षा न्यून है, तथापि उसमें मार्मिकता वहुत है। कृष्ण-विरह का पूर्वराग-रूप में वर्णन भी परमानन्ददास ने खूब किया है, पर उसमें अधिकतर रूप-लिप्सा और रूप-आसक्ति की भावना प्रबल होने से हमने उसे पीछे संयोग में ही प्रस्तुत किया है। वास्तव में वह संयोग की ही भूमिका अदा करता है। इसी प्रकार क्षणिक मान या कृष्ण का थोड़ी देर के लिए अन्तर्धान हो जाना या पलक-ओट होना भी संयोग को ही तीव्र करता है। अक्रूर कृष्ण को मथुरा ले जाते हैं। कृष्ण-गमन के इस अवसर पर गोपियाँ बिछोह की वेदना से व्याकुल हो उठती हैं।

कृष्ण के वियोग में गोपियाँ कभी पूर्व-स्मृतियों में डूब जाती हैं, कभी कृष्ण को उपालंभ देती हैं, कभी अपने ऊपर खीझती हैं। उनकी दशा अत्यन्त विषम हो जाती है, शरीर विरह के अश्रुजल से गल जाता है, आँखों में काजर लगाना अब नहीं सुहाता, रातों की नींदें हराम हो गई हैं, उन्हें अब खाना-पीना, पहनना-ओढ़ना कुछ नहीं सुहाता। "पूंजी खोई-सी" अकिंचन हो गई हैं। जब से श्याम गए हैं, वे वन-उपवन, घाट-हाट-पर्वत—जहाँ-जहाँ कृष्ण खेलते और उनसे क्रीड़ा करते थे, तहाँ-तहाँ उन्हें ढूंढती फिरती हैं, उन्हें पुरानी यादें सताती हैं।

उनके नयनों से नदी बहती है, विरह-"ताप से वे तई" रहती हैं। उनकी रसना अहर्निस कान्ह-कान्ह रटती रहती है, वे—"हिरनी ज्यौं जोवत मग उरध लेत ऊसास"—प्रतीक्षारत रहती हैं। वे कृष्ण को उपालंभ देती हैं, "जाकर खबर ही नहीं ली, मथुरा कितनी दूर है! उन्होंने तो इस निकट स्थान को भी विदेश बना दिया। क्या कागज और मसि सब नष्ट हो गई, जो एक संदेसा तक नहीं भेजा? यह अनोखा प्रेम नया ही है:

माधौ तैं प्रीति भई नयी।
कितनी दूर यह मथुरा ते निकटहि कियो बिदेस ।।
कागद मसि खूटि गई पठयौ न एक सन्देस ।।

पपीहे की पुकार और सावन की वर्षा-बौछार अत्यन्त उद्दीपनकारी प्रभाव डालती है। रात की नींद सपना हो गई, चिंता बढ़ गई, श्याम की याद दुगना सताने लगी, घन-गरजन और 'दामिनी-दमकन' ने प्राण उड़ा दिये। राग मलार में किसी का मुरली-वादन तो मूर्च्छा ही दे गया:

रात पपीहा बोल्यो री माई।
नींद गई, चिंता चित्त बाढ़ी, सुरति श्याम की आई।।
सामन मास देखि बरखा रितु हो उठि आंगन आई।
गरजत गगन दामिनी दमकत तामें जीउ उड़ाई।।
राग मलार कियो जब काहू मुरली मधुर बजाई।
बिरहिन बिकल 'दास परमानन्द' घरनि परी मुरझाई।।

(ग) भक्ति-भावना

सूरदास और परमानन्ददास के काव्य में भगवद्भक्ति की जैसी स्पष्ट एवं पवित्र अभिव्यंजना हुई है, वैसी नन्ददास के काव्य में नहीं। सूरदास की तरह परमानन्ददास ने भी विनय भाव की नवधा भक्ति भी प्रस्तुत की है। उनकी विनय-भक्ति भी पुष्टि-भक्ति के अनुसार कृष्ण-लीला तथा ब्रजविहारी कृष्ण के गुणगान-रूप में प्रकट हुई है। अपने अराध्यदेव गोपीबल्लभ कृष्ण से भक्त यही याचना करता है कि मुझे मनुष्य-जन्म, ब्रजवास और हरिसेवा सदा सुलभ रहे। कवि अपने गुरु बल्लभ-कुल और अन्य वैष्णवों का दास बने रहने की कामना करता है। कृष्ण की क्रीड़ा-स्थली यमुना में स्नान और कृष्ण-गुणगान का अवसर ही वह चाहता है। परमानन्ददास की वैष्णवी पुष्टि-भक्ति का इस पद से पूर्ण परिचय मिल जाता है:

यह मांगौं गोपीजन बल्लभ।
मानुष जन्म और हरि सेवा ब्रज बसिवो दीजै मोहि सुल्लभ।।
स्री बल्लभकुल को होहूँ चेरो वैष्नवजन को दास कहाऊँ।
स्री जमना जल नित प्रति न्हाउँ मन क्रम वचन कृष्ण गुन गाऊँ।।
स्री भागवत स्रवन सुनि नित इन तजि चित कहूँ अनत न लाऊँ।
'परमानन्ददास' यह मांगत नित निरखौं कबहूँ न अघाऊँ।।

भजन-महिमा—-भगवान् के महात्म्य का परमानन्ददास ने कई पदों में गान किया है। हरि के भजन में ही सब बात है, ज्ञान, कर्म-जैसे कठिन साधनों से कौन शरीर को दुख दे, भवसागर से पार जाने का सरल उपाय हरि-भजन ही है:

हरि के भजन में सब बात।
ग्यान करम सौं कठिन करि कत देत हौ दुख गात।।

नवधा भक्ति के श्रवण, कीर्तन, सुमरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य भाव, सख्यभाव, आत्मनिवेदन—सभी नौ अंग परमानन्ददास की विनय-भक्ति में पाये जाते हैं। भक्त ने इन सब अंगों को कृष्णाश्रयी बना दिया है। कृष्ण के साथ ही कवि ने राधा-स्वामिन को भी अपनी आराध्यादेवी बनाया है। इसी से चरन कमल बन्दौं जगदीश के जे गोधन संग धाए' के रूप में हरि-चरण-वंदना करने के साथ-साथ राधा की चरण-वंदना करता हुआ कवि कहता है:

धनि यह राधिका के चरन।
हैं सुभग सीतल अति सुकोमल कमल के से बरन ।।
रसिक लाल मन मोदकारी बिरह सागर तरन ।।
बिबस 'परमानंद' छिन-छिन स्याम जाकी सरन ।।

राधा की महिमा को समझकर भक्तवर परमानन्ददास युगल का उपासक बन गया। आत्मसमर्पणकारी कीर्तन-भक्ति का निम्न प्रसिद्ध पद 'परमानन्द सागर' में देखकर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। भक्तों को कई बार भगवान् की आरती गाते हुए यह पद मैंने सुना था, पर यह ख्याल नहीं था कि यह पद अष्टछापी परमानन्ददास का ही रचा हुआ है, युगलोपासना और कीर्तन भक्ति का यह सुन्दर उदाहरण है :

आरति जुगल किसोर कि कीजै। तन मन धन न्यौछावर दीजै ।।
गौरस्याम मुख निरखत जीजै। प्रेम स्वरूप नैन भर पीजै ।।
रबि ससि कोटि बदन की सोभा। ताहि देखत मेरो मन लोभा ।।
फूलन की सेज फूलन गलमाला। रतन सिंहासन बैठे नंदलाला ।।
मोर मुकुट कर मुरली सोहै। नटवर भेस निरख मन मोहै ।।
ओढ़े नील पीत पट सारी। कुंजन ललना लाल बिहारी ।।
स्त्री पुरुषोत्तम गिरिवरधारी। 'परमानन्द स्वामी' अविचल जोरी ।।

ब्रजमहिमा—कवि राधा-कृष्ण के लीला-धाम की महिमा गाते भी नहीं अघाता। ब्रज, ग्वाल-बाल, गाय, यमुना, गोकुल के कुंज-निकुंज, कदम्ब की छाया की तुलना में वह बैकुण्ठ को भी तुच्छ समझता है :

कहा करूँ बैकुंठहि जाय।
जहाँ नहिं नन्द जहाँ जसोदा नहिं गोपी ग्वाल नहिं गाय ।।
जहँ न जल जमुना को निरमल और नहिं कदमन की छाय।
'परमानन्द प्रभु' चतुर ग्वालिनी ब्रजराज तजि मेरी जाय बलाय ।।

इस प्रेम-भक्ति का आदर्श ब्रज की गोपियाँ हैं। भला उनकी बराबरी कौन कर सकता है ? ऊधो-जैसे ज्ञानी-ध्यानी को भी उनकी चरण-रज सीस धरनी पड़ी थी :

गोपिन की सरबर कौन करै।
जिनके चरन कमल रज पावन ऊधौ सीस धरै।

पुष्टिभक्त परमानन्ददास ने इसी से अपनी समस्त भक्ति-भावना हरि-लीला-गान के रूप में व्यक्त की है। कृष्ण-जन्म से लेकर कंसवध तक कृष्ण की सभी अवतारी लीलाओं को कवि ने पूरी तन्मयता के साथ गाया है। वह महिमावान् ब्रह्म ही विष्णु का अवतार बनकर कृष्ण नाम से नंद के घर अवतरित हुआ है। परमानन्ददास का वह ठाकुर वसुधा का भार उतारने के लिए ही नन्द के यहाँ प्रकट हुआ है।

कृष्ण की विविध लीलाओं में परमानन्ददास ने अपनी भक्ति के सभी रूप—सख्य, वात्सल्य, माधुर्य आदि—प्रकट किए हैं। **वात्सल्य भाव** का उदाहरण ऊखल-बंधन के निम्न पद में देखिए :

गोविन्द बार-बार मुख जोवै।
कमलनयन हरि हिलकनि रोवत बंधन छोड़ि यह सोवै।।

यद्यपि परमानन्ददास ने भगवान् के शक्तिशील का भी बखान किया है, पर मुख्यत: उनकी प्रेम-पद्धति और भक्ति आसक्तिमूला है। इस आसक्ति में रूपासक्ति की प्रधानता है। वात्सल्य और माधुर्य भाव की भक्ति **रूपासक्ति-प्रधान** हैं।

माधुर्य भाव के अन्तर्गत प्रेम-ठगौरी का आधार ही कृष्ण की रूपमाधुरी है। उस सुन्दर मुख, बांकी चितवन, मोर मुकुट, मुरलीधारी त्रिभंगी श्याम पर गोपियां सर्वस्व न्यौछावर कर डालती हैं, उस रूप-सागर ने उनका मन हर लिया है :

मेरो मन हर्यो दुहुं ओर।
सुन्दर बदन मुकुट की शोभा स्रवनन मुरली घोर।।

नित्यसेवा—परमानन्ददास की भक्ति में नित्यसेवा तथा कृष्ण की वर्षोत्सव और नित्यलीलाओं एवं सेवाओं का भी प्रकाशन हुआ है। नित्यसेवा के अन्तर्गत गुरुवंदना, यमुना-गंगा-महिमा-गान, मंगला आरती, प्रातः जागरण, कलेऊ, शृंगार गोचारण आदि कृष्ण की नित्यसेवाओं का वर्णन हुआ है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होगा कि परमानन्ददास ने पुष्टि-भक्ति का पूर्ण निर्वाह किया है। उनका समस्त काव्य कृष्ण-लीला-गान के रूप में व्यक्त हुआ है। पुष्टिभक्ति की प्रायः समस्त सेवा-विधि तथा लीलागान उनके पदों में प्रकट हुई हैं। नवधा भक्ति के श्रवण, कीर्तन आदि नौ अंग भी उन्होंने अपनी पुष्टिभक्ति के अनुकूल बना लिए थे। इसी प्रकार नारद-भक्ति-सूत्र के अन्तर्गत प्रेमभक्ति की जो आसक्तियां बताई गई हैं, वे भी परमानन्ददास की पुष्टिभक्ति में स्वतः ही सम्मिलित हैं। (1) गुणमहात्म्यासक्ति कृष्ण के गुणगान-रूप प्रेम-प्रकटीकरण में, (2) रूपासक्ति कृष्ण की रूप-माधुरी पर आसक्त हुई गोपियों तथा माता यशोदा आदि की भाव-व्यंजना में, (3) पूजासक्ति कृष्ण की अर्चना-पूजा में, (4) स्मरणासक्ति रासलीला तथा विरह-वर्णन के अनेक पदों में गोपियों के प्रिय-स्मरण में, (5) दास्यासक्ति कृष्ण के प्रति दास-भाव की व्यंजना में प्रकट हुई है, इनके उदाहरण हम ऊपर नवधा भक्ति के उदाहरणों में प्रस्तुत कर चुके हैं। इसी प्रकार (6) सख्यासक्ति सख्यभाव के उदाहरण में (7) कान्तासक्ति माधुर्यभाव के उदाहरण में, और (8) वात्सल्यासक्ति वात्सल्य भाव के उदाहरण में देखी जा सकती हैं। (9) निवेदनासक्ति नवधा भक्ति के आत्मनिवेदन में, तथा (10)

तन्मयासक्ति, और (11) परमविरहासक्ति माधुर्य भाव की तन्मयता और विरहावस्था में प्रकट हुई है। निस्सन्देह परमानन्ददास एक परम भक्त थे। उन्होंने भक्ति के सहज सरल, स्वाभाविक और व्यावहारिक रूप को ही अपनाया। न तो वे साधनों के विधि-निषेध-सम्बन्धी विवेचन में पड़े और न ही दार्शनिक ऊहापोह से ही उन्हें कोई मतलब था। निश्छल हृदय से अपने आराध्य भगवान कृष्ण की लीलाओं का भक्तिपूर्ण गान ही उनका परम लक्ष्य था। 'गोपी भाव' वाली रागानुगा लीलाभक्ति के परम साधक होते हुए भी परमानन्ददास ने वैष्णवी नवधा भक्ति का सम्मान किया और उसे अपनी लीला-भक्ति का ही अंग बना लिया। कृष्णाराधक होते हुए भी उन्होंने राधाबल्लभीय सम्प्रदाय के अनुसार राधास्वामिनी का महत्त्व भी स्वीकार किया है। साथ ही विष्णु के अन्य अवतारों—राम, नृसिंह, वामन आदि के प्रति भी अपना भक्ति-भाव व्यंजित किया है। वैष्णवी प्रपत्ति का भी पूर्ण समावेश उनकी भक्ति-भावना में हुआ है और उदार वैष्णव भक्तों की भाँति उन्होंने गंगा, यमुना, ब्रज आदि भगवद्धामों की महिमा भी गाई है।

(घ) अन्य रस-भाव

परमानन्ददास के काव्य में ऊपर विवेचित तीन रस-भावों—वात्सल्य, शृंगार और भक्ति रस की ही प्रधानता है। इन तीनों का ही त्रिवेणी-संगम उनके पदों में मिलता है। केवल दो-चार पदों में अपवादस्वरूप प्रसंगवश वीररस, बीभत्सरस, अद्‌भुत रस आदि कुछ अन्य रसों के भी एक-एक, दो-दो उदाहरण मिल जाते हैं। कंस-दमन में कृष्ण की वीरता का दो-तीन पदों में ओजपूर्ण प्रकाशन हुआ है।

परमानन्ददास की भाषा-शैली—कलापक्ष

अलंकार-योजना—यद्यपि परमानन्ददास का काव्य एक ऐसे भावुक भक्त-कवि का कीर्तनपद-काव्य है जिसे अपनी अभिव्यक्ति को स्वर, लय पर साधने की सुध तो होती है, किन्तु आलंकारिक साज-सज्जा या चमत्कार-प्रदर्शन का अवकाश नहीं होता, तथापि परमानन्ददास के काव्य में संगीत-माधुर्य के साथ-साथ स्वाभाविक अलंकरण भी कहीं-कहीं भावोत्कर्ष में पर्याप्त सहायक दृष्टिगोचर होता है। परमानन्ददास ने सूरदास की भाँति दृष्टकूट पदों की चमत्कारपूर्ण रचना तो कहाँ सामान्य रूप से भी सूर की अपेक्षा बहुत कम अलंकार-योजना की है। वे सरल भावाभिव्यक्ति के ही कवि हैं। उन्होंने अपनी भक्ति-भावना में भी शृंगार-सज्जा की बजाय सादगी को अधिक महत्त्वपूर्ण माना है :

काहे री ग्वालिन सिंगार बनावै। सादिए बात गोपालहिं भावै॥
एक प्रीति तें सब गुन नीके। बिनु गुन अभरन सब ही फीके॥

अपने कवित्व-साधन में भी परमानन्ददास ने सादगी के इस सिद्धान्त को अपनाया है। उनके बहुत-से पद अलंकार-चमत्कार से शून्य ही हैं। जिन पदों में रूपक, उत्प्रेक्षा, उपमा आदि कुछ गिने-चुने अलंकार प्रकट भी हुए हैं, वे बड़े ही स्वाभाविक और अधिकांशत: परम्परायुक्त रूप में ही प्रकट हुए हैं, और हैं भी बहुत कम—प्राय: एक पद में एक ही अलंकार। परमानन्ददास ने न तो सूर की तरह लम्बे सांगरूपकों, मालोपमाओं एवं उत्प्रेक्षाओं की झड़ी लगाई है, न नन्ददास की तरह अलंकारों का बहुरूपी चमत्कारपूर्ण प्रयोग एवं शब्द-सज्जा ही की है। फिर भी उनके पर्याप्त पदों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि सादृश्यमूलक अलंकार स्वत: ही स्वाभाविक रूप में प्रयुक्त हो गए हैं। कहीं भी तो ऐसा आभास नहीं मिलता कि कवि ने इनका सायास प्रयोग किया है।

जैसाकि होता है, सादृश्यमूलक अलंकारों में रूपक, उत्प्रेक्षा और उपमा का सर्वाधिक प्रयोग किया गया है। परमानन्ददास की उपमान-योजना अधिकतर परम्परागत ही है, किन्तु उन्होंने परम्परागत सुरुचिपूर्ण और सौंदर्य-वर्द्धक उपमान ही मुख्यत: अपनाये हैं। **उपमाओं के कुछ उदाहरण देखिए :**

''मेरो माई माधौ सौं मन लाग्यौ।
अब क्यौं भिन्न होय मेरी सजनी मिल्यौ दूध अस पान्यो॥''

रूपक व उपमा : **स्याम तमाल लाल उर लपटी कनक लता-सी आढ़ी॥**

रूपक व उपमा का सम्मिलित प्रयोग परमानन्ददास ने अनेक स्थानों पर किया है : **'परमानन्द प्रभु' प्रेम समुद्र में ज्यों जलधर की बूंद समानी॥**

सुन्दर उपमाएँ : **''मैं तन की ऐसी गति देखी कमलनि हेम हई।''**
''परमानन्द स्वामी' को मिलिकैं मित्र उदै जैसे कंवल कली।

वाक्यार्थोपमा : **'परमानन्द प्रभु' पीर प्रेम की काहू सों नहिं कहिए।**
जैसे व्यथा मूक बालक की अपने तन मन सहिए॥
तुम्हरौ रूप तजि और न भावै चरनकमल चित बांध्यौ।
'परमानन्द प्रभु' द्रौनबान ज्यौं बहुरि न दूजो सांध्यौ॥

कृष्ण के विरह में गोपियों ने 'घर ही में बन' कर लिया, वे ऐसे बसत हैं **घर में जैसे रहत बटाऊ।**

अनन्वय में उपमा का एक उदाहरण देखिए। कवि राधा-कृष्ण की जोड़ी के बारे में कहता है कि उनके लिए उपमा क्या दी जाय! इतना लावण्य या तो हरि में ही है या उस मृगलोचनी (राधा) में है। राधा का कृष्ण की ओर दृष्टिपात कामदेव के पुष्पसर-मोचन के समान है :

उपमा कहा देन को लाइक कै हरि कै वाही मृगलोचनि।
'परमानन्द प्रभु' प्रान बल्लभ चितवनि चारु काम सरमोचन॥

मालोपमा का एक परम्पराभुक्त प्रयोग इस पद में देखिए :

सहज प्रीति गोपालै भावै ।
सहज प्रीति कमल भौंर मानै सहज प्रीति कमोदिनी चंद ।।
सहज प्रीति कोकिला बंस ते सहज प्रीति राधा नन्द-नन्द ।।
सहज प्रीति चातक और स्वाँति सहज धरनी जल धारै ।
मन क्रम बचन दास परमानन्द, सहज प्रीति कृष्ण अवतारै ।।

'बिधु बदनी, मृगनयनी राधा' में लुप्तोपमा परम्परागत प्रयोग है ।

सांगरूपक की योजना एकाध स्थान पर ही दिखाई देती है । निम्न पद में कृष्णरूपी मत्तगज के राधा के नयन-कटाच्छ की कोर से बिंधने, प्रेमरूपी जंजीर और भौंह-बिलास-रूपी पाश से बँधने के वर्णन में सांग रूपक देखिए, प्रथम पंक्ति में विरोधाभास का स्वाभाविक चमत्कार भी है :

विरोधाभास : **री अबला तेरे बलहिं न और ।**
सांग रूपक : **बीधे मदन गोपाल महागज कुटिल कटाच्छ नयन की कोर ।।**
जमुना तीर तमाल लतावन फिरत निरंकुश नन्द किशोर ।।
भौंह बिलास पास बस कीने मोहन अगह गहे ते जोर ।।
ले राखे कुछ बीच निरन्तर प्रेम-शृंखला सुदृढ़ की डोर ।।

उपमा तथा निरंगरूपक : **'देखि कमल-मुख स्याम सुन्दर को नैनाँउ भए भौंर री ।'**
परम्परित रूपक : **'मेरे नैन चकोर सुधाकर हरि मुख दिष्टि पीयत ।'**
व्यस्त रूपक : **'राम कृष्न गोकुल के लोचन सुन्दर नन्द कुमार ।'**
सुन्दर सांगरूपक : **'कंस-तुषार त्रास तन दुर्बल,**
नलिन देवकी दुःख निवारन ।
जदुकुल-कमल दिवाकर प्रमुदित,
तिमिर हरन प्रभु त्रिभुवन तारन ।।

उपर्युक्त सांगरूपक-योजना में सादृश्य के साथ-साथ प्रभाव-साम्य की कैसी छटा है ! कंसरूपी तुषार में प्रभावसाम्य सुन्दर है ।

रूपक व उपमा : **दानव सेन-समुद्र बढ्यो है, सो अगस्त ज्यौं पीजै ।**
सुन्दर रूपक : **''गोबिन्द बीच दै सर मारी ।**
उर तन-कुटी बिरह-दावानल फूंकि-फूंकि सब जारी ।।
उत्प्रेक्षाएँ : **'बदन छबि मानो चंद बियो ।'**
'कुंचित अधर पीत रज मंडित, तन भँवरनि की पाँति ।
कमल कोस मेंते ढिग बैठे पाण्डुर बरन सुजाति ।।''

त्रिभंगी कृष्ण के मस्तक पर चन्दन के टेढ़े तिलक की शोभा है मानो अर्द्धचन्द्र मेघ-मंडल में से निकल रहा हो :

मनो दुतिया दिन उदित अर्ध ससि निकसि जलद में देत दिखाई ।

कृष्ण के मुखमंडल-कपोलों और मणिमय कुंडल की परस्पर झलक ऐसी प्रतीत होती है मानो जल-तरंगों में मीन और बिधु-प्रतिबिम्ब मिलकर विहार कर रहे हों :

अद्भुत मनि कुंडल कपोल मुख अद्भुत उठत परस्पर झाईं।
मानौं विधु मीन बिहार करत दोऊ जल तरंग में चलि-चलि आई ॥

गोपाल के विशाल कमल-लोचनों में काजल की रेख ऐसी सुशोभित है मानो भौंरा गोलक के वेष में मकरन्द रस का पान कर रहा है; निम्न पद में उत्प्रेक्षाओं की झड़ी-सी लग गई है :

अति बिसाल बारिज लोचन पट राजत काजर रेख री।
रच्छा दै मकरंद लेत मनों अलि गोलक वेष री ॥

दूध की जगमगाती दतियाँ ऐसी प्रतीत होती हैं मानों महातम-मंदिर में रत्नों की ज्योति चमक रही हो :

राजत द्वै द्वै दूध की दतियाँ जगमग-जगमग होत री।
मनो महातम मंदिर में परी रतनन की जोत री ॥

कृष्ण के तुतराय बोल सुनकर कान तृप्त हो जाते हैं मानों कुमुदिनी पूर्णचन्द्र को पाकर धन्य-धन्य हो गई हो :

स्रवनन उत्कण्ठा रहत सदाई जब बोलत बोल तुतराय री।
मानौं कुमुदिनी कामना पूजी पूरन चन्द्रहि पाय री ॥

प्रभाव-साम्य से युक्त उत्प्रेक्षा का एक और उदाहरण इन पंक्तियों में देखिए। कृष्ण के दर्शन से अनुराग ऐसा हो गया मानो रंक को खजाना मिल गया हो :

हरिसों एकरस प्रीति रही री।
प्रथम भयो अनुराग दिष्टि तें मानौं रंक निधि लूट लई री।

कृष्ण के मुख पर श्रम की बूंदें मानों कमल-पत्र पर मोती हों :

कुंचित केस सुदेस बदन पर बीच-बीच जल बूंद रहै।
मानो कमल पत्र पर मोती खंजन निकट सलील गहै।
गोपी नैन भृंग रस लंपट उड़ि-उड़ि परत बदन माँहीं।

बाल-वृन्द में कृष्ण ऐसे शोभा दे रहे हैं मानो नक्षत्रगण में पूर्णचन्द्र हों—

बालक वृन्द नच्छत्र माल मँह मानहुं पूरन चन्द ॥

व्यतिरेक (क) झूलत नवल किसोर किसोरी
नीलाम्बर पीताम्बर फरकत उपमा घन दामिनी छबि थोरी ॥

(ख) विमल जस वृन्दावन के चंद को।
कहा प्रकास सोभ सूरज को जैसो मेरे गोविन्द को ॥

प्रतीप : नूपुर मधुप अलक लट छूटी मधुर चाल मद गजहि लजावै।

विषम : तब की प्रीति अब की रुखाई फिरि पाछे बूझत नहिं बात।

निदर्शना : **प्रीति तौ काहू सौं नहिं कीजै।**

'परमानन्द प्रभु' जानि बूझि कै कहोकि विषजल क्यों पीजै ॥

प्रेम करना जानबूझ कर विष-पान करने के समान है !

अतिशयोक्ति व रूपक :

अमृत निचोय कियो एक ठौर।

तुम्हारे बदन सुधारि सुधाम्बुधि तबतें बिधना रची न और ॥

सुन राधे उपमा कहा दीजै स्याम मनोहर भयो री चकोर ॥

रूपक-रूपकातिशयोक्ति :

'परमानन्द प्रभु' पारस परस ते कनक लोह नहीं खोट' ॥

उल्लेख : **'साँची प्रीति भई इक ठौर।**

मृगनयनी कमल दल मोचन लाल स्याम राधा तन गौर ॥

तुम रसिकिनि वे रसिक सिरोमनि तुम ग्वालिन वे माखन-चोर ॥

तुम करिनी वे गज बल नायक तुम मालति वे भोगी भौंर ॥'

विभावना : **बिन गुन चाप मदनसर मोचन।**

दो-चार अनूठे मूर्त्त-अमूर्त्त उपमान-प्रयोग भी द्रष्टव्य हैं : वैसे मूर्त्त-अमूर्त्त उपमान-योजना उनके काव्य में विरल ही है—

अमूर्त-मूर्त उपमा : **यह जोवन अंजलि को जल ज्यों जब गुपालु माँगै तब दीजै ॥**

दिन-दिन घटे रैनहिं सुन्दरि, जैसे कला चंद की छीजै ॥

'अंजलि के जल ज्यों' में दोहरा अर्थ कितना मार्मिक बन पड़ा है। दूति कहती है कि यौवन अंजलि के जल की तरह क्षण भर में ही ढरक जाने वाला है, इसे जल-अंजलि की तरह सदा गोपाल को समर्पित करना चाहिए। मूर्त्त की मूर्त्तोपमा का प्रभाव-साम्य इस योजना में देखिए : चन्द्रावली के नयन कृष्ण के नयनों से ऐसे मिल गए, जैसे गुड़ में चींटी मिलती हैं :

'परमानन्द' ऐसी मिलि जैसे गुड़ में चेंट।

मूर्त्त-मूर्त्तोपमा के अनूठे प्रयोग का एक उदाहरण देखिए। श्याम के पीछे खड़ी राधा ऐसे शोभित है जैसे बादल में बिजली छिपी हो :

घन में छिप रही ज्यों दामिनी।

नंद कुंवर के पाछे ढाड़ी सोहत राधा भामिनी ॥

परमानन्ददास ने शब्द अलंकारों में केवल अनुप्रास और वीप्सा का ही प्रयोग किया है। वैसे तो श्रुतिमधुर ब्रज भाषा सानुप्रासिक ही है और यह समस्त ब्रज भाषा-काव्य की सामान्य विशेषता है, तथापि कीर्तन-कवियों ने सरस और संगीतमय उच्चारण का विशेष ध्यान रखा है। परमानन्ददास के पदों में नाद-सौन्दर्य सर्वत्र दिखाई देता है, इसी से पंक्ति-पंक्ति में अनुप्रास की छटा पाई जाती है। कुछ उदाहरण देखिए :

(क) 'चितवनि चारु चतुर चिंतामनि मदु मधु माधो बैना।'

(ख) 'बृन्दा विपिन तरनि तनया तट चलि व्रजनाथ आलिगन देहौं॥

(ग) 'जागे जनजीवन जग नायक।'

(घ) 'जब तुम बेनु बजाय बुलाई अब जिय कर करत निठुराई।'

(ङ) 'चित नहिं चलत चरन गति थाकी मन न जात गृह पास।'

(च) "रंचक चाखन दैरी दह्यौ।
अद्‌भुत स्वाद स्रवन सुनि मोपे नाहिन परत रह्यौ॥"

वीप्सा या पुनरुक्तिप्रकाश के एक-दो उदाहरण देखिए :

(क) 'सुन्दर मुख की हौं (बलि-बलि)जाऊँ।
लावननिधि गुननिधि सोभानिधि (देखि देखि) जीवत सब गाऊँ।'

(ख) '(जमुना जमुना) नाम उच्चारत धर्मराज ताकी न चलावै॥'

(ग) 'परम सनेह बढ़ावत मातनि (रबकि रबकि) बैठत चढ़ि गोद।'

ध्वनिचित्र या ध्वन्यार्थ व्यंजना (Onomatopoeia) के भी एक-दो उदाहरण मिल जाते हैं। रास-नृत्य का यह ध्वनिचित्र देखिए : शब्दों द्वारा वाद्य-ध्वनि और नृत्य का ध्वनिचित्र-सा प्रकट हो रहा है—

रास रच्यौ बन कुंवर किसोरी।
मंडल विमल सुभग बृन्दावन पुलिन श्यामघन घोरी॥
बाजत बेनु रबाब किन्नरी कंकन नूपुर किंकिनि सोरी।
ततथेई ततथेई सब्द उघटत पिय भले बिहारी बिहरत जोरी॥

अन्त्यानुप्रास तो परमानन्ददास के सभी पदों में पाया जाता है। तुकांतता से उनके सब पद सुन्दर संगीत-ध्वनि प्रकट करते हैं। ढूंढ़ने पर एक-दो उदाहरण यमक के भी मिले हैं :

(क) (तिल) भरि संग तजत नहीं निज जन गान कर मनमोहन जस को।
(तिल तिल) भोग धरत मन भावत 'परमानंद' सुख लै यह रस को॥

(ख) भयो नंदराय के घर (खिच)।
सब गोकुल के लरकन के संग बैठे है आए बिच॥
परोसि छार फरे लै आगे सब माखन घी (खिच)।

इस प्रकार परमानन्द का अलंकार-विधान अत्यन्त स्वाभाविक है। उन्होंने उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा का अर्थालंकारों में और अनुप्रास का शब्दालंकारों में मुख्य प्रयोग किया है। उनका उपमान-विधान अधिकतर परम्पराभुक्त होते हुए भी भाव और वस्तु-वर्णन में सौन्दर्य-वृद्धि करता है। परमानन्ददास ने सरल स्वाभाविक कला का सहारा ही लिया है, जटिल दुरूह प्रयोग उन्होंने नहीं किये। उनके द्वारा प्रयुक्त अलंकार उनकी भावाभिव्यक्ति के अन्तरंग अंग बनकर स्वतः ही प्रकट हुए हैं।

परमानन्ददास के पदों में अपवाद-रूप एक दृष्टकूट पद मिलता है :

उधौ जू मन की मनहिं रही।
पंचमुख दृग आठ जाके द्वादस चरन यही ।।
आठ नारी द्वै भर तारी जुगल पुरुष इक नारी गही।
चारि वेद दुहि ललौ साँवरौ नैनन सेन दई।
'परमानन्ददास' के प्रभु पै यों पीवत है यही ।।

[परमानन्द सागर पद 912]

भाषा की चित्रोपम शक्ति : परमानन्ददास की स्वाभाविक सरल भाषा अनेक स्थानों पर चित्रात्मक प्रभाव उत्पन्न करती है। ध्वनि-चित्रों की विशेषता उसमें चाहे सहज हो, वस्तु-चित्रों की कमी नहीं। झूला झूलते हुए कृष्ण-राधा के पट-आँचल फहरा रहे हैं, कृष्ण का पीतपट है और राधा की साड़ी नीली है। इस दृश्य का चित्रात्मक वर्णन इन पंक्तियों में कितना आकर्षक है :

दृश्य चित्र : झूलत नवल किसोर किसोरी।
नीलांबर पीताम्बर फरकत उपमा घनदामिनी छबि थोरी।

कृष्ण के रूप-लावण्य का कवि ने कई पदों में सुन्दर चित्रण किया है। बछिया की पूंछ पकड़कर बजती हुई पैजनियों से रुन-झुन चलते हुए बाल-कृष्ण का यह रूप-चित्र देखिए—अधर लाल, मुख दधि पुता और तन पर छाछ के छींटे हैं :

रूप-चित्र : नन्द जू के लालन की छबि आछी।
पाय पैंजनी रुनझुन बाजत चलत पूंछ गहि बाछि ।।
अरुन अधर दधि मुखलपटानो तन राजत छींटे छाछी।
'परमानन्द' प्रभु बालक लीला हँसि चितवन फिर पाछी ।।

कृष्ण की माखनचोरी, गोचारण आदि लीलाओं के वर्णन में कवि ने कार्यव्यापारों, चेष्टाओं का अनेक पदों में चित्रात्मक वर्णन किया है। माखन-चोरी का एक चित्र देखिए :

बाल-क्रीड़ा : भरी दुपहरी सब सूनो घर ढंढोरि अबहि उठि धायौ।
खोलि किवार अकेले मंदिर दूध दह्यौ सब लरकन खायौ।
छींके ते काढ़ि, खाट चढ़ि मोहन कछू खायो कछु भू ढरकायौ ।।

बालकों के पतंग उड़ाने का एक क्रीड़ा-चित्र भी देखिए :

गुड़ी उड़ावन लागे बाल।
सुन्दर पतंग बाँधि मनमोहन नाचत है मोरन के ताल ।।
कोऊ पकरत कोऊ ऊँचत कोऊ देखत नैन बिसाल।
कोऊ नाचत कोऊ करत कुलाहल कोऊ बजावत खरौ करताल।
कोऊ गुड़ी ते उरझावत आपुन ऐंचत डोर रसाल।

भाषा की लाक्षणिक शक्ति : परमानन्ददास के पदों में सूरदास-जैसी ही लाक्षणिक कथन-भंगिमा पाई जाती है। इसी से उनके काव्य में आलंकारिक प्रयोग अपेक्षाकृत कम होने पर भी अभिव्यक्ति की प्रभावशक्ति खूब दिखाई देती है। उन्होंने

लाक्षणिक प्रयोगों, मुहावरों और लोकोक्तियों में अपनी भाषा को खूब सशक्त बनाया है। उनके पदों में लाक्षणिक प्रयोग प्रचुर हैं—

'सदा रहत चित चाक चढ़यो सो।' 'नाच नच्यौ तब घूंघट कैसो, लोक लाज डर पटकि पछोर्‌यो।' 'जिन लागहु ताती आँच।' 'बाट माँझ मटुका लै फोर्‌यो।' लोक वेद तिनका सो तोर्‌यो।'

मुहावरे : **'तू चस ते मस होति नाहिं', 'पिय की पान्यौ भरिहो', 'मुख मोर्‌यो', 'ऊँची-नीची मो सों कहि गयो री।' 'न्हात खसै जिन बार', 'हा हा खाना', 'हाथ मीड़ना', 'गाल बजावत रीते', 'बार न बाँको जाइ।' 'हस्तकमल की हमहू ऊपर फेरि जैहो छया।' अंखियन तारो कुल दीपक व्रजगेह।' 'फूले फिरत।'**

लोकोक्ति : **'नाच नच्यौ तब घूंघट कैसो।' 'बैठे सिंह न रोरिये।'**

निम्न पद की प्रत्येक पंक्ति तथा प्रत्येक वाक्य में सुन्दर लाक्षणिक शब्दावली भाव-व्यंजना को कितना उत्कर्ष प्रदान कर रही है :

मैं अपनो मन हरि सों जोरयो।
हरि सों जोरि सबनि सों तोरियो॥
नाच नच्यौ तब घूंघट कैसो लोक लाज डर पटकि पछोर्‌यो।
आगे पाछें सोच मिट्यो जिय बाट माँझ मटुका लै फोर्‌यो॥
कहो होय सो कहो सखीरी कहा भयौ काहू मुख मोर्‌यो।
नवल लाल गिरिधरन पिया संग प्रेमरंग में यह तन बोर्‌यो॥
'परमानन्द प्रभु' लोग हँसन दै लोकबेद तिनुका सो तोर्‌यो॥

परमानन्ददास की भाषा में प्रसाद और माधुर्य गुण की प्रधानता है। प्रसन्न प्रसाद गुणयुक्त पदावली सर्वत्र है। परुष भावों की न्यूनता के कारण ओज गुण की भी न्यूनता है।

परमानन्ददास की कोमलकांत मधुर पदावली माधुर्य व्यंजक है। पदावली की योजना सर्वत्र भावानुरूप है। होली-धम्मार के पदों में शब्दावली का ऐसा अनुकूल प्रयोग किया गया है कि प्रत्येक शब्द होली की उमंग-ध्वनि प्रकट करता है।

परमानन्ददास का काव्य मुक्तक काव्य है। मुक्तककार की पूर्ण प्रतिभा उनमें थी। मुक्तककार की सफलता इस बात में होती है कि वह रोचक खण्ड-प्रसंगों को अपने छन्दों या पदों में प्रस्तुत करे। परमानन्ददास ने कृष्ण-राधा-जीवन से सम्बन्धित अनेक छोटे-छोटे रोचक प्रसंगों को अपने पदों में बांधा है। कृष्ण की दानलीला, माखनचोरी आदि विविध प्रसंगों के कारण उनके पद अत्यन्त रोचक एवं भावपूर्ण बन गए हैं। मुक्तककार की कला-लाघव-शक्ति, प्रसंग-चयन-क्षमता, सरल सरस अभिव्यक्ति, कथन की प्रभावशक्ति आदि सभी प्रकार की समर्थता परमानन्ददास में थी। उपर्युक्त पद में ये सब गुण स्पष्ट दिखाई देते हैं। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उनमें प्रबन्धकार की क्षमता नहीं थी। प्रसंगों की उद्भावना तथा सफल वर्णन-विवरण-शैली-प्रयोग से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि

परमानन्ददास में प्रबन्धकार की क्षमता भी विद्यमान थी। पर चूंकि वे सम्प्रदाय के कीर्तन-कवि थे, अत: उन्हें कृष्ण की विविध लीलाओं का खण्डगान ही प्रस्तुत करना पड़ा। इसी से उनके काव्य का स्वरूप मुक्तक काव्य ही रहा।

छन्द-प्रयोग—परमानन्ददास का काव्य गेय पदों में रचित है। भिन्न-भिन्न रागरागनियों में बंधे उनके पदों में छन्दों की भी विविधता दिखाई देती है। सार, ताटंक, सिंह, रोला, रूपमाला, झूलना, लावनी, गीतिका आदि छन्दों का सफल प्रयोग उनके पदों में स्पष्ट प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त कुछ पदों में चौपाई, चौपई और दोहा छन्द का भी प्रयोग मिलता है। कवि ने मात्रिक छन्दों का ही प्रयोग किया है और उनमें वर्ण, मात्राओं और यति की अपेक्षा लय, गति और संगीतात्मकता पर ही विशेष ध्यान दिया। यही कारण है कि उनके चौपाई आदि के प्रयोगों में एकाध मात्रा न्यूनाधिक मिलती है पर पदगति कहीं अवरुद्ध नहीं होती; यति-भंग होने पर भी प्रवाह कुंठित नहीं होता। कीर्तनकार कवि अपनी गेय शैली में शास्त्रीय छन्द-बन्धन में नहीं बंध सकता। शास्त्रीय दृष्टि से परमानन्ददास का छन्द-प्रयोग सर्वथा निर्दोष नहीं है, पर संगीत-माधुर्य और गेयता की छटा उसे छन्द-दोष नहीं रहने देती। उन्होंने छन्दों की बजाय रागों के विधान का ध्यान रखा है।

गीति-तत्त्व, पद-शैली—सूर के पदों की तरह परमानन्ददास के पदों की भी एक बड़ी विशेषता है उनकी टेक। प्रायः 15 से 20 मात्राओं तक की उनकी टेकें बहुत ही मार्मिक होती हैं। न-केवल उनमें भाव सिमटा रहता है, अपितु वे समस्त पद को संगीत-माधुर्य प्रदान कर देती हैं।

परमानन्ददास सूरदास की ही तरह एक सफल गीति काव्यकार थे। वे बहुज्ञ तथा संगीत-मर्मज्ञ कीर्तनकार और गायक थे। उनके पदों में भी भारतीय संगीत-शास्त्र की परम्परा का सुन्दर निर्वाह हुआ है। सूरदास की तरह ध्रुवपद धमार शैली का पूर्ण उत्कर्ष उनके पदों में दिखाई देता है। लगभग चालीस राग-रागिनियों—गौरी, बिलावल, मलार, सारंग, केदारा, धनाश्री, मालकोस, बिहाग, विभास, जैजैवंती, आसावरी, गूजरी आदि—का उन्होंने सफल प्रयोग किया है। बल्लभ सम्प्रदाय के कीर्तनकार कवियों में उनका विशिष्ट स्थान था। कृष्ण की नैत्यिक एवं वर्षोत्सव लीलाओं के अवसर पर उन्होंने स्वयं अपने पद गाकर गायन-विद्या और संगीत-कला को उस युग में विकास की उच्च मंजिलों पर पहुंचाया। तानसेन-जैसे विश्व-प्रसिद्ध गवैयों और संगीतज्ञों के निर्माण में सूरदास के साथ ही परमानन्ददास का भी महत्त्वपूर्ण योग है। उनके पदों में गीतिकाव्य की कोमलकांत पदावली, भाव-प्रवणता, संक्षिप्तता, भावान्विति, आत्माभिव्यक्ति, संगीत-माधुर्य तथा भाषा की प्रभावक शक्ति आदि सभी विशेषताएँ पाई जाती हैं। लोकगीत-पद्धति के भी अनेक पदों में भव्य दर्शन होते हैं।

7

बिहारी का श्रृंगार-चित्रण

1. उपक्रम : रसिक-श्रृंगारी
2. श्रृंगारेतर प्रवृत्तियों पर भी श्रृंगारी रंग
3. रूप-चित्रण : नख-शिख-वर्णन
4. वस्तु-योजना में ऊहा से खिलवाड़
5. हाव-भाव-अनुभाव-विधान : अनूठा प्रसंग चयन
6. वियोग-चित्रण में खिलवाड़
7. वियोग-चित्रण
8. उपसंहार

बिहारी हिन्दी-जगत् में श्रृंगार-रस के श्रेष्ठ कलाकार हैं। इनकी निश्चित दृष्टि ने जिस तरह मानव-जीवन की सर्वप्रधान वृत्ति प्रेम के अन्तर्तम में पैठकर उस के कोने-कोने, अणु-अणु को आलोकित किया है, उसी तरह प्रेम के आधार-भूत सौन्दर्य के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म संकेत को, उसकी क्षण-क्षण में परिवर्तमान छटा को भी निहारा और उसका अद्भुत सर्वांगपूर्ण चित्र खींचा है।

अग्निपुराण के अनुसार "श्रृंगारी चेत् कविः काव्ये जातं रसमयं जगत्"—अर्थात् यदि कवि रसिक-श्रृंगारी है तो सारा संसार ही श्रृंगारमय बन जाता है। कालिदास की तरह बिहारी के अन्तर्वर्ती कलाकार को भी सारी प्रकृति अपना मधुर प्रणय-संदेश देती प्रतीत हुई। 'शरद् सुन्दरी किसको आनन्द नहीं देती'? "बसन्त की प्रचण्ड लूएँ, बसन्त के विरह में व्यथित ग्रीष्म ऋतु की उसासें" बन जाती हैं। प्रकृति का यह नारी-सुन्दरी के रूप में मानवीकरण छायावादी कवियों की तो एक प्रधान वृत्ति ही बन गई। प्राचीन हिन्दी कवियों में यह प्रवृत्ति बहुत ही कम है। बिहारी आदि एक-दो कवियों में ही इस ओर कुछ सजगता मिलती है। संस्कृत-साहित्य में कालिदास की इस विशेषता से कौन अपरिचित होगा?

रसिक श्रृंगारी : बिहारी की श्रृंगारिक-वृत्ति का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि वे प्रमुख रूप से रसिक-श्रृंगारी कवि थे। विशुद्ध-प्रेम-चित्रण भी उनके

दोहों में मिलता है, किन्तु बहुत कम। प्रेम का काम-प्रेरित रूप ही उन्होंने अधिक अपनाया है। यही कारण है कि उनका शृंगार संयोग-प्रधान है। विरह पक्ष में भी ऐन्द्रिय-उद्वेलन अधिक दिखाई देता है। बिहारी सौन्दर्य और विलास के कवि हैं। प्रेम के प्रति उनका दृष्टिकोण भी रसिकता का ही रहा है। उनके प्रेम-पयोधि में "गिरि तें ऊँचे रसिकों के हज़ार मन ही गोता लगाते हैं," 'कवित्त-रस और रति-रंग' में बिहारी कोई अन्तर नहीं मानते थे। अपने युग के दरबारी या नागरिक जीवन के प्रभाव से बिहारी रसिक कवि बने। उस समय का सामंत वर्ग नारी के नख-शिख-सौन्दर्य में, ऐन्द्रिक हास-विलास में ही मन लगाता था। सामंतीय या नागरिक जीवन की विलासमयता तथा ऐन्द्रियता का प्रकाशन ही रीतिकाल के कवियों की विशेषता बन गई। परम्परागत संस्कृत-प्राकृत के मुक्तक काव्य (गाथा, 'आर्या सप्तशती' अमरूकशतक आदि) में भी रूप-सौन्दर्य, ऐन्द्रियता, शारीरिक आकर्षण और वासनापूर्ण चित्र अधिक थे। उधर उर्दू-फारसी का साहित्य तो शृंगार के निःसंकोच निर्लज्जतापूर्ण चित्रों से भरा था ही। राधाकृष्ण का आधार लेकर चली हुई कृष्णकाव्य-धारा तथा दरबारी वातावरण ने मिलकर शृंगार को जहाँ ऐकान्तिक और लोक-पक्ष-शून्य बनाया, वहाँ उसमें स्थूल वर्णनों का भी समावेश हुआ। बिहारी पर इस प्रवृत्ति का ही रंग प्रमुख है।

इस प्रकार बिहारी के काव्य में घनानन्द आदि प्रेम-जीवी कवियों जैसी तीव्र प्रेमानुभूतियों के स्थान पर अधिकतर सौन्दर्य या रूप-लिप्सा, हास-विलास तथा शारीरिक रसिकता के ही दर्शन होते हैं।

शृंगारेतर प्रवृत्तियों पर भी शृंगारी रंग : बिहारी-सतसई की प्रधान प्रवृत्ति रसिकतापूर्ण शृंगार की ही है। रसिकता और विलासिता की यह प्रवृत्ति बिहारी की अन्य प्रवृत्तियों, जैसे—प्रकृति-चित्रण, भक्तिभावना, नीति-कथन आदि के मूल में भी दिखाई देती है।

रसिक-प्रवृत्ति के ही कारण बिहारी की नायिका के रूप की चौखट पर सारा संसार प्यास बुझाने के लिए उपस्थित हो जाता है—

कन देइबौ सौंप्यौ ससुर, बहु थुरहत्थी जानि।
रूप रहँचटे लगि लग्यो, मांगन सब जग आनि।।

इस प्रकार का शोहदापन रसिक-प्रवृत्ति के कारण ही आया है। नायक लोक-समाज में बैठी नायिका की गोद से लड़का लेने के बहाने, उसकी छाती को छू जाता है—

लरिका लेबै कैं मिसुन, लंगर मों ढिग आई।
गयौ अचानक आँगुरी, छाती छैल छुवाइ।।

नख-शिख-वर्णन—रूप-चित्रण : बिहारी के प्रेम तथा रसिकता का आधार रूप-सौन्दर्य है। बिहारी-सतसई एक विशाल चित्रशाला है, जिसमें नायिकाओं के रूप-

सौन्दर्य, वय:संधि, अंग-प्रत्यंग-चित्रण तथा अनेक मुद्राओं और चेष्टाओं के स्वाभाविक सजीव चित्र मिलते हैं। बिहारी एक कुशल मुसव्वर हैं।

नायिका अभी बाला है। वय:संधि—किशोरावस्था और युवावस्था का संधि-काल है—

छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यौ जोबन अंग।
दीपति देह दुहून मिलि, दिपति ताफता-रंग॥

शैशव चला तो गया है, पर अभी उसकी झलक रही हुई है। यौवन भी केवल अपनी झलक देने लगा है। दोनों की झलकें—आभायें—मिलने से उसकी देह में 'ताफते' (धूपछाँह कपड़े) की दीप्ति चमक रही है। यह "तरुन किसोर वय" "पुण्यकाल सम" है। किन्तु यह संक्रमण-काल लम्बा नहीं होता। शीघ्र ही यौवन-उभार दिखलाई देने लगता है। 'यौवन-नृपति' प्रसन्न होकर अपने अंग-पक्ष के स्तन, नयन और नितम्ब को 'इजाफा' (तरक्की) दे देता है। कटि क्षीण हो गई है। विधि ने कटि को ऐसी क्षीण बनाया है कि शरीर से 'लगी' हुई भी 'अनलगी' का-सा संदेह पैदा कर रही है, मानो कटि की सामग्री से ही कुच और नितम्ब 'अति-पीन' बनाए हैं। बिहारी की इस कल्पना में हमें शेख और आलम की कटि-कुच-सम्बन्धी समस्या-पूर्ति याद आ जाती है। आलम (जो पहले हिन्दू थे) कटि पर समस्या के रूप में प्रश्न कर बैठे—

"कनक छरी सी कामिनी काहे को कटि छीन?।"

एक रंगरेज की कलाकार छोकरी ने अचूक उत्तर दिया। समस्या-पूर्ति कर डाली—

"कटि को कंचन काटि विधि कुचन मध्य धरि दीन॥"

अब बिहारी का चित्रण-चातुर्य नयनों के चित्रण में भी देखिए। "सिंगार रस में मज्जन किए हुए वे बिना अंजन लगाए ही खंजन गंजन" बनी हुई हैं। झीने पट में उनकी चंचल चितवन ऐसी प्रतीत होती है, मानो गंगा के विमल जल में दो मछलियाँ अठखेलियाँ कर रही हों—

चमचमात चंचल नयन बिच घूंघट पट-झीन।
मानहु सुरसरिता-बिमल जल, उछरत जुग-मीन॥

वह चितवन तो "औरै कछू है", जिसका जादू सुजान के सिर चढ़ कर बोलता है।

इस सौन्दर्य के संहारक प्रभाव का बिहारी ने अनेक दोहों में वर्णन किया है। कहीं नायिका का रूप ठग बनकर नायक के नयन-मन को चिबुक-गढ़े में मार गिराता है तो कहीं नासिका-बेध रसिक जनों के हृदय को तीर की भाँति बेंध डालता है।

कटि, कुच और नयनों के साथ-साथ अन्य अंगों में भी कवि ने स्पष्ट विशेषताएँ प्रकट की हैं। क्या मुख, क्या ओंठ, क्या नाक, क्या त्रिबली, क्या

बाल क्या अन्य, सभी में ऐसा विलक्षण निखार आ गया है कि देखते ही बनता है। अब तो 'औरै गति औरै वचन भयो बदन रंग और''। अंग-अंग में यौवन ने सोन-जुही का-सा रंग भर दिया है। उनके ''सुनहले गात के रूप की बराबरी केसर क्यों-कर कर सकता है''? उसके आगे बेचारे चंपक की क्या ताकत कि सिर भी खड़ा कर सके! स्वयं सोना लज्जित होकर फीका पड़ जाता है। ऐसी तन की छाया देखने वाले को 'चाँदनी भी छाया-सी' लगेगी। अंगों में आभूषण तो हैं, पर कहने मात्र को। वास्तव में तो वह अपनी ही शोभा से दीप्त है। क्षण-क्षण में बढ़ती हुई और रूप-छवि बदलती हुई इस सौन्दर्य-छटा का कोई निपुण चित्रकार भी क्या चित्र खींचेगा?

बाह्य प्रसाधन—जैसे महावर, स्वर्णाभूषण, अंगराग आदि इस स्वाभाविक सौन्दर्य के सामने फीके पड़ जाते हैं। बिहारी के विभाव-पक्ष के रूप-चित्रों को कहाँ तक दिखायें! वे बहुत अधिक हैं और एक से एक बढ़ कर।

वस्तु-योजना में ऊहा से खिलवाड़ : नख-शिख-वर्णन या रूप-चित्रण-सम्बन्धी कुछ दोहों में बिहारी की वस्तु-योजना ऊहा से आक्रान्त हो गई है। ऐसे अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णनों में अस्वाभाविकता का दोष भी आ गया है। नायिका की कोमल ग्रीवा शीशे की तरह पारदर्शी (transparent) है, अतः पान की पीक निगलने के समय साफ दिखाई पड़ जाती है। जहाँ बिहारी के अनेक दोहों की वस्तु-व्यंजना में कल्पना के अनेक मनोरम चित्र हैं, वहाँ कहीं-कहीं अतिशयोक्तिपूर्ण ऊहा से खिलवाड़-सा भी उत्पन्न हो गया है। जहाँ बिहारी की नायिका रहती है, वहाँ उसके आनन-ओप से पूर्णिमा-सी छाई रहती है—इतना कथन तो संगत था, किन्तु जब कवि कहने लगता है कि तिथिवार का पता भी वहाँ पत्रा देखने से चलता है, तो अस्वाभाविकता की पराकाष्ठा हो जाती है—

> **पत्रा ही तिथि पाइए, वा घर के चहुँ पास।**
> **नित प्रति पून्यौहि रहत, आनन-ओप-उजास॥**

ऐसे हास्यास्पद वर्णनों से सौन्दर्यानुभूति जरा भी नहीं जगती। नायिका इतनी नाजुक है कि नाईन बेचारी को स्पर्श-मात्र से भी छाले पड़ जाने का भय है। गुलाब की पंखुड़ियाँ छुआते भी बड़ी झिझक होती है।

बिहारी के सौन्दर्य-चित्रण-सम्बन्धी कुछ दोहों में ज्योतिष, वैद्यक, गणित आदि शास्त्रों की साधारण बातों द्वारा भी वस्तु-योजना में खिलवाड़-सा ही आया है। इस प्रकार के चमत्कारपूर्ण वर्णन भी सौन्दर्यानुभूति जगाने में असमर्थ ही रहे हैं। एक उदाहरण देखिए—

> **भाल, लाल बेंदी, ललन, आखत रहे बिराजि।**
> **इन्दु-कला कुज मैं बसी, मनो राहु-भय भाजि॥**

हाव-भाव-अनुभाव-विधान : विभाव पक्ष में नायक-नायिका परस्पर एक-

दूसरे के आलंबन और आश्रय होते हैं और उद्दीपन बनते हैं उनके गुण, चेष्टाएँ, मुद्राएँ एवं परिस्थितियाँ। यौवन-आगमन पर नायिका के शरीर और मन में आए परिवर्तनों को—सौन्दर्यगत विकारों को—साहित्य में अलंकार शब्द से पुकारा गया है। शोभा, कांति, दीप्ति, माधुर्य आदि सात अयत्नज अलंकार माने गए हैं। भाव, हाव और हेला—ये तीन मानसिक हैं और मानसिक विकार उत्पन्न होने पर लीला, विलास, विव्वोक, विच्छित्ति आदि 18 स्वाभाविक चेष्टाएँ एवं मुद्राएँ होती हैं। बिहारी ने प्रायः सभी का चित्रण किया है। किंतु इस सम्बन्ध में ध्यान देने योग्य बात यह है कि उपर्युक्त उद्दीपनों में बहुत-सी चेष्टाएँ अनुभाव भी हो सकती हैं, क्योंकि जहाँ वे रति-भाव का उद्दीपन करती हैं, वहाँ स्वयं रतिभाव के प्रभाव का भी परिणाम हैं। यही कारण है कि बहुत-से विद्वानों ने इन्हें अनुभाव ही माना है, विभाव नहीं। वास्तव में इनका विभावत्व और अनुभावत्व परिस्थितिवश है। स्वतःस्फूर्त दशा में आलम्बनगत ये आश्रय की रति की उद्दीपन हैं, किन्तु यदि ये आलम्बन-प्रेरित होकर आश्रय नायिका में हों तो अनुभाव ही होंगी। बिहारी ने इनके सब प्रकार के चित्र खींचे हैं। बिहारी की शृंगार-रस-सृष्टि की सबसे बड़ी विशेषता इन सब हावों-अनुभावों का संश्लिष्ट चित्रात्मक रूप में प्रस्तुत करना है। रीतिकाल के अन्य किसी कवि का ऐसा अनूठा हाव-अनुभाव-विधान नहीं मिलता।

बिहारी की योजना संश्लिष्ट होती है। यही कारण है कि जो चित्रात्मकता, स्वाभाविकता तथा मनोवैज्ञानिकता अनुभाव-विधान में बिहारी के दोहों में पाई जाती है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

अनूठा प्रसंग-चयन : बिहारी का प्रसंग-चयन भी अनूठा है। उन्होंने प्रेम और विलासिता तथा रसिकता के अनेक प्रसंगों की कल्पना की है। और सबसे विलक्षण बात तो यह है कि दोहे के छोटे-से साँचे में इतने अधिक हावों, भावों और अनुभावों की संश्लिष्ट और मार्मिक व्यंजना कवि ने की है कि आश्चर्यचकित होना पड़ता है। बिहारी ने केवल शास्त्रकारों की परिपाटी का पालन ही नहीं किया, बल्कि अपनी स्वतन्त्र, मौलिक उद्भावना-शक्ति द्वारा सूक्ष्म कार्य-व्यापारों, मुद्राओं, चेष्टाओं तथा हाव-भावों का चित्रण किया है। बिहारी के संयोग-पक्ष-प्रबल शृंगार में विशेष रूप से हाव-भाव-अनुभाव-विधान द्वारा अपूर्व रस-सृष्टि हुई है।

शुद्ध स्वाभाविक मुद्राओं और चेष्टाओं का वर्णन करने में बिहारी चित्रकार की तूलिका से काम लेते हैं। निम्न दोहे में सद्यःस्नाता का ऐसा स्वाभाविक हाव-चित्रण है, जिसके आधार पर चित्र बनाया जा सकता है। यह हाव-चित्र नायक के लिए उद्दीपन है, अतः अनुभाव-अन्तर्गत नहीं आ सकता—

विहंसति सकुचति सी दिए कुच-आंचर बिच बाँह।
भीजे पट तट कौ चली, न्हाइ सरोवर माँह॥

नायिका की ऐसी भाव-निरपेक्ष शुद्ध हाव-चेष्टाओं का वर्णन जो नायक के लिए भावोद्दीपन का कार्य करती हैं, बिहारी ने खूब किया है। एक और उदाहरण देखिए—

नाक चढ़ै सीबी करै, चितै छबीली छैल।
फिरि फिरि भूलि वहै गहै, प्यौ कंकरीली गैल।।

यहाँ नायिका नायक द्वारा कंकरीले पथ से ले जाने पर कष्ट के कारण नाक चढ़ाती और सी-सी करती है। वह रति-भाव से प्रभावित होकर ऐसा नहीं करती। अतः उसकी यह शुद्ध मुद्रा है। किन्तु नायक उसकी इस मुद्रा पर ही लट्टू है, और जान-बूझकर बार-बार कंकरीले मार्ग से ले जाता है। इस उदाहरण में नायक-आश्रय-गत अनुभाव भी स्पष्ट है। इसी प्रकार कहीं छींके से दही उतारती हुई नायिका के "आर्टिस्टिक पोज"—खिचे हुए पीन-पयोधरों से युक्त मुद्रा—को देखकर नायक काम-उत्तेजित होता है, कहीं जूड़ा बाँधती हुई नायिका उसका मन बाँध लेती है।

उपर्युक्त उद्दीपनकारी शुद्ध मुद्राओं एवं चेष्टाओं के अतिरिक्त नायिका की भाव-प्रेरित आश्रयगत चेष्टाओं का भी बिहारी ने चित्रात्मक प्रकाशन किया है। ये भाव-प्रेरित हाव अनुभाव के अन्तर्गत आएंगे। हावों के चित्रण में बिहारी ने विलास हाव का सर्वाधिक चित्रण किया है। यह प्रायः नायिकागत ही होता है। प्रिय के अनुराग में नायिका का आकर्षित होना इसमें व्यंजित होता है। देखिए बाल संवारती हुई नायिका किस प्रकार नायक के दर्शन का अवसर पा लेती है—

कंज-नयनी मंजनु किए, बैठी ब्यौरति बार।
कच अंगुरी बिच दीठि दै, चितवति नंदकुमार।।

बिहारी की अनुराग-भरी नायिका कहीं-कहीं बहुत ही सक्रिय है। कहीं वह "दीठि सौं दीठि जोड़ कर" चलती है, तो कहीं उसकी चेष्टाएँ छेड़-छाड़, हास-परिहास और चुहलबाजी से ओतप्रोत हैं। बिहारी के संयोग शृङ्गार की एक बड़ी विशेषता हास-परिहास और व्यंग्य-विनोद है। नायिका ने थोड़ी देर की ठठोली के लिए, तथा संयोग-सुख के कारण नायक की मुरली छुपा ली, बस इस अवसर का बड़ा ही सुन्दर नाटकीय, चित्रात्मक वर्णन बिहारी ने प्रस्तुत कर दिया—

बतरस-लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करै भौंहनु हंसै, दैन कहै नटि जाइ।।

नायिका-पक्ष में कुट्टमित हाव द्वारा बिहारी ने अनुभावों की बहुत ही सुन्दर, सूक्ष्म, मनोवैज्ञानिक, चित्रात्मक योजना निम्न दोहे में की है। लज्जा के कारण नायिका की "नाहिं नाहिं" भी किस प्रकार 'हाँ' का संकेत करती है। परस्पर खेंचातानी का चित्र देखिए—

भौंहनु त्रासति, मुख नटति, आँखिन सौं लपटाति।
ऐंचि छुड़ावति करु, इंचि आगे आवति जाति।।

नायक ने हाथ पकड़कर खींचा, तो देखो उसके भाव और चेष्टाएं! भौंहों से डराती है कि खबरदार अगर खींचा, मुँह से नटती भी है—नहीं-नहीं। हाथ को खींच कर छुड़ाने का बहाना करती है, पर खींचातानी में स्वयं नायक की ओर खिंची हुई शनैः शनैः आती है। प्रणय की 'रस्साकशी' का कैसा मनोहर दृश्य है! थोड़े ही ठोस एवं सिमटे हुए शब्दों में नायिका की चेष्टाओं का कितना सर्वांगपूर्ण चित्र है! इसे कहते हैं भाषा की समास-शक्ति। इसी से बिहारी के 'देखत को छोटे' दोहे हृदय पर स्थायी प्रभाव डालते हैं।

बिहारी की शयनागार की क्रीड़ाओं का क्या कहना! शास्त्रकारों ने मान को विरह-पक्ष में रखा है, किन्तु बिहारी की नायिका का क्षणिक मान, जो संयोग को ही उत्तेजित करता है, संयोग-पक्ष में ही माना जाएगा। दाम्पत्य जीवन के यथार्थ चित्रकार बिहारी ने दाम्पत्य के क्षणिक मान और उसके शमन की क्रीड़ा का कैसा स्वाभाविक चित्रण किया है—

मैं मिसह्रा सोयौ समुझि मुंह चूम्यौ ढिग जाइ।
हंस्यौं, खिसानी गल गह्यौ, रही गरैं लपटाई॥

बिहारी ने नायिका की रूप-लिप्सा का भी बड़ा मनोहर चित्रण किया है। उनके अनुराग-विधान में रूप की प्यासी नायिका के अनेक भाव-चित्र हैं। नायिका के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व, औत्सुक्य, हर्ष, लज्जा आदि भावों का बड़ा सजीव चित्रण अनुभाव-विधान द्वारा हुआ है। आँखें चार होते ही हृदय में पूर्वराग फूट पड़ा। बस आँखें बार-बार अपने आलम्बन को देखने के लिए उत्सुक रहती हैं। किन्तु दूसरी ओर कुल की लाज की दीवार सामने है।

धीरे-धीरे संकोच की दीवार ढहाकर प्रेम ने आगे बढ़ना आरंभ किया। लुकाछिपी मिलन भी होने लगा—कभी "यमुना तीर पै" और कभी "तमाल तरु मिलित मालती कुंज" में। वापस आते समय डगमगाती-सी चाल चलते हुए उसे चोर की तरह बीच-बीच में जरा ठिठुक जाना पड़ता है कि कहीं कोई देख तो नहीं रहा है। और फिर 'धनी' पर 'कटाच्छ करवार' की चोट मारकर चोरटी गोरी नार उसका दिल चुराइ अपने घर भाग जाती है। आँखों पर से अब लाज-लगाम जाती रही है और वे जब-तब इधर-उधर चली जाया करती हैं, और किसी को देखकर मुस्करा जाती हैं। सखियों से भला ये शरारतें क्योंकर छिपी रहें!

सौन्दर्य का नशा चढ़ जाता है, अब तो बेचारी को चैन कहाँ?

डर न टरै नींद न परै, हरै न काल विपाकु
छिनक छाकि उछिकै न फिरि खरो विषम छवि छाकु॥

यह 'छाक' नशा बड़ा ही विषम होता है। और नशों को बनाए रखने के लिए बार-बार पीना पड़ता है, पर इसे तो 'छिनक' पी लेने से ही यह उतरने का नाम नहीं लेता। यह न किसी का डर मानता है, न नींद से उतरता है। नींद निगोड़ी आती

ही नहीं, और न काल-विपाक ही इसका कुछ कर सकता है।

बिहारी के उपर्युक्त 'कुल-कान' के कारण 'लुका-छिपी' तथा कहीं-कहीं हृदय की दृढ़ता के प्रेम से पहले दाम्पत्य प्रेम के कुछ चित्र दिखाए जा चुके हैं। कहीं-कहीं यह प्रेम किशोर-काल की 'लरिकाई' के साहचर्य और क्रीड़ा आदि के रूप में भी विकसित दिखाया गया है। अनुराग से भरे नायक-नायिका-युग्म की चोरमहीचिनी क्रीड़ा देखिए, दोनों की अनुभावगत चेष्टाओं का कैसा सुन्दर चित्रण हुआ है—

दोऊ चोर मिहीचनी खेलु न खेलि अघात।
दुरत हियें लपटाइ कै, छुवत हियें लपटात।।

संयोगान्तर्गत बिहारी ने इस प्रकार के शारीरिक स्पर्श-सुख का भी कई दोहों में सुन्दर चित्रण किया है। नायक पीछे से आकर नायिका की आँखें बंद कर लेता है, प्रेम की चुहुल जो हुई। नायिका स्पर्श-सुख के लोभ से जानते हुए भी अजान बनी रहती है—

प्रीतम दृग मीचत पिया, पानि परम सुख पाइ।
जानि पिछानी अजान, लौं नेकु न होत जनाइ।।

कैसी यथार्थ मनोवैज्ञानिक प्रेम-परिस्थिति है!

इस प्रकार बिहारी ने संयोग-अन्तर्गत नायक-नायिका के पारस्परिक—क्या वन-विहार, क्या जल-क्रीड़ा, क्या फाग खेलना, क्या पींग झूलना और क्या अन्य —सभी कार्य-व्यापारों के कितने ही अच्छे-से-अच्छे चित्र बाँधे हैं, जिनमें दोनों के दोनों चक्रवृद्धि-ब्याज के साथ एक-दूसरे के प्रति अपनी-अपनी चिरसंचित कामनाओं का ऋण चुकाते हुए दिखलाए गए हैं।

बिहारी के अनुभाव-विधान में केवल बाह्य शारीरिक स्थूल चेष्टाओं का ही निरूपण नहीं है, उन्होंने सात्त्विक अनुभावों तथा कहीं-कहीं गहन मानसिक दशाओं द्वारा भी रस-सृष्टि की है। कम्प, रोमांच, अश्रु, स्वेद आदि सभी सात्विक भाव बिहारी के काव्य में मिलते हैं। बिहारी ने कुछ ऐसे चित्र भी प्रस्तुत किए हैं जिनके वर्णन-मात्र से प्रेम की आन्तरिक, मानसिक दशा का पता चलता है। ये चित्र बड़े ही मनोवैज्ञानिक हैं। नवोढ़ा नायिका का एक चित्र देखिए—

रही दहेंड़ी ढिग धरी, भरी मथनिया वारि।
फेरति करि उलटी रई, नई बिलोवनिहारी।।

नई-नवेली दूध बिलोवनहारी के प्रिय-अनुराग में विभ्रम हाव का कैसा सुन्दर चित्र है! बिलोवे क्या खाक? ध्यान तो कहीं और है। सुध-बुध ही नहीं रही। दही पास धरी रह गई, पानी से मटकी भर ली, और रई के उल्टे-सीधे का भी कोई ध्यान नहीं! यहाँ मोह संचारी भी स्पष्ट है। इस प्रकार विभाव, अनुभाव, संचारी आदि रस के सम्पूर्ण अवयव केवल अनुभाव-विधान से ही लक्षित हो जाते

हैं और रस का पूर्ण-परिपाक कराते हैं।

इसी प्रकार प्रिय-समागम की आन्तरिक अभिलाषा, उत्साह, हर्ष और उमंग का एक अत्यन्त मार्मिक चित्र निम्न दोहे में देखिए—

ज्यौं ज्यौं आवति निकट निसि, त्यौं त्यौं खरी उत्ताल।
झमकि झमकि टहलैं करैं, लगी रहचटैं बाल॥

यह है बिहारी का अनूठा, मौलिक प्रसंग-चयन। सामान्य गार्हस्थ्य जीवन की कैसी मनोवैज्ञानिक परिस्थिति का चित्रण हुआ है! और मजे की बात है कि सब-कुछ ध्वनि और संकेतात्मक शैली में कहा है। नायिका के बाह्य व्यापारों से ही उसका प्रेम ध्वनित होता है। ऐसे दोहे ही बिहारी के काव्य को श्रेष्ठ ध्वनि-काव्य बनाते हैं। 'ज्यों-ज्यों आवत निकट निसि' से शीघ्र ही रात्रि के समय प्रिय से मिलने का संकेत है। बड़ी उतावली से झूम-झूमकर घर के काम का समेटना रसचटी बाला की आन्तरिक हलचल को स्पष्ट करता है।

प्रिय की प्रेम-भरी भेंट या प्रिय से सम्बन्धित वस्तु ही प्रेमिका के लिए किस प्रकार आलम्बन बन जाती है, यह निम्न दोहे में देखिए। प्रिय का छल्ला—अंगूठी —प्रियतमा को किस प्रकार प्रेम में नचा रहा है—

छला छबीले छैल को नवल नेह लहि नारि।
चूमति, चाहति लाय उर, पहिरति, धरति उतारि॥

प्रेम का कैसा सजीव वर्णन है! नायिका का चित्र रजत-पट के चित्रों की तरह नेत्रों के सम्मुख घूम जाता है। सम्बन्ध-भावना का सुन्दर चित्रण हुआ है।

बिहारी के शृङ्गार-चित्रण में सभी प्रकार के कायिक (शारीरिक), वाचिक तथा सात्त्विक अनुभावों द्वारा रस की अपूर्व सृष्टि हुई है। ऊपर हमने नायिकागत अनुभावों को दिखाया है। अब उभय-पक्षीय—नायक-नायिका-आश्रित—अनुभाव के चित्र देखिए। बिहारी की एक मार्मिक प्रसंग की ऊहा देखिए—

उन हरकी हँसी कै इतै, इन सौंपी मुसकाइ।
नैन मिलैं मन मिलि गये, दोऊ मिलवत गाइ॥

नायिका राधा नायक कृष्ण—ध्यान रहे रीतिकाल का प्रत्येक नायक कृष्ण है, प्रत्येक नायिका राधा—के पास, अपनी गाय जंगल में चरने के लिए, छोड़ने गई। नायक को ठठोली का इससे अच्छा अवसर और कौन-सा मिलता? हँसकर नायिका की गाय हरक दी—भगा दी, जाओ हम नहीं मिलाते! नायिका भी समझ गई, उसने मुस्काकर फिर गाय सौंप दी। दोनों के मुस्कराते नयन मिले, दिल मिले, गाय मिलने-मिलाने में ही दोनों मन-प्राण से मिल गए। दोनों के कार्य-व्यापार का कैसा चित्रात्मक वर्णन है! रस की पूर्ण व्यंजना हुई है। नायक-नायिका एक-दूसरे के आलम्बन हैं, वन का एकान्त प्राकृतिक वातावरण उद्दीपन है। अनु-भाव-पक्ष दोनों के कार्य-व्यापार से स्पष्ट है ही। हर्ष, हास आदि संचारी भाव भी

मार्मिक हैं।

उभयपक्षीय किलकिंचित हाव का भी एक प्रसंग देखिए। प्रेम किस प्रकार अपनी मौन भाषा में ही आन्तरिक गर्व, हर्ष, अमर्ष आदि भावों को प्रकट कर रहा है—

कहत, नटत, रीझत, खिझत मिलत खिलत लजियात।
भरे भौन मैं करत हैं नैनन ही सौं बात।।

भरे भवन में सबके सामने, किन्तु सबसे गुप्त, सैन-बैन की बातें कितनी मार्मिक हैं! बिहारी, निस्संदेह, रस-सिद्ध कलाकार हैं।

अब केवल नायकगत अनुभाव-योजना का एकाध उदाहरण देकर इस प्रसंग को समाप्त करते हैं। पूर्वराग में नायक पर पड़े मानसिक प्रभाव का एक चित्र देखिए—

कहा लडैते दृग करे, परे लाल बेहाल।
कहुँ मुरली कहुँ पीत पट कहुँ मुकुट बनमाल।।

नायक की व्याकुलता-जन्य अस्त-व्यस्तता का वर्णन कवि ने अपनी स्वतन्त्र अनुभूति द्वारा किया है।

बिहारी के वियोग-शृंगार में भी कहीं-कहीं सुन्दर अनुभाव-विधान है, पर संयोग-जैसा व्यापक नहीं। अश्रु सात्त्विक का उदाहरण देखिए। प्रवत्स्यत्पतिका नायिका की प्रिय-प्रवास की बात सुनने से ही पलकें गीली हो जाती हैं—

ललन चलन सुनि पलनु मैं अंसवा छलके आइ।

इस प्रकार बिहारी ने सभी प्रकार के सात्त्विक, शारीरिक, वाचिक, मानसिक, नायिकागत, उभयपक्षीय आदि अनेक प्रकार से मार्मिक अनुभाव-विधान द्वारा रस की पूर्ण सृष्टि कराई है। मनोवैज्ञानिकता, चित्रात्मकता तथा प्रसंग-कल्पना की मार्मिकता उनके इस रस-विधान की भारी विशेषता है। संयोग-अन्तर्गत रूप-लिप्सा, हास-परिहास, हाव-भाव, स्पर्श-सुख आदि अनेक पक्षों का चित्रण हुआ है। प्रकृति के विलासमय चित्र तो बिहारी ने बहुत प्रस्तुत किए हैं, किन्तु प्रकृति का संयोग-पक्ष में स्पष्ट उद्दीपनकारी चित्रण नहीं किया है। नायक-नायिकाओं की चेष्टाओं, हाव-भावों आदि से उद्दीपन दिखाया है।

बिहारी के संयोग-शृंगार में सुरतारम्भ, सुरत, विपरीत रति और सुरतांत के स्थूल और अश्लील चित्र भी कुछ पाए जाते हैं। इनसे बिहारी की विलास-प्रिय स्थूल प्रवृत्ति ही स्पष्ट होती है। कृष्ण और राधा तक की विपरीत रति का वर्णन करके बिहारी ने सूर के आराध्य कृष्ण और राधा को लौकिक नायक-नायिका बनाकर शृंगार की गंदी नाली में ही खड़ा कर दिया है।

बिहारी ने 'दीपक को फूंक मारने', 'गात्र नख-रेख', 'प्रिय-खण्डित अधर' इत्यादि के अनेक चित्र प्रस्तुत किए हैं!

बिहारी ने स्वकीया, परकीया, खण्डिता, गर्भवती नवोढ़ा, प्रौढ़ा आदि सभी प्रकार की नायिकाओं और उनके प्रेम को चित्रित किया है। खण्डिता की रूढ़ोक्तियाँ बिहारी-सतसई के सौन्दर्य को बिगाड़ती ही हैं।

वियोग-श्रृंगार

श्रृंगार को 'रसराज' पद देने का अधिकतर श्रेय विप्रलम्भ—वियोग को है और यही कारण है कि प्राय: सभी रस-सिद्ध कलाकारों ने संयोग-पक्ष की अपेक्षा वियोग को अधिक महत्त्व दिया है। हम देखते हैं कि हृदय-वीणा की जितनी मधुरतम तान वियोग की तीव्र करुणा में—विरह की उष्ण आहों तथा तड़पनों में—छिड़ती है, उतनी संयोग के मधुर आनन्द-क्षणों में नहीं! अवश्य ही "वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।" एवं "Our Sweetest songs are those that tell of saddest thoughts." तथा एक दूसरे अंग्रेजी कवि के शब्दों में "And love is loveliest when emblemed in tears."—अर्थात् अश्रु-परिलक्षित होने पर ही प्रेम सौन्दर्य की पराकोटि में पहुँचता है। सोना प्रबल अनल-ताप में जब खूब तप जाता है, तब कहीं कुन्दन बनता है। प्रेम की भी असलियत सिद्ध करने की कसौटी विरहानल की भट्टी ही है।

वियोग-चित्रण में खिलवाड़ : बिहारी पर दरबारी वातावरण का प्रभाव था। खेद है कि उनकी वृत्ति संयोग के हास-हुलास में ही रमी रही। वियोग-पक्ष का विशेष अनुभूतिपूर्ण चित्रण वे नहीं कर सके। शारीरिक विलास-वासना के कारण, विरह की तीव्र अनुभूति वे प्रकट नहीं कर सके। उनकी अनेक विरहोक्तियाँ खिलवाड़ मात्र बन कर रह गई हैं। अतिशयोक्ति और चमत्कार का सहारा लेकर उन्होंने कई दोहों में विरह का ऐसा ऊहात्मक वर्णन किया है, जिससे ताप की माप-जोख का भाव ही हृदय में उठता है, व्यथा के गांभीर्य का नहीं। विरह-ताप के कारण नायिका का शरीर इतना जलता है कि—

> **आड़ैं दै आले वसन, जाड़ैहूँ की राति।**
> **साहस कै कै सनेह-बस सखी सबै ढिंग जाति।।**

जाड़े की रात में भी विरह से जलती नायिका के पास सखियाँ गीले कपड़ों की ओट देकर जाती हैं। नायिका का कैसा मजाक उड़ाया गया है!

यह ताप साधारण नहीं। इसके कारण, माह मास के जाड़े के कड़ाके में भी गाँव-भर में लूएँ चलती रहती हैं। नायक विदेश में बैठा-बैठा ही नायिका के जीने का अनुमान कर लेता है—

> **सुनत पथिक मुंह माह-निसि, चलहि लुवैं उहि गांम।**
> **बिन बूझै बिनही कहै, जिवत विचारी बाम।।**

इतना ताप हो, तो स्वास्थ्य कैसे ठीक रह सकता है? जीने का ही आश्चर्य है।

नायिका क्षीण हो गई है। उसकी कृशता के वर्णन में भी बिहारी ने जादू के चमत्कार दिखाए हैं। वह हाथ के मसले हुए फूल की तरह कुम्हला गई है। सखियाँ भी मुश्किल से पहचान पाती हैं :

अब तो मृत्यु भी—आँखों पर चश्मा लगाकर—उसे ढूंढ़ नहीं सकती—

करी विरह ऐसी तऊ, गैल न छाड़तु नीच।
दीनेंहूँ चसमा चखनि, चाहै लहै न मीच॥

गनीमत यही है कि बिहारी ने उर्दू-कवियों की अपेक्षा फिर भी स्वाभाविकता का कुछ ध्यान रखा है। एक उर्दू शायर की उक्ति देखिए—

इन्तहाए लाग़री से जब नज़र आया न मैं।
हंस के वो कहने लगे, बिस्तर को झाड़ा चाहिए॥

इन पुर्साने-हाल (हाल-चाल पूछने वालों) के साथ पाठक की भी हँसी ही यहाँ फूटती है, वेदना की अनुभूति तथा सहानुभूति का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

ताप का संताप तो था ही, अश्रु-जल की बाढ़ ने भी दूर-दूर तक ऊधम मचा दिया। नायिका के अश्रुजल की बाढ़ से घर-घर, द्वार-द्वार पर नदी बह निकली है। कितना अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन है! इसे खिलवाड़ और मजाक के सिवा क्या कहा जाय?

किन्तु उपर्युक्त विवेचन का यह अभिप्राय नहीं कि बिहारी अपने वियोग-चित्रण में सर्वत्र असफल रहे हैं, और उनकी सतसई में स्वाभाविक वियोग-वर्णन का अभाव है। बिहारी ने जहाँ-जहाँ परम्परा और परिपाटी का बंधन छोड़ दिया है, वहाँ उनका वियोग-चित्रण सरस और स्वाभाविक है।

विरह के प्रायः चार रूप होते हैं—पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण-विप्रलंभ। बिहारी ने वियोग-पक्ष में मान का वर्णन नहीं किया। मान के जितने भी चित्र 'सतसई' में हैं, वे सब अल्पकालिक मान के हैं, जो संयोग को ही उत्तेजित करता है, और शीघ्र मिलन का हेतु बनता है।

बिहारी ने पूर्वराग के कुछ अत्यन्त मार्मिक, स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक चित्र उपस्थित किए हैं। नायक की व्याकुलता-जन्य अस्तव्यस्तता का एक चित्र हम अनुभाव-विधान-प्रसंग में दिखा आए हैं। "लड़ैते दृगों" ने नायक की सुध-बुध ही खो दी है। नायिका पर "दृगों की लगालगी" का प्रभाव अधिक होता है। उसकी दशा कहीं चकवी-जैसी हो जाती है, कहीं रूप-दर्शन की प्यास से वह व्याकुल रहती है। इन नयनों ने तो "बला ही उपजा" दी है—

नेह न नैननि कूं कछू, उपजी बड़ी बलाइ।
नीर भरे नित प्रति रहैं, तऊ न प्यास बुझाइ॥

"आँखों की लगालगी में"—"पलक-दृगों के लगने पर पलक पल-एक भी नहीं लगती"। नींद हराम हो गई है। इस प्रकार बिहारी ने रूप-लिप्सा के साथ-साथ

पूर्वराग-जन्य व्याकुलता का भी अच्छा चित्रण किया है।

परिमाण की दृष्टि से बिहारी ने प्रवास का ही अधिक वर्णन किया है। वास्तव में यही वियोग का प्रकृत रूप है। इसमें नायिका की प्रमुख रूप से तीन अवस्थाओं के वर्णन होते हैं—1. प्रवत्स्यत्पतिका, 2. प्रोषित-पतिका, 3. आगतपतिका। प्रवास-अन्तर्गत संदेश, पत्र आदि का प्रसंग तथा दस या ग्यारह काम-दशाओं का भी वर्णन होता है। बिहारी ने प्रवासगत विरह के सभी रूपों का वर्णन किया है। प्रवत्स्यत्पतिका का चित्रण निम्न पंक्तियों में कितना स्वाभाविक तथा हृदय-स्पर्शी है—

अजौं न आए सहज रंग, बिरह दूबरे गात।
अबही कहा चलाइति, ललन चलन की बात॥

यह नायिका पूर्व-विरहिणी है। बड़ी कठिनाई से तो उसे अब संयोग प्राप्त हुआ था। विरह में क्षीण हुए अंगों में सहज रंग भी नहीं आने पाया था कि प्रिय ने फिर से जाने की बात चला दी।

परकीया नायिका भी "ललन चलन" सुनने से छलकने वाले आँसुओं को सखि-समाज से छुपाती है।

ऊपर वर्णित ताप, क्षीणता, अश्रु-प्रवाह आदि के उदाहरण सभी प्रोषितपतिका के विरह से सम्बन्ध रखते हैं। उनमें जितना स्वाभाविकता, मनोवैज्ञानिकता तथा गांभीर्य का अभाव है, पत्रिका तथा संदेश के वर्णन उतने ही अधिक स्वाभाविक, मनोवैज्ञानिक और मार्मिक बन पड़े हैं। नायिका बेचारी संदेश क्या दे? भाव इतने अपार और गम्भीर हैं कि वह अपनी परिस्थिति को कागज पर अंकित करे तो कैसे? कागज की सीमा में अपने संदेश को कैसे बांधे? किसी के मुँह से कह-लाए तो लोक-लाज की दीवार सामने आ खड़ी होती है। बस "दिल को दिल से राहत होती है।" वह यही संदेश भेजती है कि सच्चा प्रेम है तो तेरा दिल ही मेरे दिल की सब बात जानता होगा—

कागद पर लिखत न बनत, कहत संदेस लजात।
कहि है सब तेरो हिय, मेरे हिय की बात॥

पतंग की ड़ोर तो उड़ाने वाले के हाथ में ही रहती है! जब दिल की डोर हमारे पास है, तो बताओ तो सही, हमसे दूर कैसे जा सकते हो!

और हृदय के इसी दृढ़विश्वास पर बिना अक्षरों की कोरी पत्री ही नायिका भेज देती है। उसे विश्वास है कि जिस प्रकार मैं व्याकुल हूँ, उसी प्रकार नायक भी व्याकुल होगा। फिर लिखा-पढ़ी की आवश्यकता ही क्या? मजे की बात देखिए, यह अक्षर-हीन कोरी पांति ही बांची, सुनी और समझी जाती है—

बिरह-बिकल बिनु ही लिखी, पांति देई पठाइ।
आंक विहीनयौहि सुचित सुनै बांचै जाइ॥

विरह की दशा में प्रिय के पास से आने वाली वस्तु में अनुराग की कितनी तीव्र गंध होती है ! पत्रिका ही नायिका के लिए किस प्रकार प्रिय-स्वरूप बन जाती है, इसका श्रेष्ठतम उदाहरण "हो गई श्याम श्याम की पांति" में मिलता है—

निरखत अंक श्यामसुन्दर के बार-बार लावति छाती।
अँसुवन जल कागद मसि मिलि कै हो गई श्याम श्याम की पांति ।।

—सूरदास (भ्रमरगीत)

इसी से कुछ मिलता-जुलता उदाहरण बिहारी के निम्न दोहे में पाया जाता है। नायिका की हृदयगत हलचल का कैसा चित्रात्मक वर्णन बिहारी ने किया है ! उसके अनुभावों से उसकी मनोवैज्ञानिक अवस्था कितनी स्पष्ट हुई है—

कर लै चूमि, चढ़ाइ सिर, उर लगाइ भुज भेंटि।
लहि पांती पिय की लखति, बांचति धरति समेटि ।।

नायिका की चेष्टाओं का यह अनूठा चित्रात्मक, मनोवैज्ञानिक वर्णन ही बिहारी के अनुभाव-विधान को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करता है।

बिहारी ने आगतपतिका की उमंग और उत्साह का भी मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। प्रतीक्षा में बैठी नायिका पत्ता खड़कने की आवाज सुनकर ही प्रिय-आगमन की संभावना कर बैठती है। आँख ने फड़क कर शुभ शगुन की सूचना भी दे दी। बस नायिका का हृदय मिलनोल्लास से भर उठा—

मृगनैनी दृग की फरक, उर उछाह तन फूल।
बिनहि प्रिय-आगम उमगि, पलटन लगी दुकूल ।।

प्रतीक्षा में नायिका को "आवत आवत की घरी विधि की घरीसु"—घण्टा—जितनी लम्बी अनुभव होती है।

बिहारी ने विरह-वर्णन में सब काम-दशाओं को भी प्रकट किया है। इनमें व्याधि के वर्णन सर्वाधिक हैं, जो ताप, क्षीणता, व्याकुलता के रूप में ऊपर दिखाए जा चुके हैं। अभिलाषा, चिंता, स्मृति, उन्माद आदि के कुछ उदाहरण और देखिए—

स्मरण— जहाँ-जहाँ ठाढौ लख्यौ, स्याम सुभग सिरमौर।
उनहुं बिन छिन गहि रहत, दृगन अजौं वह ठौर ।।

ऊपर आगतपतिका के उदाहरणों में अभिलाषाका सुन्दर, स्वाभाविक रूप दिखाई देता है। बिहारी ने वियोग-पक्ष में प्रकृति का उद्दीपनकारी रूप भी अच्छा प्रकट किया है। वर्षा-ऋतु में काली घटाएँ विरहिणी को मारे जा रही हैं। उसकी चिंतापूर्ण कातरता का वर्णन देखिए—

कौन सुनै कासों कहौं, सुरत बिसारी नाह।
बदाबदी जिय लेत हैं, ये बदरा बदराह ।।

विरहिणी को बादल ही नहीं तड़पाते, चांद और उसकी शीतल चांदनी भी जला

रही है। व्याकुलता में उसे सन्देह होता है कि लोग इसे शीतल क्यों कहते हैं !

इस प्रकार बिहारी के श्रृंगार-रस में बाह्य-पक्ष की प्रधानता रही है, हृदय की आन्तरिक प्रेम-अनुभूतियों को वे कम छूते हैं। उनके श्रृंगार-वर्णन में घनानन्द, ठाकुर, आलम आदि कवियों-जैसी गंभीर विरहानुभूति नहीं आ पाई। सौन्दर्य-चित्रण और आकर्षण की आरम्भिक अनुभूतियों में जो कमाल उन्हें हासिल हुआ है, वह प्रेम की तीव्र-व्यंजना में नहीं। उनके श्रृंगार में विभाव-पक्ष की प्रधानता है। सूर के भ्रमरगीत-जैसी भाव-व्यंजना कम ही दिखाई देती है। फिर भी वाग्विदग्धता, चमत्कार-प्रियता, मौलिक प्रसंग-उद्‌भावना, समास-शक्ति आदि बिहारी के काव्य की ऐसी विशेषताएँ हैं, जो श्रेष्ठ कवियों में उनका स्थान निश्चित करती हैं। काश ! इस कवि-प्रतिभा का सदुपयोग बिहारी जीवन की उदात्त अनुभूतियों के चित्रण में करते तो उनका श्रृंगार-रस चित्रण ऐकान्तिक और सीमित प्रेम-श्रृंगार न रहकर उदार, व्यापक और उदात्त मानवीय संवेदनाओं से पूर्ण हो जाता।

●●

8

गुरु नानक की समन्वय-साधना

परस्पर विरोधी दो अतिवादों—विचारों और प्रवृत्तियों—में सामंजस्य स्थापित करना ही समन्वय-साधना है। मानवीय जीवन के इतिहास में प्रायः देखा जाता है कि समय-समय पर विभिन्न धार्मिक एवं सामाजिक विचारों और प्रवृत्तियों ने ऐसे कट्टर साम्प्रदायिक अतिरेकों को प्रश्रय दिया है जो परस्पर विरोधी होने से जहाँ एक ओर धार्मिक एवं सामाजिक विद्वेष और कलह का कारण बने हैं, वहाँ दूसरी ओर उन अतिवादी प्रवृत्तियों ने समाज और जातियों को अज्ञान अंधकार के गर्त में डालकर रूढ़िवादी बना दिया और इस प्रकार मानवीय सांस्कृतिक विकास को जबरदस्त क्षति पहुंचाई।

अपने समय में महात्मा बुद्ध ने अतिरेकों को खण्डित करने के लिए ही मध्य मार्ग का प्रचार किया था। उनका कहना था कि वीणा के तारों को यदि अधिक कस दिया जाय तो वे टूट जाते हैं और यदि उन्हें ढीला रखा जाय तो उनसे कोई स्वरलहरी नहीं प्रकट हो सकती। इसी से दो अतिमात्राओं को त्यागकर मध्यमार्ग अपनाना ही श्रेयस्कर है। वीणा के तारों की समरस स्थिति—अर्थात् न अधिक खिंचाव और न अधिक ढीलापन—से ही संगीत का मधुर स्वर निस्सृत हो सकता है।

गुरु नानक का युग अनेक अतिमात्राओं, विरोधी विचारों और प्रवृत्तियों का युग था। देश के धार्मिक एवं सामाजिक जीवन में अनेक प्रकार की रूढ़ियाँ, गली-सड़ी परम्पराएँ और अंधविश्वास व्याप्त थे। वर्गों, जातियों और सम्प्रदायों में बंटा समाज अपने-अपने अतिरेकों से चिपटा परस्पर वैर-विरोध, द्वन्द्व और संघर्ष में जुटा था। नानक का जन्म युग के इन विरोधों का सामंजस्य करने के लिए ही हुआ था। उसने देख लिया था कि संसार में मिथ्या का राज्य है। अनेक प्रकार की विरोधी असंतुलित और पाखण्डपूर्ण प्रवृत्तियों ने लोगों को घेर रखा है। अतः नानक ने इन अतिवादों और मिथ्या के विरुद्ध अभियान छेड़ दिया। समन्वय का झंडा हाथ में लेकर उन्होंने आसाम से मक्का तक और कश्मीर से सिंहल तक

अपनी दिग्विजय-यात्रा की ।

गुरु नानक मध्यमार्ग के हामी थे। न जीवन में अति आसक्ति का मायाबद्ध मार्ग उन्हें रुचिकर था जिसकी भर्त्सना उन्होंने खूब की, न वैराग्य, आत्मपीड़न और तपस्या का कष्टकर मार्ग वांछित था। उस युग में कुछ साधक इन्द्रियपरक मार्ग से अपने को दूर रखने के लिए वनों और आश्रमों में तप के अभ्यासी बनते थे। ऐसे व्यक्तिगत साधकों से नानक को कोई सहानुभूति न थी। घोर पंथियों ने तो इन्द्रियदमन की बड़ी ही बीभत्स क्रियाएं प्रचलित कर रखी थीं। दूसरी ओर ऐसे सम्प्रदाय भी प्रचलित थे जो भोग की अतिशयता के द्वारा निवृत्ति की कल्पना करते थे। तांत्रिकों ने भोग-अतिरेक द्वारा भोग के प्रति अरुचि उत्पन्न करने का मार्ग अपना रखा था। नानक ने अनुभव कर लिया था कि साधना के ये दोनों ही अतिरेक सत्य से बहुत दूर हैं। सत्गुरु का अनुभव इन अतिमात्राओं से संभव नहीं।

वीणा के तारों की तरह हमारे शरीर और मन की विपंची को संतुलित अवस्था में रखना ही उचित है। न अधिक खिचाव श्रेयस्कर है, न ढीलापन। न तो शरीर को उपवासों, क्लेशों, कठोर तपस्या से नष्ट करना ठीक है, न कुत्सित इन्द्रिय-सुखभोगों से मानसिक संतोष और संतुलन बिगाड़ना ही उचित है। संत दादू ने कहा था, न तो हम सर्वत्याग का विचार रखते हैं, न सर्वसंग्रह का। हम तो मध्यभाव के सेवी हैं जो मुक्ति का द्वार है—

ना हम छांड़ैं न ग्रहैं, ऐसा ज्ञान विचार।
मद्धि भाव सेवैं सदा, दादू मुकति दुवार ॥[1]

वास्तव में यह मन ही भटकता है, शरीर-इन्द्रियों का इतना दोष नहीं। यदि मन संतुलित हो सामंजस्य-साधना में प्रवृत्त हो जाय तो अतिरेकता स्वयं ही समाप्त हो सकती है। भोग के अतिरेक से मन संतुलित नहीं हो सकता। और यह भी एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि वनों और आश्रमों में पलायन कर जाने से भी मन के विकार समाप्त नहीं हो सकते क्योंकि जब तक विकारों का सामना न हो तब तक उन पर विजय का दावा कैसे किया जा सकता है? इसीसे गुरु नानक आदि हमारे इन संतों ने मन पर ही सारी साधना केन्द्रित कर दी। पंचकोशों में इन्होंने मनोमय कोश पर बल दिया। मनोमय कोश की सिद्धि से ही आनन्दमय कोश की सिद्धि संभव है। अन्नमय कोश का भी इन्होंने निषेध नहीं किया, अपितु उसी के मार्ग से मनोमय कोश की उपलब्धि का मार्ग प्रचारित किया। नानक की साधना मन-मंदिर की साधना है। मन ही इस समन्वय का केन्द्र-स्थल है। मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर

1. संत बानी, भाग 1, पृ० 170।

आदि बाह्य स्थान तो उपक्रम-मात्र हैं; असली धुरी तो मन है, असली मंदिर-मस्जिद तो हृदय के भीतर ही है :

यहु मसीत यहु देहरा, सतगुरु दिया दिखाइ।
भीतर सेवा बंदगी, बाहर काहे जाइ॥ —दादूवाणी

मन की यह साधना आसान नहीं है। शूरवीर संत ही इसे सिद्ध कर सकता है। मन सध जाने पर इधर-उधर नहीं भटकता। वह सरोवर के कीच में भी कमल की तरह अपना सिर ऊँचा और बेदाग रखता है। चरनदास ने भी नानक की तरह जल-कीच भीतर रहने वाले निर्लिप्त कमल की तरह संसार में रहने का संदेश दिया है :

जग माहीं ऐसे रहो, ज्यों अम्बुज सर मांहि।
रहै नीर के आसरे, पै जल छूवत नांहि॥ —संत वानी

मन की सामंजस्य-साधना के कारण ही गुरु नानक गार्हस्थ्य जीवन बिताते हुए ही मोक्ष प्राप्त कर गए। प्राय: सभी निर्गुणिया संत गृहस्थ थे। गुरु नानक ने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की कि सतगुरु की इस बात में बड़ी बड़ाई है कि मैंने बाल-बच्चों में रहते ही सद्‌गति प्राप्त कर ली :

सतिगुरु की असी बड़ाई, पुत्र-कलत्र विचै गति पाई॥

शरीर को व्रत आदि द्वारा भूख का कष्ट देने वाले तपस्याभ्यासी साधकों को फटकारते हुए गुरु नानक स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि जिसने अन्न नहीं खाया, उसका स्वाद नहीं जाना, वह द्वैतभावना के कारण बहुत कष्ट उठाता है। जो खाता-पीता-पहनता नहीं, मौनव्रती सतगुरु के बिना सोया ही रहता है :

अन्न न खाइआ, सादु गँवाइआ,
बहु दुख पाइआ दूजा भाइआ!
वसत्र न पहिरै, निसि दिन कहिरै,
मौन विगूता, क्यूं जाने गुरु बिन सूता॥

जो व्यक्ति जीवन की आशाओं-तृष्णाओं के बीच ही नि:स्पृह रहता है और सच्चे प्रभु का ध्यान लगाता है, वही उसी परमात्मा की प्राप्ति कर सकता है :

आसा मांहि निरास बुलाये।
निहचै नानक करते पाये।

इस प्रकार नानक की समन्वय-साधना मूलत: मन की सामंजस्य या संतुलन-साधना है। हर तरह के अतिरेक से दूर रख मन को संतुलित रखना नानक की अध्यात्म-साधना का मूल आधार है। इसके बिना न सांसारिक सुख-संतोष संभव है और न अध्यात्म की सिद्धि हो सकती है। द्विविधा में तो न माया मिलती है, न राम।

जीवन की राह से गुजरकर ही मुक्ति चाहने वाले नानक की भक्ति-भावना

में ज्ञान, कर्म, शील और सदाचार का समन्वय है। ज्ञान के बिना जीव कस्तूरी-मृग की तरह भटकता रहता है। वह नहीं जान पाता कि सत्य परमात्म तो उसी में रमा हुआ है :

गिआन विहूणी भवै सवाई।
साचा रवि रहिआ लिवलाई।। (नानक वाणी, मारू-सोलहे 14)

ज्ञानोपलब्धि या आत्मानुभूति होने से जीव ही ब्रह्म बन जाता है :

जिनी आतम चीनिआ परमातमु सोई।
(ना० वा० आसा, असटपदी 20)

कबीर, नानक, दादू आदि संतों ने ज्ञान के पाखण्ड का भी विरोध किया और अपने युग के ऐसे दंभी और ढोंगी ज्ञानियों की खूब खबर ली जो अपने अभिमान में ही अपने को ब्रह्म जताने लगते हैं। कबीर ऐसे झूठे ज्ञानियों पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि ऐसे दंभी वैरागी से तो संसारी भला जो परमात्मा से डरता रहता है :

ज्ञानी मूल गंवाईया, आपण भये करता।
तायें संसारी भला, जो रहे डरता।।
(कबीर ग्रंथावली, पृ० 41)

अत: ज्ञान से नानक का अभिप्राय था परमात्मा का अनुभव जो उसकी भक्ति में प्रवृत्त करता है। इसी प्रकार कर्मयोग भी उन्हें वही मान्य है जो भक्तियोग के अनुकूल हो। इसी से नानकदेव जी ने बाह्य कर्मकाण्ड की निंदा की : जप-माला, छापा-तिलक, तीर्थ-व्रत आदि सब 'फोकट' कर्म हैं यदि आत्मज्ञान द्वारा सच्चे ब्रह्मकर्म-मार्ग अर्थात् सच्ची भक्ति को नहीं अपनाया गया :

गलि माला तिलकु ललाटं। दुइ धोती वसत्र कपाटं।।
जे जाणसि न ब्रह्मं करमं। सभि फोकट निसचउ करमं।।
(ना० वा० आसा की वार)

हठयोग को भी इन संतों ने सहजयोग के रूप में ग्रहण कर अपनी भक्ति-साधना से समन्वित किया। नानक को योग वहीं तक मान्य है जहाँ यह भक्ति का सहायक हो। बिना भक्ति के प्राणायाम, नेवली, आसन आदि क्रियाएँ व्यर्थ हैं, उनकी सार्थकता भक्ति की दृष्टि से ही है :

चाड़सि पवनु सिंघासन भीजै।
निउली करम खट करम करीजै।।
राम नाम बिनु बिरथा सांसु लीजै।।
(ना० वा० रामकली, असटपदी 5)

नानक ने दो प्रकार के कर्म बताए हैं—1. 'किरत करम' अर्थात् जीवन और लोक-व्यवहार में किये जाने वाले कर्म; और 2. 'ब्रह्म करम' अर्थात् हरि-भक्तिपरक

मोक्षदायक कर्म। 'किरत कर्म' भी भले और बुरे दो प्रकार के होते हैं। कर्म-पट्टी पर मन-रूपी मसि से दो प्रकार की लिखावटें आती हैं—

करणी कागदु मनु मसवाणी, बुरा भला दुई लेख पए।

नानक ने अच्छे कर्मों को ही भक्ति के अनुकूल माना है। इस प्रकार शील-सदाचार या नैतिकता का भी उनकी भक्तिसाधना से समन्वय स्थापित हुआ है। सच तो यह है कि गुरु नानक देव ने धर्म और समाज के सभी तत्त्वों, सभी विचारों और समस्त प्रवृत्तियों को प्रभु-भक्ति-साधना में समन्वित कर सब क्षेत्रों के अतिरेकों को दूर किया, सब तत्त्वों के अतिचार और मिथ्यात्व को समाप्त करके उन्हें भक्ति के समन्वित मार्ग पर एकत्रित किया।

गुरु नानक निर्गुणवादी थे, पर उन्होंने अपने प्रभु के निर्गुण और सगुण दोनों रूपों-नामों का प्रयोग किया है। 'निरंजन' 'निरंकार', 'अगम', 'परब्रह्म', 'अयोनि' आदि निर्गुण नाम हैं, तो 'राम', 'केशव', 'गोविन्द', 'मुरारि', 'हरि' आदि सगुण-सूचक नाम हैं। उन्होंने अवतारवाद का समर्थन तो नहीं किया, पर तात्त्विक और व्यावहारिक दृष्टि से उन्होंने निर्गुण निराकार और सगुण मूर्त्तिमंत का समन्वय अवश्य किया है। वही निर्गुण ब्रह्म स्वयं सगुण रूप में मूर्तिमंत होता है :

अविगतो निरमाइलु उपजे निरगुण ते सरगुण थीआ॥

अपने विराट् रूप में वह सृष्टि के कण-कण में व्याप्त होता है। वह स्वयं सृष्टि का निमित्त और स्वयं ही उपादान कारण है। इस विराट् का सगुण स्वरूप इन पंक्तियों में व्यंजित हुआ है :

गगन मै थालु रविचन्द दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती।
धूपु मलआनलो, पवणु चंवरो करै सगल बनराइ फूलंत जोती॥

(ना० वा० धनासरी 9)

वही एक तत्त्व है, वही एक परमात्मा है। उसे केशव, ब्रह्म कहो या अल्लाह, कादिर, करीम; राम कहो या रहीम, बात एक ही है। सब दुनिया आनी-जानी है, एक वही नाम क़ायम-दायम है :

अलाहु अलखु अगम कादरु करणहारु करीम।
सभ दुनी आवण-जावणी मुकामु एकु रहीमु।

(ना० वा० सिरीराग, असटपदी 17)

दार्शनिक दृष्टि से नानक के ब्रह्म-सम्बन्धी विचारों में ब्रह्मवाद और एकेश्वरवाद दोनों का समन्वय दिखाई देता है।

अपने इस प्रभु के प्रति भक्ति व्यंजित करने में गुरु नानक ने सभी सम्बन्ध और नाते माने हैं। उनकी भक्तिसाधना में सेवक-सेव्य भाव भी है, और सख्य, वात्सल्य एवं माधुर्यभाव भी पाया जाता है। उन्होंने अपने प्रभु को स्वामी, समर्थ, दाता और स्वयं को सेवक और भिखारी कहा है, तो अनेक पदों में उनकी आत्मा

अपने प्रभु पति की पत्नी भी बनी है। उसमें भक्त का दैन्य भी है और विरह-मिलनमय प्रेम की मर्म-स्पर्शी व्यंजना भी है। उनकी भक्ति-साधना में एक ओर नवधा भक्ति के सभी अंग तथा सद्‌गुरु की प्राप्ति, सत्संगति आदि सभी साधन पाये जाते हैं, दूसरी ओर विरह-मिलनमय प्रेम की सभी रहस्यानुभूतियां हैं। इस प्रकार नानक की भक्ति अनेक तत्त्वों की समन्वय-साधना है।

नानक-वाणी की एक बड़ी विशेषता यह है कि उसमें तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक आदि सभी परिस्थितियों के प्रति जागरूकता पाई जाती है। राजनीतिक जागरूकता तो नानक-जैसी अन्य किसी संत में दिखाई नहीं देती। उन्होंने तत्कालीन राजनीतिक अतिचारों का घोर विरोध किया। निम्न पंक्तियों में राजाओं और उनके कर्मचारियों का नग्न चित्र देखिए :

राजे सीह मुकदम कुते। जाइ जगाइन बैठे सुते॥
चाकर नहदा पइन्हि घाउ। रतु पितु कुतिहो चटि जाहु॥
जिथे जीआं होसी सार। नकीं वढ़ीं लाइतबार॥
(ना० वा० मलार 13)

अर्थात् "इस समय राजागण सिंह के समान (हिंसक) तथा उनके मुकद्दम (चौधरी) कुत्ते के समान लालची हो गए हैं। वे सोची हुई भोली-भाली प्रजा का, अपने तीव्र नाखूनों से घावकर, खून चूस रहे हैं। धर्मराज के यहाँ जब उनके कर्मों का हिसाब होगा तो उन 'लाइतबारों' की नाक काट ली जाएगी।"

नानक ने अपने युग की बुराइयों का चित्रण कर भलाई का मार्ग सुझाया। उस 'कूड़' की अमावस्या में उन्होंने 'सचु' का चन्द्रमा ढूंढ़ निकाला। उनका यह समस्त प्रयास देश के जीवन में समन्वय और सौहार्द की स्थापना का ही प्रयास था, जिसे उस युग के अंधे शासकों, मूढ़ धर्म-ध्वजियों, जाति-वर्ण के दंभियों और मूर्ख कर्म-काण्डियों ने अच्छी तरह सुन लिया होता तो हिन्दू-मुसलमानों में खून-खराबा, द्विजों-शूद्रों में मनोमालिन्य, शासक-शासितों में विरोध-संघर्ष सब मिट गया होता और जीवन के सभी क्षेत्रों में सामंजस्य, सौहार्द और सुख-शांति की स्थापना हो जाती।

हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य ने देश के जीवन को अभिशप्त कर रखा था। गुरु नानक ने कट्टर मुसलमान को भी सच्चे मनुष्य-रूप मुसलमान बनने का उपदेश दिया और कट्टर ब्राह्मण को भी मनुष्यता की राह दिखाई। मांझ की वार के 10वें, 11वें और 12वें श्लोकों में मुसलमान को सच्चा मुसलमान बनने की विधि बताई है :

मिहर मसीत सिदकु मुसला हकु हलालु कुराणु।
सरम सुनति सीलु रोजा होहु मुसलमानु॥
(ना० वा०, मांझ की वार 10)

अर्थात् "दया-भाव को मस्जिद बनाओ, श्रद्धा को मुसल्ला, हक की कमाई को कुरान समझो और लज्जा को सुन्नत मानो। शील-सदाचार को रोजा बनाओ। इस प्रकार सच्चे मुसलमान बनो।"

ब्राह्मण को उन्होंने इस प्रकार उपदेश दिया—

सो ब्राह्मणु जो ब्रह्म बिचारै। आपि तरै सगलै कुलतारै।।

(धनासरी 7)

नानक ने न-केवल हिन्दू-मुसलमानों में समन्वय स्थापित करने की चेष्टा की, अपितु स्वयं हिन्दुओं के विभिन्न वर्गों और जातियों में भेद-भाव दूर किया। उन्होंने स्पष्ट घोषणा की कि जाति-पाँति सब ढोंग है, सब एक ही ज्योति के रूप हैं, आगे अर्थात् आदि युग में जाति-पाँति का कोई भेद नहीं था :

जाणहु जोति न पूछहु जाती आगै जाति न है।

इस प्रकार गुरु नानक ने सवर्ण हिन्दुओं के अतिचार का विरोध किया। शूद्रों को नीच समझा जाता था। सभी धार्मिक और सामाजिक अधिकारों से उन्हें द्विजों ने वंचित कर रखा था। नानक ने इस शोचनीय स्थिति का विरोध कर दोनों वर्गों में सौहार्द उत्पन्न करने की चेष्टा की।

निष्कर्षत: गुरु नानक देव जी ने न-केवल अपनी भक्ति-साधना को सब उपयोगी तत्त्वों से समन्वित किया, अपितु युग के राजनीतिक, धार्मिक, जातिगत, सामाजिक आदि सभी अतिचारों को खण्डित कर जीवन के हर क्षेत्र में समन्वय और सौहार्द उत्पन्न करने की चेष्टा की। उन्होंने मानवता के कल्याणकारी तत्त्वों की प्रतिष्ठा की। उन्होंने मानव-मानव के बीच भ्रातृभाव, सहृदयता और सहिष्णुता की उदात्त भावनाओं का प्रचार और प्रसार किया। उन्होंने सत्य, संयम, सदाचार, विवेक, भाईचारा, दया, धर्म आदि उच्च गुणों का उपदेश देकर मानवता के उच्च सांस्कृतिक निर्माण का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। निस्संदेह नानक अपने युग के एक ऐसे महान् समन्वयकारी धर्मगुरु, समाज-सुधारक और सहृदय भक्त थे जो युग-युग तक मानवता को सच्ची राह पर चलने की प्रेरणा दे जाते हैं।

●●

9

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त

1. युग-प्रतिनिधि राष्ट्रकवि
2. प्रमुख रचनायें
3. भावों की विविधता
4. नारी-भावना
5. गार्हस्थ्य चित्रण
6. प्रकृति-चित्रण
7: स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति
8. खड़ी वोली कविता के जनक
9. खड़ी वोली काव्य-भाषा के उन्नायक
10. श्रेष्ठ प्रबंधकार
11. काव्य-शैलियों के निर्माता
12. उपसंहार

युग-प्रतिनिधि राष्ट्रकवि

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त समग्र आधुनिक हिन्दी कविता के प्रतिनिधि कवि हैं। यद्यपि गुप्तजी ने द्विवेदी काल के आरंभ अर्थात् बीसवीं शती के प्रारम्भ से ही काव्य-रचना आरंभ की तथापि उनकी 'भारत भारती' आदि आरंभिक रचनाएँ विषय-भावबोध तथा भाषा-शैली की दृष्टि से उन्नीसवीं शती के भारतेन्दु युग की नयी कविता से भी प्रवृत्ति-साम्य रखती हैं। भारतेन्दु काल में अधिकांशत: काव्य-प्रवृत्ति पूर्वयुगों के भक्ति और शृंगार-काव्य की परम्परागत प्रवृत्ति ही बनी रही। भारतेन्दु काल में जो थोड़ी-सी कविताएँ नये ढंग की रची गईं, उनमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आदि हमारे इस युग के कवियों ने अतीत-गौरव का अभिमान, वर्तमान दुर्दशा की खिन्नता तथा सामाजिक-धार्मिक बुराइयों के प्रति व्यंग्य की भावना प्रकट की। गुप्त जी की 'भारत भारती' तथा अन्य स्फुट कविताओं में यही प्रवृत्ति दिखाई देती है। अपने 'भारत दुर्दशा' नाटक में भारतेन्दु ने कहा था—

आवहु सब मिलि रोवहु भारत भाई, हा, हा, भारत दुर्दशा देखि न जाई।

'भारत भारती' में गुप्त जी ने पुकार लगाई—

हम कौन थे, क्या हो गए हैं, और क्या होंगे अभी,
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएँ सभी।

भारतीय समाज में राजनैतिक जागरण से पूर्व जो सामाजिक चेतना हमारे धर्म-सुधारकों, समाज-सुधारकों—जैसे, राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द, विवेकानन्द आदि तथा साहित्यकारों ने जगाई थी, उसका पूर्ण प्रतिनिधित्व मैथिली-शरण गुप्त की 'भारत भारती' रचना में पाया जाता है। इसमें गुप्त जी ने समाज की सभी बुराइयों, नैतिक पतन, धार्मिक ढोंग आदि सबका वर्णन किया है।

भारतेन्दु काल और द्विवेदी काल की सामाजिक चेतना ही नहीं मैथिलीशरण-गुप्त के काव्य में परवर्ती राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना का भी पूर्ण विकास दिखाई देता है। उनकी रचनाओं में बीसवीं शताब्दी का सम्पूर्ण भाव-बोध पाया जाता है। स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष-प्रेरणा, राष्ट्र-प्रेम, सभी धर्मों और जातियों की एकता, अतीत-गौरव के साथ-साथ नव सांस्कृतिक जागरण, गांधी युग की सत्य, अहिंसा, सेवा, सत्याग्रह आदि वैयक्तिक एवं राष्ट्रीय प्रवृत्तियां, युद्धकाल की हिंसाप्रवृत्ति के प्रति घृणा, किसानों-मजदूरों आदि दलित वर्ग के प्रति सहानु-भूति, स्वातन्त्र्योत्तर भारत की समस्याओं के प्रति जागरूकता आदि बीसवीं शताब्दी के भारतीय जीवन की अनेक समस्याओं एवं प्रवृत्तियों का चित्रण गुप्तजी के काव्य में पाया जाता है। उन्होंने भारत की ऐतिहासिक एवं पौराणिक कथाओं को अपनाकर जिन प्रबन्ध काव्यों की रचना की है, उनमें एक ओर तो अतीत भारतीय संस्कृति के भव्य रूप का उद्घाटन हुआ है जिससे भारतीयों में आत्म-हीनता के स्थान पर आत्म-गौरव की भावना उत्पन्न की गई है, दूसरी ओर अतीत जीवन की अनेक झाँकियों से वर्तमान जीवन को भी प्रेरित किया गया है, अतीत की अनेक समस्याएँ वर्तमान जीवन की भी समस्याएँ प्रतीत हुई हैं। इस प्रकार गुप्त जी की रचनाएँ वर्तमान जीवन को प्रेरित करने वाली सर्वथा आधुनिक रच-नाएँ हैं। एक-दो उदाहरण देखिए : 'सिद्धराज' में गुप्त जी ने सिद्धराज जयसिंह की वीरता और उदारता का चित्रण करते हुए क्षत्रियों की आपसी फूट को देश के पतन का कारण बताया है, निम्न पंक्तियों से वर्त्तमान भारतीय जीवन में एकता और सांस्कृतिक गौरव की चेतना उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है :

(1) **किन्तु क्षत्रियों की आज यादवों की गति है,**
नष्ट हो रहे हैं हम आपस में जूझ के !

(2) **हम यवनों से ठगाए नहीं जायेंगे,**
आर्य भूमि अंत में रहेगी आर्यभूमि ही।
आकर मिलेंगी यहाँ संस्कृतियाँ सब की,
होगा एक विश्व-तीर्थ भारत ही विश्व का।

'साकेत' में रावण-द्वारा अपहृत सीता को भारत की स्वातन्त्र्य लक्ष्मी के रूप में प्रकट करके स्वतन्त्रता की प्रेरणा जगाई गई है :

भारत लक्ष्मी पड़ी राक्षसों के बंधन में,
सिंधु पार वह बिलख रही है व्याकुल मन में।

गुप्त जी ने सभी धर्मों के प्रति अपनी आस्था और श्रद्धा व्यंजित करके मानव-मानव के हृदय में प्रेम और एकता का भाव जगाया है। उन्होंने इस्लाम का गौरव 'कावा और कर्वला' में, ईसाई धर्म के प्रति श्रद्धा 'अर्जन और विसर्जन' में तथा सिक्ख गुरुओं और सिक्ख धर्म का आदर 'गुरुकुल' में प्रकट किया है। हिन्दू-मुस्लिम-साम्प्रदायिकता को, जो भारत की स्वतन्त्रता में एक बड़ी बाधा बनी हुई थी, और जो आज भी देश की एक बड़ी समस्या है, दूर करने का गुप्त जी ने भरसक प्रयत्न किया। इस प्रकार गुप्त जी सच्चे अर्थों में हमारे राष्ट्रकवि हैं। भारत के सांस्कृतिक उद्‌बोध का प्रयत्न गुप्त जी की रचनाओं-जैसा अन्यत्र दुर्लभ है। उन्होंने आधुनिक हिन्दी कविता की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा का सर्वाधिक प्रतिनिधित्व किया। अतः मैथिलीशरण गुप्त आधुनिक हिन्दी कविता के प्रतिनिधि, भारत के राष्ट्रकवि तथा न-केवल आधुनिक हिन्दी कविता के जन्मदाता अपितु उसके उन्नायक प्रमाणित होते हैं।

प्रमुख रचनाएँ : गुप्त जी ने अपनी लगभग 40 काव्य-कृतियों-द्वारा आधुनिक हिन्दी कविता का भण्डार भरा। इतने परिमाण में काव्य रचने वाला आधुनिक युग में कोई दूसरा कवि दिखाई नहीं देता। गुप्त जी का कवि-जीवन अत्यंत सुदीर्घ है। बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक से लेकर सन् 1964 तक उनकी लेखनी अबाध गति से प्रवाहित रही। साठ वर्षों का यह दीर्घ काव्य-जीवन अपने में खड़ी बोली हिन्दी कविता के उद्‌भव और विकास की सम्पूर्ण कहानी समेटे हुए है। काल-क्रमानुसार गुप्त जी की प्रमुख रचनाएँ ये हैं—'रंग में भंग' (1908 ई०), 'जयद्रथ वध' (1910 ई०), 'भारत भारती' (1912), 'किसान' (1917), 'शकुन्तला' (1923), 'पंचवटी' (1925), 'अनघ' (1925), 'हिन्दू' (1927), 'त्रिपथगा', 'शक्ति', (1928), 'गुरुकुल', 'विकट भट', (1929), 'साकेत' (1932), 'यशोधरा' (1933), 'द्वापर', 'सिद्धराज' (1936), 'नहुष' (1940), 'कुणाल गीत' (1942), 'काबा और कर्बला' (1942), 'पृथिवी पुत्र', 'प्रदक्षिणा' (1950), 'जय-भारत' (1952), 'विष्णुप्रिया' (1957) आदि।

भावों की विविधता : गुप्त जी का विपुल काव्य-साहित्य विषय और भावों की विविधता का काव्य है। आधुनिक युग में इतना अधिक भाव-विस्तार शायद ही किसी अन्य कवि में दिखाई दे। शृंगार, वात्सल्य, देश-प्रेम, भक्ति, भ्रातृ-प्रेम, मानव-प्रेम, प्रकृति-प्रेम आदि उदात्त प्रेम-भाव के अनेक रूप उनकी रचनाओं में पाये जाते हैं। करुण-रस, वीररस, हास्य रस, बीभत्स रस, शांत रस आदि सभी रसों और भावों का चित्रण उनकी रचनाओं में हुआ है। भावों की सात्त्विक और पवित्र योजना के कारण उनके काव्य में भाव-उदात्तता भी कम नहीं है। 'साकेत'

जैसे प्रबन्ध में तो मानवीय भावनाओं का बड़ा ही सुन्दर प्रकाशन हुआ है। उनके काव्य में कहीं भी अरुचिकर या अश्लील वस्तु-योजना नहीं है। इस दृष्टि से वह आधुनिक तुलसीदास भी कहे जा सकते हैं। 'साकेत', 'यशोधरा' जैसी रचनाओं में भावों की गहराई भी किसी प्रकार कम नहीं। गुप्त जी पर सामान्यत: यह आरोप लगाया जाता है कि उनके काव्य में भावों का बिखराव अधिक है, सघनता कम है। इसमें सन्देह नहीं कि उनकी सब रचनाओं में भाव-सघनता नहीं आ पाई। वे मुख्यत: प्रबन्धकार थे। अत: प्रबन्धकार की रचनाओं में सर्वत्र भाव-सघनता संभव नहीं होती। फिर भी उनके काव्यों में अनेक स्थलों पर ऐसी मार्मिक भाव-व्यंजना है कि भावों का घनीभूत प्रभाव अमिट रूप से पड़ता है। भाव-वैविध्य, भाव-उदात्तता और भावगहनता के ही कारण गुप्त जी आधुनिक युग के श्रेष्ठ महाकवि सिद्ध होते हैं।

नारी-भावना : गुप्त जी के काव्य की एक विशेषता यह है कि उन्होंने एक ओर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से संकेत पाकर उपेक्षित नारी पात्रों को अपने कुछ काव्यों में महत्त्व दिया—जैसे 'साकेत' में उर्मिला, 'यशोधरा' में यशोधरा, 'विष्णुप्रिया' में विष्णुप्रिया आदि, दूसरे उन्होंने नारी के उज्ज्वल चरित्र-चित्रण द्वारा अपनी प्रगतिशील नारी-भावना प्रकट की। 'यशोधरा' की ये प्रसिद्ध पंक्तियाँ नारी जीवन की करुणा को साकार कर देती हैं—

अबला जीवन हाय ! तेरी यही कहानी।
आँचल में दूध औ आँखों में पानी।

गुप्त जी ने भारतीय नारी का आदर्श उर्मिला, यशोधरा आदि के चरित्र-चित्रण द्वारा प्रस्तुत किया है।

गार्हस्थ्य-चित्रण : सांस्कृतिक कवि के रूप में गुप्त जी की एक और विशेषता यह है कि उन्होंने भारतीय सम्मिलित परिवार-व्यवस्था का गृहस्थ-चित्रण बड़ा भव्य किया है। 'साकेत' में आदर्श गार्हस्थ्य जीवन के भव्य चित्र पाये जाते हैं। 'साकेत' नगरी का चित्रण करते हुए उन्होंने लिखा है—

एक तरु के विविध सुमनों से खिले, पौरजन रहते परस्पर हैं मिले।
एक भी आँगन नहीं ऐसा यहाँ, शिशु न करते हों कलित क्रीड़ा जहाँ॥
कौन है ऐसा अभागा गृह कहो, साथ जिसके अश्व गोशाला न हो॥

परिवार में माता-पुत्र, पिता-पुत्र, भाई-भाई, भाई-बहन, स्वामी-सेवक, पति-पत्नी, भाभी-देवर, सास-बहू आदि विविध सम्बन्धों के आदर्श का भी 'साकेत' में तुलसी रामायण की तरह, बहुत ही भव्य चित्रण हुआ है। गुप्त जी ने भारतीय संस्कृति के मनोहर चित्र उपस्थित किए हैं।

प्रकृति-चित्रण : गुप्त जी की रचनाओं में यत्र-तत्र प्रकृति-चित्रण भी अच्छा हुआ है। यद्यपि छायावादी कवियों की तरह गुप्त जी ने प्रकृति के प्रांगण में

कल्पना के मेघों पर बैठ स्वच्छन्द विचरण नहीं किया है, तथापि उनकी कई रचनाओं में प्रकृति के भव्य चित्र प्रकट हुए हैं। 'पंचवटी' की कथा तो प्रकृति की क्रोड़ में ही घटित हुई है। प्रकृति-चित्रण से ही कवि ने इस रचना का आरम्भ किया है:

चारु चंद्र की चंचल किरणें खेल रही हैं जल थल में,
स्वच्छ चांदनी बिछी हुई है अवनि और अम्बर में।

'सिद्धराज' में गुप्त जी ने महोबे की प्राकृत प्रांत-श्री का सुन्दर संश्लिष्ट चित्रण किया है। 'साकेत' में प्रकृति के मानवीकरण, उद्दीपन रूप में ऋतु-वर्णन तथा प्राकृतिक उपमानों की भव्य योजना का सुन्दर प्रयास दिखाई देता है। सबसे बढ़कर बात यह है कि मानव और प्रकृति का बड़ा ही स्वाभाविक सम्बन्ध 'साकेत' में पाया जाता है। प्रकृति-प्रयोग के सभी परंपरागत और आधुनिक स्वच्छन्द प्रयोग गुप्त जी के काव्य में पाये जाते हैं।

स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति : द्विवेदी काल में जिस स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा का प्रवर्त्तन श्रीधर पाठक, मुकुटधर पांडेय, रूपनारायण पांडेय, बदरीनाथ भट्ट आदि कवियों-द्वारा हो रहा था, उसमें मैथिलीशरण गुप्त ने भी अपना पूर्ण योगदान किया। उनकी अनेक मुक्तक कविताएँ स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति की परिचायक हैं। उनकी 'नक्षत्र-निपात', 'अनुरोध' (1914-15), 'पुष्पांजलि' (1917) आदि कविताओं में नवीन स्वच्छन्दतावादी तथा रहस्य-भावना दर्शनीय है। प्रकृति के माध्यम से परोक्ष सत्ता के प्रति रहस्य भाव कई कविताओं में प्रकट हुए हैं। प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित करने का भी प्रयास पाया जाता है। एक उदाहरण देखिए :

मेरे आंगन का एक फूल, सौभाग्य भाव से मिला हुआ,
श्वासोच्छवासन से हिला हुआ संसार-विटप में खिला हुआ।
झड़ पड़ा अचानक झूल-झूल।।—पुष्पांजलि

खड़ी बोली कविता के जनक : आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से खड़ी बोली में हिन्दी कविता रचने को प्रस्तुत होने वाले आरंभिक कवियों में गुप्त जी का सर्वप्रमुख स्थान है। उन्होंने 'सरस्वती' आदि पत्र-पत्रिकाओं में खड़ी बोली कविता को जन्म दिया। यद्यपि इनसे पूर्व उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में श्रीधर पाठक आदि एक-दो कवियों ने खड़ी बोली में कविता रचना आरम्भ कर दिया था तथापि व्रजभाषा के समर्थकों का वे सामना नहीं कर पाये थे। बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में ही द्विवेदी जी, मैथिलीशरण गुप्त आदि ने व्रजभाषा के समर्थकों के आक्षेपों का मुँह-तोड़ उत्तर दिया। गुप्त जी ने अपनी रचनाओं-द्वारा खड़ी बोली कविता की भावी सफल संभावना का पूरा आभास दिया। इस प्रकार मैथिलीशरण गुप्त हिन्दी खड़ी बोली कविता के प्रवर्त्तक कवियों में प्रमुख स्थान रखते हैं।

खड़ी बोली-काव्यभाषा के उन्नायक : गुप्त जी न-केवल खड़ी बोली काव्य-भाषा के जनक हैं अपितु उसके क्रमिक विकास की कहानी भी उनके काव्य में पाई जाती है। आरंभ में खड़ी बोली कविता का स्वरूप गद्यवत् इतिवृत्तात्मक ही रहा। गुप्तजी की आरम्भिक रचनाओं में खड़ी बोली का यही रूप पाया जाता है। किन्तु ज्यों-ज्यों वह काव्य-रचना करते गए त्यों-त्यों भाषा-शैली और भाव-पक्ष दोनों में परिष्कार हुआ। यहाँ तक कि 'साकेत', 'यशोधरा' तक पहुँचते-पहुँचते खड़ी बोली की सम्पूर्ण शक्तियों का उद्घाटन हो गया। यद्यपि गुप्त जी ने छायावाद को अधिक नहीं अपनाया तथापि 'साकेत', 'यशोधरा' आदि रचनाओं के अनेक गीतों और गीतियों में छायावादी काव्य-शैली का समस्त सौन्दर्य दिखाई देता है। मानवीकरण (प्रकृति और भाव दोनों का), प्रतीक-विधान, नई उपमान-योजना, सूक्ष्म लाक्षणिक प्रयोग, मूर्त्त-अमूर्त्त विधान, भाषा की चित्रात्मकता, ध्वन्यर्थ-व्यंजना, विशेषण-विपर्यय आदि भाषा की कलात्मकता के सभी साधनों का उन्होंने छायावादी कवियों की ही तरह प्रयोग किया। एक-दो उदाहरण देखिए :

किसने मेरी स्मृति को बना दिया है निशीथ में मतवाला,
नीलम के प्याले में तारक-बुदबुद् देकर उफन रही वह हाला।

यहाँ नीलम का प्याला आकाश के लिए, हाला रात्रि की मादकता के लिए सुन्दर प्रतीक प्रयुक्त हुए हैं। प्रकृति के मानवीकरण की अनूठी कल्पना इन पंक्तियों में देखिए :

तारक चिन्ह दुकूलिनी पी-पी कर मधुमात्र।
उलट गई श्यामा यहाँ, रिक्त सुधाधर पात्र ॥ —साकेत

'रुदन का हंसना ही तो गान,' 'आली चक्र कहां चलता है ?', 'उलट पड़ा वह दिव रत्नाकर', 'जलने को ही स्नेह बना' (यशोधरा), 'बरसघटा, बरसूँ मैं संग', 'मुझे फूल मत मारो,' 'निरख सखी ये खंजन आए' (साकेत, नवमसर्ग) आदि अनेक गीतों में छायावादी गीति-शैली की वैयक्तिकता, संगीतात्मकता, भाव-प्रवणता, कोमल-कांत पदावली आदि सभी विशेषताएँ पाई जाती हैं। निस्संदेह छायावादी गीति-काव्य-शैली का प्रबन्धकार गुप्त जी पर बहुत प्रभाव पड़ा। इस प्रकार गुप्त जी ने न-केवल खड़ी बोली काव्य-भाषा का निर्माण कर ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त किया, अपितु उसके उत्कर्ष में भी उनका पूर्ण योगदान है। सच तो यह है कि उनका काव्य खड़ी-बोली हिन्दी कविता के विकास की सम्पूर्ण कहानी प्रकट करता है।

श्रेष्ठ प्रबन्धकार : मैथिलीशरण गुप्त आधुनिक काल के ऐसे सर्वप्रमुख कवि हैं जिन्होंने आधुनिक युगाचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के संकेत पर आधुनिक प्रबन्धकाव्यों की परम्परा चलाई। सन् 1908 में ही 'रंग में भंग' नामक उनका सुन्दर खण्ड-काव्य प्रकाशित हुआ। इसके बाद उन्होंने लगभग 30 श्रेष्ठ प्रबन्ध

काव्य प्रदान कर हिन्दी काव्य को समृद्ध किया। उनमें प्रबन्धकार की अद्भुत प्रतिभा थी। उनका 'साकेत' महाकाव्य आधुनिक काल का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य कहा जा सकता है। मार्मिक प्रसंगों की उद्भावना, कथा-प्रसंगों के समुचित संयोजन, पात्रों के सफल चरित्र-चित्रण, संवाद-कौशल, भाव-रसाभिव्यक्ति, उद्देश्य की महानता आदि उनके प्रबन्धकाव्यों की ऐसी विशेषताएँ हैं, जो उन्हें सफल कृतियाँ सिद्ध करती हैं।

काव्य-शैलियों के निर्माता : मैथिलीशरण गुप्त ने न-केवल खड़ी बोली काव्य-भाषा को सशक्त बनाने में योग दिया, अपितु आधुनिक कविता की विविध काव्य-शैलियों के विकास का श्रेय भी उन्हें प्राप्त है। मुक्तक और प्रबन्ध दोनों में उनकी सफल गति थी। जहाँ उन्होंने श्रेष्ठ खण्ड काव्य और साकेत-जैसे महा-काव्य को प्रदान किया, वहाँ 'स्वदेशगीत', 'झंकार' आदि काव्य-संग्रहों तथा 'साकेत' (नवम सर्ग), 'यशोधरा' आदि के गीतों में उच्च कोटि के मुक्तक काव्य की रचना की। गीतिकाव्य का उनमें उत्कर्ष पाया जाता है। गुप्त जी ने तुकांत, अतुकांत, भिन्नतुकांत, स्वच्छन्द प्रवाह, मात्रिक छन्द, वार्णिक छन्द, मिश्रित छन्द आदि जितनी अधिक शैलियों के प्रयोग की क्षमता दिखाई, उतनी अन्य आधुनिक कवियों में कम पाई जाती है। उन्होंने 'यशोधरा' में चम्पू काव्य का सफल प्रयोग किया और उसमें नाटक, गीत, गीति, प्रबन्ध, गद्य-पद्य का सुन्दर मिश्रित प्रयोग किया। 'अनघ' गीति-नाट्यशैली में रचा। 'चन्द्रहास' और 'तिलोत्तमा' नामक नाटकों में भी गुप्त जी ने अपने कवि-व्यक्तित्व को प्रकट किया है। इस प्रकार खड़ी बोली काव्य की विविध शैलियों के सफल निर्माण में गुप्तजी का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

इस प्रकार मैथिलीशरण गुप्त आधुनिक युग के ऐसे प्रतिनिधि कवि और राष्ट्रकवि हैं जिनका काव्य न-केवल समूची बीसवीं सदी के युग-बोध का परिचायक है, न-केवल हमारी राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक भावनाओं का उद्गाता है, अपितु उसमें आधुनिक हिन्दी कविता के भाषागत और भावगत उदय और विकास की समस्त मंजिलें—समस्त काव्य-प्रवृत्तियाँ—पाई जाती है। उनके काव्य में भाषा की सरलता उन्हें जनता का कवि सिद्ध करती हैं। बेशक कहीं-कहीं तुकांतता की भद्दी प्रवृत्ति तथा इतिवृत्तात्मकता और गद्यात्मकता के दोष भी उनके काव्य में पाये जाते हैं, पर कुल मिलाकर उनके काव्य की महानता उन्हें महाकवि का गौरव प्रदान करती है।

10

युग-कवि निराला

1. निराला का व्यक्तित्व
2. काव्य-चेतना का विकास
3. आरम्भिक रचना 'परिमल' में विविध प्रवृत्तियाँ
4. रहस्यवादी गीत-रचना 'गीतिका'
5. 'अनामिका' में प्रवृत्ति-वैविध्य
6. 'तुलसीदास'
7. छायावादोत्तर मोड़
8. 'कुकुरमुत्ता', 'अणिमा', 'बेला' और 'नयेपत्ते' में परंपरा, प्रगति और प्रयोग
9. गीत-काव्य : 'अर्चना', 'आराधना', 'गीतगुंज' और 'सांध्यकाकली'
10. प्रवृत्ति-परिवर्तन और उपसंहार

व्यक्तित्व

निराला का काव्य उनके व्यक्तित्व की अनुगूंज है और उनका व्यक्तित्व उनकी निजी तथा युगीन परिस्थितियों से ही निर्मित हुआ था। परिस्थितियों ने निराला का निर्माण किया था और उन्हीं परिस्थितियों के संदर्भ में निराला ने अपने साहित्य-सृजन द्वारा युग को नई चेतना प्रदान की। परुषता निराला की कविता का मुख्य गुण है। उनके काव्य को समीक्षकों ने 'मर्दानी कविता' की उचित ही संज्ञा दी है। निराला की वाणी इसीलिए ओजस्वी है क्योंकि उनका व्यक्तित्व भी ओजपूर्ण था। उनके व्यक्तित्व को यह मर्दानापन परिस्थितियों ने ही प्रदान किया था। बचपन से ही पहलवानी का शौक, घर में बजरंगबली की पूजा, पिता का रौबदार सैनिक व्यक्तित्व आदि निजी परिस्थितियों के साथ-साथ निराला के अक्खड़ एवं तेजस्वी बैसवाड़ा प्रदेश का योगदान तथा युगीन संघर्ष के सम्मिलित योग ने 'जागो फिर एक बार' का उद्‌घोष करने वाले पौरुष कवि-व्यक्तित्व का निर्माण किया। बंगभूमि और बैसवाड़ा—दो प्रदेश उनके जन्म, लालन, पालन और रहन-सहन से सम्बद्ध हैं। बंगाल ने उनके व्यक्तित्व को भावुकता और बौद्धिकता प्रदान की तो बैसवाड़े ने उसमें ओज और फक्कड़मस्ती भरी।

आकर्षक रूप, लम्बे-तगड़े डील-डौल का शरीर, लम्बी भुजाएँ, वृषभकंध, व्यायाम के अभ्यास से सुगठित देह, बड़ी-बड़ी लुभावनी आँखें, दमकती दंत-पंक्ति, लम्बा मुख, पतले होंठ, लम्बे-बिखरे बाल, चौड़ी पेशानी, चौड़ी छाती, ललित कंठ, गंभीर मुद्रा—यह था निराला का आकर्षक व्यक्तित्व। प्रथम साक्षात्कार से जान पड़ता था कि किसी रोममूर्ति के दर्शन कर रहे हों! संघर्षों और जीवन-द्वन्द्वों की भट्टी में तपे मुख से कटु विद्रोह, क्षोभ और असंतोष के भाव व्यक्त होते थे। पर इस ऊपरी शैल-वज्रता केनी चे सलिला प्रवाहित रहती थी। निराला के व्यक्तित्व में पौरुष और करुणा दोनों का योग था। उनके व्यक्तित्व में विरोधों का अद्भुत सामंजस्य है। दार्शनिक और रसिक, विद्रोही और सुधारक, प्रगतिवादी और परंपरा-प्रेमी, अहमन्य और विनम्र, खान-पान में शैव-शाक्त, पर विचार में वैष्णव, कुसुम-कोमल और वज्र-कठोर! व्यक्तित्व में इन विरोधों के सामंजस्य का आधार है कवि के मन और मस्तिष्क पर अमिट रूप में पड़ा स्वामी विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महात्मा गांधी आदि नवयुग के मनीषियों का प्रभाव। स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ आदि विचारकों से उन्होंने जिस व्यावहारिक अद्वैत दर्शन की शिक्षा पाई, वही सब विरोधों के सामंजस्य का आधार है।

काव्य-चेतना का विकास : सन् 1915 से 1961 ई० तक निराला-काव्य की दीर्घ परम्परा है। छायावाद ही नहीं छायावादोत्तर काव्य की भी सभी प्रवृत्तियों का उन्होंने प्रवर्त्तन किया। द्विवेदी काल की कल्पनाहीन शुष्क इतिवृत्तात्मक कविता के स्थान पर नये भाव-बोध और नई शैली की जिस कविता का प्रवर्त्तन छायावाद में हुआ, उसमें निराला का योगदान किसी प्रकार कम नहीं है। रवीन्द्र की 'गीतांजलि' तथा बंगला की अन्य भावपूर्ण कविताओं एवं अंग्रेजी के रोमैंटिक कवियों के प्रभाव से निराला ने हिन्दी में नई कविता का सूत्रपात किया। सच तो यह है कि निराला को समूची शताब्दी का कवि कहना चाहिए, क्योंकि निराला का काव्य न-केवल छायावाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का प्रवर्त्तक है, अपितु आगे भी वर्षों तक व्यापक और गंभीर रूप से आगामी नये कलाकारों को प्रेरित और अनुप्राणित करता रहेगा। आज भी उन्हें अनेकानेक नई प्रवृत्तियों के कवि अपना-अपना आदिगुरु मानते हैं। प्रगतिवादियों ने निराला का स्तवन किया, प्रयोगवादी कवि उन्हें अपना प्रेरक मानते हैं और वर्तमान नवतावादी कवि (नवलेखन के आचार्य तक) उन्हें अपना पथ-प्रदर्शक स्वीकारने में जरा नहीं झिझकते। निराला-काव्य विषय, भाव, शैली और भाषा के वैविध्य का कला-निकुंज है। एक ओर शृंखला की उन्मुक्त किन्तु अशरीरी आत्मिक संयत धारा प्रवाहित हुई है, तो दूसरी ओर स्वच्छन्द प्रेम की प्रचण्ड शारीरिक हलचल और विद्रोही क्रीड़ा दृष्टि-गोचर होती है; कहीं वैयक्तिक प्रेम का उन्नयन राष्ट्र-प्रेम के रूप में हुआ है, कहीं परमात्म-प्रेम के रूप में तो कहीं व्यापक मानव-प्रेम रूप में। कहीं करुण, शृंगार,

भक्ति आदि कोमल भावों की स्वरगंगा बहती है, तो कहीं क्रांतिकारी और प्रखर वीर रस की घनगर्जना है। कहीं प्रकृति और ऋतुओं की कोमल मनोहर वाटिका को निराला ने सजाया है, तो कहीं प्रकृति के रौद्र, भयावह और विस्मयकारक रूपों की अवतारणा की है। जहाँ एक ओर 'सरोज-स्मृति' जैसी वैयक्तिक अंतरंग करुणा है, वहाँ दूसरी ओर आधुनिक जीवन के सामाजिक वैषम्यों की व्यंग्य के नश्तरों से शल्य-क्रिया की गई है या सामाजिक करुण दृश्य-चित्र प्रस्तुत किये गए हैं। एक ओर दार्शनिक भूमिका पर आधृत शांत रस की योजना है तो दूसरी ओर जीवन-संघर्षों से जूझने की अपूर्व ऊर्जा है। अंत में निराला की कविता आत्म-निवेदन और प्रार्थना-विनय के भक्तिपूर्ण भावों से आपूर्ण हो गई थी। पर यह भक्ति भी मध्ययुग के भक्त कवियों की वैयक्तिक एकांत साधना ही नहीं थी, उनके प्रार्थना-काव्य में भी लोक-पीड़ा और सामाजिक दृष्टि भरपूर पाई जाती है। इस प्रकार यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाये तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि निराला का सांस्कृतिक मूल्यों की आकांक्षा का दार्शनिक या बौद्धिक स्वर, जन-जीवन से घुला-मिला यथार्थवादी व्यंग्यप्रधान आक्रोश और अंतिम प्रार्थना-वंदना का स्वर तीनों एक ही उद्देश्य-सूत्र से जुड़े हुए हैं। निस्संदेह निराला-काव्य का मेरुदण्ड मानवता-वाद है।

आरंभिक रचना 'परिमल' में विविध प्रवृत्तियां : निराला का इस समय प्राप्य प्रथम काव्य-संग्रह 'परिमल' है, जिसमें सन् 1916 से 1929-30 तक रची कविताएँ संकलित हैं। निराला आरम्भ से ही प्रबुद्ध कवि के रूप में प्रकट हुए। प्रायः समीक्षकों द्वारा कहा गया है कि निराला का पूर्ववर्ती काव्य परवर्ती काव्य से सर्वथा भिन्न प्रवृत्ति का है। यह बात विशेष रूप से निराला की व्यंग्य-प्रधान यथार्थवादी रचनाओं के काव्य-संग्रह 'बेला', 'नये पत्ते' तथा लम्बी रचना 'कुकुर-मुत्ता' को लेकर कही जाती है। पर हम देखते हैं कि इन रचनाओं की यथार्थ-वादी और प्रगतिशील प्रवृत्ति उनकी आरंभिक 'परिमल' की 'विधवा,' 'भिक्षुक', 'कण' आदि कविताओं में भी पाई जाती है। 'बादल-राग' कविता में दीन-दुखी, पीड़ित-शोषित जनता के प्रति शतशत करुणा और धनी पूंजीपतियों के प्रति आक्रोश की जैसी तीव्र व्यंजना हुई है, वह उनकी किस परवर्ती रचना से कम यथार्थवादी है ?

मेरा अभिप्राय यह है कि निराला के प्रथम काव्य-संग्रह 'परिमल' में ही उनकी समस्त प्रवृत्तियों का उद्घाटन हो चुका था। 'परिमल' निराला की प्रति-निधि रचना है। इसमें कवि का प्रवृत्ति-वैविध्य स्पष्ट है। न-केवल विषय-भाव की दृष्टि से अपितु शैली-बंध के विचार से भी 'परिमल' निराला की प्रतिनिधि रचना है। इसमें उनकी गीत, प्रगीत, दीर्घ प्रगीत, आख्यानात्मक काव्य, स्वच्छन्द छन्द, सममात्रिक सान्त्यानुप्रास और विषम-मात्रिक सान्त्यानुप्रास आदि अनेक

प्रकार की कविताएं संकलित हैं। 'जुही की कली,' 'शेफालिका,' 'जागो फिर एक बार' आदि स्वच्छन्द छन्द प्रगीत हैं। 'परिमल' में दस गेय गीत बहुत सुन्दर हैं। इसी गीत शैली का विकास उनके 'गीतिका,' 'अर्चना,' 'आराधना,' 'गीतगुंज' आदि परवर्ती गीत-संग्रहों में हुआ। 'वेला,' 'नये पत्ते' आदि के उर्दू शैली में रचित व्यंग्य काव्य की व्यंग्यशैली के अतिरिक्त निराला-काव्य की प्रायः समस्त शैलियों का परिचय उनके इस आरंभिक संग्रह में मिल जाता है। पंचवटी-प्रसंग से उनकी आख्यानात्मक दीर्घ-मुक्त-काव्य रचने की प्रवृत्ति का आभास मिलता है जिसका पूर्ण विकास 'राम की शक्ति पूजा' ('अनामिका' संग्रह) और 'तुलसी-दास' में हुआ। 'परिमल' की 'यमुना के प्रति,' 'शिवाजी का पत्र' में उनकी दीर्घ प्रगीत रचने की प्रवृत्ति का परिचय मिल जाता है। 'कण,' 'जलद' जैसी कविताओं में कण दलित-शोषित वर्ग का और 'जलद' विदेशी शिक्षा प्राप्त कर और डिग्रीधारी बनकर भी देश-सेवा भाव न भूलने वाले भारतीयों का प्रतीक बनाया गया है। यही प्रतीक-प्रवृत्ति 'कुकुरमुत्ता' आदि परवर्ती रचनाओं में बढ़ती गई।

निराला जी की दार्शनिक एवं रहस्यवादी प्रवृत्ति के दर्शन भी हमें 'परिमल' में ही मिल जाते हैं। 'परिमल' की 'तुम और मैं' कविता इसका पुष्ट प्रमाण है। 'परिमल' की ही कविताओं से निराला छायावाद के प्रवर्त्तक कवि बन गए थे। छायावाद की समस्त विशेषताएँ—प्रकृति का सचेतन रूप में चित्रण, मानवीकरण, प्रकृति से तादात्म्य, संवेदनशीलता, प्रकृति से संदेश व प्रेरणा-प्राप्ति आदि प्रकृति-प्रयोग की सभी छायावादी विशेषताएँ 'परिमल' की 'संध्या सुन्दरी,' 'जुही की कली,' शेफालिका' आदि कविताओं में लक्षित होती हैं। 'यमुना के प्रति' में कवि की छायावादी सूक्ष्म श्रृंगार-चित्रण, अतीत गौरव-गान तथा भावों एवं कला की सूक्ष्मता आदि समस्त छायावादी-विशेषताएँ दिखाई देती हैं। निराला-काव्य की एक और आद्यंत प्रवृत्ति है राष्ट्रीय भावना। 'परिमल' की 'जागो फिर एक बार,' 'शिवाजी का पत्र' आदि कविताओं में राष्ट्रीय ओजपूर्ण भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई।

यद्यपि निराला की दो परवर्ती प्रमुख प्रवृत्तियाँ—1. यथार्थवादी प्रगतिवादी काव्य-रचना, और 2. भक्ति-भावना समग्रतः उनकी परवर्ती रचनाओं में प्रकट हुईं, पर उनके बीज भी 'परिमल' की रचनाओं में ही देखे जा सकते हैं। शक्ति की पूजा-अर्चना उनकी 'राम की शक्ति पूजा' और 'अर्चना', 'आराधना' के कुछ गीतों में आगे खूब खुलकर प्रकट हुई, उसका आरंभ 'परिमल' की श्यामा के 'आवाहन' गीत में ही हो चुका था। इसी प्रकार सरस्वती-वंदना भी 'परिमल' की 'क्या दूँ' कविता में ही प्रकट हो चुकी थी। 'परलोक', 'हमें जाना है जग के पार', 'प्रार्थना' आदि गीतों में निराला के अध्यात्म और भक्ति-भावना का आरंभिक रूप

दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार 'परिमल' निराला का प्रतिनिधि काव्य-संग्रह है।

2 गीतिका : 'परिमल' के बाद सन् 1930 से 36 तक निराला ने 101 गेय-गीतों की रचना की, जो 'गीतिका' नामक संग्रह में 1936 में प्रकाशित हुए। निराला के इस प्रथम गीत-संग्रह में भाव-प्रबलता, संगीत-माधुर्य, कोमलकांत पदावली आदि सभी गुण हैं। 'वर दे वीणावादिनी वर दे', 'भारति जय विजय करे', 'यामिनी जागी', 'सोचती अपलक आप खड़ी', 'सूखी री यह डाल वसन वासंती लेगी', 'मौन रही हार', 'सखी वसंत आया' आदि इस संग्रह के श्रेष्ठ गीत हैं। 'परिमल' की स्वच्छन्द रचनाओं से निराला ने मुक्त छन्द की सफल प्रतिष्ठा की थी, 'गीतिका' के छन्दोबद्ध संगीतात्मक पदों-द्वारा हिन्दी-गीत-शैली को अधिक प्रौढ़ किया। 'गीतिका' के पदों में मुख्यत: प्रेम-शृंगार की सूक्ष्म एवं रहस्यात्मक अभिव्यक्ति हुई है। छायावादी-रहस्यवादी प्रवृत्ति का चरम विकास 'गीतिका' में दिखाई देता है। 'अस्ताचल रवि जल छलछल छवि' जैसे पदों में रहस्यमय वातावरण, 'हुआ प्रात प्रियतम तुम जाओगे चले'—जैसे पदों में प्रेम-रहस्य की अभिव्यक्ति, 'देकर अन्तिम कर रवि गए अपर पार'—जैसे संध्यावर्णन के पद में प्रकृति के रहस्यमय सौंदर्य और भाव-भंगिमा का चित्रण तथा 'सूखी री यह डाल…' जैसे गीतों में प्रतीकात्मक शैली निराला को मूलतः छायावादी-रहस्यवादी कवि सिद्ध करती है। कई गीतों में परोक्ष सत्ता के प्रति प्रार्थनापरक भावाभिव्यक्ति भी हुई। 'भारति जय विजय करे'—जैसा राष्ट्रगीत भी इसी संग्रह की शोभा है।

कला की दृष्टि से भी 'गीतिका' के गीतों में कवि की कला-साधना का उत्कर्ष दिखाई देता है। 'परिमल' की स्वच्छन्द रचनाओं की अपेक्षा इन गीतों में कला-सज्जा और अलंकरण अधिक है। पाश्चात्य कला-शिल्प और संगीत का प्रभाव भी इन गीतों में लक्षित होता है। कवीन्द्र रवीन्द्र की तरह निराला ने भी लौकिक सौन्दर्य, ससीम प्रकृति-मानव-प्रेम आदि को अलौकिक संस्पर्श और दार्शनिक अतीन्द्रिय परिणति प्रदान की है। 'गीतिका' की मुख्य प्रवृत्ति रहस्यवाद ही है। ये गीत न-केवल निराला के सर्वश्रेष्ठ गीत हैं, अपितु छायावाद-रहस्यवाद युग की श्रेष्ठ गीत रचनाएँ हैं।

3. अनामिका : जनवरी 1938 में निराला का 'अनामिका' (द्वितीय) काव्य-संग्रह प्रकाशित हुआ। इसमें कुछ कविताएँ तो 'परिमल' काल की छूटी हुई हैं, कुछ अनूदित हैं, और 'सरोज स्मृति', 'मित्र के प्रति', 'वनवेला' आदि कुछ प्रगीत रचनाएँ हैं। निराला की प्रसिद्ध आख्यानक रचना 'राम की शक्ति पूजा' भी इसी काव्य-संग्रह में है। 'परिमल' की तरह 'अनामिका' निराला का दूसरा प्रतिनिधि काव्य-संग्रह है। इसमें भी प्रवृत्तियों का वैविध्य पाया जाता है। निराला-काव्य का उदात्ततम रूप इसमें प्रकट हुआ है। एक तरह 'अनामिका' 'परिमल' से भी

अधिक कवि की प्रतिनिधि रचना है। 'परिमल' में निराला का व्यंग्यकार कुछ सोया हुआ था जबकि 'अनामिका' की 'दान', 'वनवेला', 'मित्र के प्रति' जैसी रचनाएँ व्यंग्यकाव्य का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। 'दान' कविता में कवि की सामाजिक करुणा, मृतप्राय कंकाल-शेष भिक्षुक के करुण-चित्रण में द्रष्टव्य है। निराला जी ने धार्मिक ढोंग और मनुष्यता के ह्रास पर करारा व्यंग्य किया है। 'तोड़ती पत्थर में' आर्थिक विषमता और निम्न वर्ग की विवशता का जो चित्रण हुआ है, 'वनवेला' में निराला जी ने स्वार्थी, अवसरवादी राजपुत्रों, धनिक पुत्रों, पूंजीपतियों, टके पर बिक जाने वाले कवियों, सम्पादकों, थोथे साहित्य-संस्थानों आदि पर जो चुभते व्यंग्य किये हैं, वे कवि की विकसित सामाजिक चेतना के परिचायक हैं। 'उद्‌बोधन' कविता 'परिमल' के 'बादल राग' की ही पूरक है। इसमें भी घन को नव्य क्रान्ति का अग्रदूत बनाया गया है। बादल का राग गाने वाले कवि निराला ने इस संग्रह की एक-दो और रचनाओं में बादल को विश्व-मंगल हेतु पुकारा है।

'अनामिका' में एक ओर स्वच्छन्द प्रेम और सौन्दर्य की व्यंजक 'प्रेयसी' जैसी कविता है, तो दूसरी ओर महाकाव्य के औदात्त्य से ओतप्रोत निराला का प्रसिद्ध ओजपूर्ण दीर्घ प्रगीत या खण्ड काव्य 'राम की शक्ति पूजा' है। निराला की वैयक्तिक करुणा उनकी 'सरोज-स्मृति' में साकार हो गई है। सरस्वती के अमर पुत्र निराला ने 'अनामिका' की भी 'वीणावादिनी', 'प्रिया से' जैसी रचनाओं में सरस्वती और कविता की देवी का स्तवन-वंदन किया है। अतीत-दर्शन और अतीत-गौरव-गान की प्रवृत्ति का अवलोकन 'दिल्ली', 'खण्डहर के प्रति,' 'राम की शक्ति पूजा' जैसी सशक्त कविताओं में किया जा सकता है। कवि ने वर्तमान दुर्बल स्थिति से खिन्नता और अतीत-गौरव-भावना को प्रकट किया है। बादल के प्रतीकात्मक क्रांतिकारी और मंगलकारी रूप-चित्रण के अतिरिक्त निराला ने उसके 'वारिदवदना' में प्रिया के रूप तथा अन्य वर्षा-वसंत आदि ऋतुओं, प्रातः काल आदि के वातावरण के सुन्दर प्रकृति-चित्र भी इस संग्रह में प्रकट किए हैं। 'खुला आसमान' जैसी यथातथ्यपूर्ण प्रकृति-रचनाएँ निराला के ग्राम-प्रकृति और ग्राम्य जीवन की ओर झुकाव की द्योतक हैं। आगे के संग्रहों में यह प्रवृत्ति और बढ़ी। 'वसन्त की परी के प्रति' जैसी कविताओं में प्रकृति के मानवीकरण और उसमें प्रणय भावों के आरोपण की प्रवृत्ति है।

'परिमल' और 'गीतिका' की परम्परा में कवि की दार्शनिक एवं रहस्यवादी प्रवृत्ति, अलौकिक प्रेमभावना और जिज्ञासा आदि भी 'अनामिका' के कई गीतों और कविताओं में पाई जाती है। 'प्याला' कविता में सहज जिज्ञासा है कि मृत्यु, निर्माण और जीवन का यह नश्वर प्याला बार-बार कौन भर देता है? कौन नित्य नये-नये दृश्य रंगता है? 'प्राप्ति' कविता में थके-रुके कवि को वायु के रूप

में वह अज्ञात प्रियतमा मिली, जिसे वह खोजता फिरता था। उसकी कृपापूर्ण गोद और भरपूर चुंबन पाकर कवि आनंदित हो उठा। 'उक्ति' कविता में भी कवि ने अपनी रहस्यमयी प्रिया से पास रहने और हाथ गहने की मनुहार की है। कुछ कविताओं में हताश-निराश जीवन की कटु वेदना का भाव भी है। कवि का 'जीवन चिरकालिक क्रन्दन' रहा है। 'सरोज-स्मृति' में भी इस हताश दशा की 'दुख ही जीवन की कथा रही'—जैसे उद्‌गारों में अभिव्यक्ति हुई है। किन्तु अवसाद का यह भाव वह विराम-स्थल ही है, जहाँ रुककर निराला का वज्र व्यक्तित्व नव संघर्ष के लिए शक्ति-इंधन का संचय करता है। यह जीवन दीर्घकाल आतप में जला है, सारा आनन्द-आमोद, सब मधु-गुन्जार समाप्त हो गया, आँधियाँ चलीं, कुन्ज-निकुन्ज धूलि-धूसर हो गए, पर कवि फिर भी निराश-हताश नहीं हुआ, क्योंकि उसे नीलनभ में आशा की मेघमाल सदा दिखाई देती रही :

जला है जीवन यह आतप में दीर्घकाल
सूखी भूमि सूखे तरु सूखे सिक्त आलबाल
बन्द हुआ गुंज धूलि धूसर हो गए कुंज
किंतु पड़ी व्योम उर वधु नील मेघ माल —उक्ति

कवि का 'अन्तर वज्र कठोर' है तभी तो वह 'हताश' होकर भी 'उत्साह' और 'उद्‌बोधन' के गान गाता रहा है।

विषय की इस विविधता, भावों की विपुल उदात्तता के साथ 'अनामिका' में छन्द-बंध-शैली की भी विविधता पाई जाती है। मुक्त छन्द, सान्त्यानुप्रास, 'क्या गाऊँ', 'आवेदन' आदि लघुगीत, 'सरोज-स्मृति', 'वनवेला', 'नाचे उस पर श्यामा' आदि दीर्घ प्रगीत, 'प्रिया के प्रति,' 'मित्र के प्रति', 'खण्डहर के प्रति' आदि सम्बोध गीत, 'सरोज-स्मृति' जैसी श्रेष्ठ शोकगीति, 'राम की शक्ति पूजा' जैसा उदात्त आख्यानात्मक काव्य आदि विविध प्रकार की रचनाएँ सम्मिलित हैं। 'गीतिका' के कलात्मक शास्त्रीय संगीतपूर्ण गीतों जैसे गीत भी इस संग्रह में हैं और आगामी 'अर्चना', 'आराधना', 'गीत गुञ्ज' और 'सांध्यकाकली' के सरल, सहज गीतों का सारल्य लिए 'खुला आसमान'—जैसा गीत भी इस संग्रह में पाया जाता है। कुल मिलाकर निराला का यह संग्रह वैविध्यपूर्ण प्रतिनिधि काव्य-संग्रह है।

4. तुलसीदास : सन् 1938 में ही निराला की सर्वश्रेष्ठ रचना उनका प्रसिद्ध खण्ड-काव्य 'तुलसीदास' प्रकाशित हुआ। इसमें 100 बंधों में महाकाव्योचित औदात्त्य और गांभीर्य उत्पन्न किया गया है। कथा या घटनाक्रम इसमें अत्यन्त स्वल्प है, केवल तुलसीदास के आत्ममंथन पर ही रचना केन्द्रित है। आरम्भिक दस बंधों में निराला जी ने तुलसीदास के आविर्भावकाल की राजनीतिक दुर्दशा

का वर्णन किया है। मुसलमानों (विदेशियों) के आक्रमण से भारतीय जीवन और संस्कृति आक्रांत एवं दलित हो रहे थे; नैराश्य और निष्क्रियता से देश जड़ बन गया था। युवक तुलसी राजापुर में शास्त्राध्ययन में लीन था। एक दिन वह मित्रों के संग चित्रकूट यात्रा को निकलता है। वह एक ओर गिरि-शोभा से मुग्ध होता है, दूसरी ओर राम के इस परम धाम की अधोगति पर खिन्न होता है। तुलसीदास ध्यानस्थ हो अपने मन को ऊर्ध्वगामी करते हैं। परन्तु भारत की पतित एवं दरिद्रावस्था का अन्धकार उनके अन्तःचक्षुओं के सम्मुख उपस्थित हो जाता है। देश की अधोगति पर विचारते हुए वह एक ज्योतिलोक की कल्पना करते हैं जिसमें राम का आदर्श चरित्र मुक्ति का आलोक बना जीवन का भव्य संदेश देता है। इस संकल्प के साथ ही उन्हें अपनी पत्नी रत्नावली का स्मरण हो उठता है। क्षणभर में ही तुलसी प्रिया-मोह की अधःभूमि पर उतर आते हैं। तीर्थ-दर्शन के पश्चात् वह घर लौटते हैं। प्रेम-मोह में डूबे तुलसी एक बार भी अपनी पत्नी को नैहर नहीं जाने देते। एक दिन रत्नावली का भाई तुलसी की अनुपस्थिति में अपनी बहन को ले ही तो जाता है। अगले ही दिन तुलसी ससुराल पहुँच जाते हैं। उनकी पत्नी पति के इस लोकलाज-रहित मोह पर दुःखी हो उनकी भर्त्सना करती है। पत्नी के कटु वचनों से प्रबोध पाकर तुलसी का संस्कार जाग उठा। काम-वासना भस्म हो गई। पत्नी के स्थान पर शारदा दिखाई दी। भारती की दृष्टि से आकृष्ट हुआ कवि भावलोक की ऊँचाइयों को पार करता आनन्द-लोक में विचरण करता है। सब सांसारिक बंधन त्यागकर राम की महिमामहिम मूर्ति मन में बसा लेते हैं। एक नये आलोक का उदय होता है, अलौकिक गीत फूटने को होते हैं। इस प्रकार कवि निराला ने कवि तुलसी के माध्यम से मानवीय मानसिक ऊर्ध्वगमन का विवरण प्रस्तुत किया है। इस रचना की बड़ी शक्ति है इसमें उदात्त भावों, कल्पना-प्रवण विराट् चित्रों तथा अनूठे अप्रस्तुतों की योजना। 'कामायनी' की तरह यह छायावाद की अप्रतिम प्रबन्ध-रचना है। वृहदाकार न होने से चाहे इसे 'कामायनी' जैसा महाकाव्य का दर्जा न दिया जाय, तथापि महाकाव्योचित औदात्त्य से ओत-प्रोत यह छायावाद का एक अमूल्य खण्डकाव्य है।

'तुलसीदास' में निराला जी की अतीत-दर्शन और अतीत से राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक प्रेरणाएँ ग्रहण करने की प्रवृत्ति स्पष्ट है। कवि ने तुलसी के युग की परिस्थितियों के उद्घाटन से इस युग की समानान्तर सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय ह्रास की परिस्थितियों का बोध कराया है। भारतीय संस्कृति के नवोत्थान की आकांक्षा और विदेशी आक्रांताओं से देश के भाग्यगगन को निर्मेघ करने की प्रेरणा के कारण 'तुलसीदास' का राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक महत्त्व अक्षुण्ण है। नारी और प्रकृति की प्रतिष्ठा भी इस युग की एक महती प्रवृत्ति रही है। एक ओर प्रकृति को भारत-माता या भारतीय संस्कृति का प्रेरक प्रतिरूप बनाया गया है, दूसरी ओर

रत्नावली को शारदा, ज्ञान की ज्योति आदि प्रेरणाशक्ति का रूप प्रदान किया है। यही नहीं, 'तुलसीदास' में निराला जी ने तुलसी-युग से बहुत आगे आधुनिक युग-बोध इस बात में और भी स्पष्ट जगाया है कि उन्होंने तुलसी-युग में निम्न वर्ग और निम्न वर्ग की दुर्दशा का जो मार्मिक चित्रण किया है, वह तुलसी के मानसिक संस्कारों की पहुँच से परे था। ऐसा चित्रण आधुनिक तुलसीदास ही कर सकता था। इस प्रकार 'तुलसीदास' आधुनिक भाव-बोध की महत्त्वपूर्ण रचना है।

'तुलसीदास' में उदात्त नारी-सौन्दर्य और प्रेम का प्रकाशन भी बहुत भव्य हुआ है। चित्रकूट की यात्रा में तुलसी द्वारा अपनी पत्नी रत्नावली का स्मरण तथा वियोग में ब्रजमण्डल के कृष्ण-गोपी प्रेम का स्मरण निराला के चिर-परिचित 'स्मृति-श्रृंगार' के उदाहरण उपस्थित करते हैं। इस रचना में संयोग और वियोग के मधुर संक्षिप्त चित्र अत्यन्त मोहक हैं। प्रकृति का श्रृंगारोद्दीपनकारी चित्रण सर्वत्र हुआ है। 'तुलसीदास' में रत्नावली के माता-पिता का वियोग-वात्सल्य भी बड़ा मार्मिक है। इस प्रकार 'तुलसीदास' में उदात्त एवं सुन्दर रस-भावों की छटा आद्यंत पाई जाती है। उदात्त राष्ट्र-संस्कृति-प्रेम, उदात्त शांत रस, उदात्त प्रेम एवं वात्सल्य, उदात्त प्रकृति-चित्रण—सब कुछ उदात्त और विराट्। भाव-समृद्धि के साथ-साथ कला की अनूठी चित्रकारी निराला की कवित्व शक्ति की परिचायक है। इस प्रकार के वर्णन-चित्रण में निराला ने अनूठी उपमान-योजना, सचित्र रूपों एवं लाक्षणिक मूर्तिमत्ता से अभिव्यंजना को अत्यधिक सशक्त और मार्मिक बना दिया है। उदात्त भाव-सम्पदा और उदात्त विराट् कला-सज्जा का ऐसा अनूठा सामंजस्य बहुत कम रचनाओं में दिखाई देता है।

छायावादोत्तर मोड़ : निराला जी की उपर्युक्त काव्य-कृतियों के संक्षिप्त अध्ययन से स्पष्ट हुआ होगा कि यद्यपि आरंभ से ही निराला जी ने विविध प्रवृत्तियों को अपनाया, तथापि संपूर्ण छायावाद युग (सन् 1916 से 1937-38 तक) में उन्होंने मुख्यत: छायावादी प्रवृत्तियों का पोषण किया। इस काल की उनकी प्रगतिशील रचनाएँ भी भावना और अभिव्यक्ति की दृष्टि से प्रगतिवाद की उग्र यथार्थता की अपेक्षा छायावादी काव्य के जीवन-बोध के ही अधिक निकट हैं। इसी प्रकार भक्ति-भावना और प्रशांत प्रवृत्ति भी जो इन बीस-बाईस वर्षों के समय में रचित कुछ कविताओं में पाई जाती है, उनकी छायावादी-रहस्यात्मक प्रमुख प्रवृत्ति का ही अंग बनकर प्रकट हुई। तात्पर्य यह कि छायावाद युग में निराला ने पूरी तन्मयता से छायावाद का साथ दिया और उनकी प्रमुख प्रवृत्ति इस काल में छायावाद ही रही। छायावाद के अंत के साथ ही निराला की प्रमुख प्रवृत्ति में भी परिवर्तन दृष्टिगोचर हुआ। या यों कहना चाहिये कि सन् 1938 से 1946 तक निराला की काव्य-साधना का जो दूसरा चरण सामने आया, उसमें पूर्ववर्ती छायावादी युग की समाप्ति और नवीन यथार्थोन्मुख प्रगतिवादी प्रगति का बिगुल बजाया। इस काल

में निराला की प्रमुख काव्य-प्रवृत्ति यथार्थ प्रगतिवादी काव्य रचने की रही। इस समय की रचनाओं के उनके चार संग्रह 'कुकुरमुत्ता', 'अणिमा', 'बेला' और 'नये पत्ते' प्रकाशित हुए।

कुकुरमुत्ता : 1942 ई० में प्रकाशित 'कुकुरमुत्ता' निराला की सर्वाधिक विवादास्पद रचना है। निराला जी की यथार्थवादी प्रवृत्ति, व्यंग्य-वृत्ति, नई प्रगतिशील सामाजिक चेतना की यह परिचायक है। इसका व्यंग्य अनेकमुखी और मार्मिक है। वाच्यार्थ रूप में 'कुकुरमुत्ता' की कहानी यही है : एक नवाब थे—बड़े ठाठ वाले। उन्होंने अपनी बाड़ी में अनेक देशी-विदेशी पौधों के साथ फारस से मँगाकर गुलाब लगवाये। बहुत-से नौकरों-मालियों को गुलाब की सेवा में रखा हुआ था। गुलाब की सजी क्यारियों की बगल में नाले के पास स्वत: उग आने वाला देशी पौधा कुकुरमुत्ता सिर ताने खड़ा था। डाल पर इतराते गुलाब को कुकुरमुत्ता आड़े हाथों लेता [है और उसकी सब शान धूल में झाड़ता हुआ अपना रंग जमाता है। बाग के बाहर गंदे-तंग झोंपड़ों में नवाब साहब के खादिम रहते हैं। उन्हीं में एक बंगाली माली सोना था जिसकी मालिन को नवाब साहब ने अपने पास स्वैराचारपूर्वक आने का गौरव प्रदान कर रखा था। उस मालिन की बेटी गोली और नवाब की बेटी बहार हमजोलिनें थीं। एक दिन दोनों बाग में घूमने गईं। बहार गुलाबों की बहार पर, पर गोली कुकुरमुत्ता पर रीझ गई। बहार के पूछने पर गोली ने कुकुरमुत्ता का महत्त्व बताया और कहा कि इसका कबाब बहुत बढ़िया बनता है। कुकुरमुत्ता तोड़ लिया गया। गोली की माँ ने अपने घर पर कबाब बनाया। बहार को बड़ा स्वाद लगा। बहार ने नवाब साहब से कुकुरमुत्ता के कबाब की प्रशंसा की। नवाब साहब ने माली को हुक्म दिया, कुकुरमुत्ता लाओ ! माली ने कहा—'हुजूर, कुकुरमुत्ता अब नहीं रहा, रहे हैं सिर्फ गुलाब।' नवाब साहब क्रोध से काँपते बोले—"जहाँ गुलाब उगाये हैं, वहाँ कुकुरमुत्ता उगाओ। सबके साथ मैं भी उसी को चाहता हूँ।" माली ने नम्रतापूर्वक कहा—"खता मुआफ ! कुकुरमुत्ता उगाया नहीं जाता।"

इस प्रतीकात्मक रचना में एक तो निराला जी ने ऐय्याश नवाबों, रईसों, पूंजीपतियों या ऐसे शासकों पर व्यंग्य किया है जो स्वयं ऐश्वर्य-विलास में डूबे रहते हैं, किसान, मजदूर-मालियों को तंग रखते हैं, व्यभिचारी हैं, विदेशी पौधों-वस्तुओं से अपने घर-बाग सजाते हैं, अहंवादी हैं, शोषक हैं। फारस का गुलाब उच्च शोषक वर्ग, बुर्जुआ मनोवृत्ति और विदेशी विचार-पद्धति या संस्कृति का प्रतीक है। कुकुरमुत्ता इस शोषक पूंजीवादी को फटकारता हुआ कहता है :

अबे सुन बे गुलाब !
भूल मत गर पाई खुशबू रंगोआब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,

डाल पर इतरा रहा कैपिटलिस्ट,
कितनों को तूने बनाया है गुलाम,
माली कर रखा, सहाया जाड़ा-घाम।
शाहों, राजों, अमीरों का रहा प्यारा,
इसीलिए साधारणों से रहा न्यारा॥

—कुकुरमुत्ता

इसके विपरीत कुकुरमुत्ता प्रकृति-पुत्र साधारणों का प्रतीक है। उन्हें ऊँचे लोगों की तरह जीवन की बाड़ी में सजाकर कोई नहीं पालता, न उनकी सेवा के लिए किसी को गुलाम बनाने की जरूरत होती है न किसी के शोषण की। पर साधारण होता हुआ भी यह कुकुरमुत्ता असाधारण है, क्योंकि वह प्रबुद्ध सर्वहारा का प्रतीक है। वह भला किससे कम है ? अपने बौड़मपन में कुकुरमुत्ता अपनी तारीफ के पुल बांध देता है। उसका अतिरंजनापूर्ण वर्णन ईलियट की 'वेस्टलैंड' की भाँति संदर्भ-प्राचुर्य के लाने को किया गया है। पर इसमें निराला को विशेष सफलता नहीं मिली। वे इलियट का उपहास करके स्वयं अपने ऊपर भी हँसकर रह गए। निम्न पंक्तियों में जहाँ इलियट और उनके अन्ध अनुयायी प्रयोगवादियों पर करारा व्यंग्य है वहाँ निराला अन्तिम पंक्ति में अपने ऊपर भी हँसे हैं :

कहीं का रोड़ा, कहीं का लिया पत्थर,
टी० एस० इलियट ने जैसे दे मारा,
पढ़ने वालों ने जिगर पर हाथ रखकर,
कहा, कैसा लिख दिया संसार सारा।

'कुकुरमुत्ता' की शैली में भी प्रयोग का चमत्कार है। जैसे उसका विषय नया यथार्थवादी प्रतीकात्मक है, वैसे ही उसकी भाषा-शैली उर्दू-अंग्रेजी के शब्दों से युक्त गद्यवत् ही है। उसमें तो प्रतीकात्मक प्रयोगों द्वारा व्यंग्य की ही विशिष्टता है, कला की शास्त्रीय सज्जा नहीं।

अणिमा : 1937-38 से '43 तक की चुनी हुई 45 कविताओं का यह संग्रह 1943 में प्रकाशित हुआ। यह रचना कवि की संधिकालीन रचना कही जा सकती है, क्योंकि इसमें कुछ गीत और कविताएँ 'गीतिका' के ढंग की रहस्यपरक रचनाएँ हैं। कुछ यथार्थवादी व्यंग्यपरक प्रगतिवादी कविताएँ हैं। छायावादी गीतों में प्रार्थना, रहस्यवाद, प्रकृति-चित्रण तथा देश-प्रेम की 'गीतिका' जैसी भावनाएं ही हैं। भाव, भाषा, शैली-बंध आदि सभी दृष्टि से ये गीत 'गीतिका' की परंपरा में आते हैं। प्रभु के प्रति कवि के वैयक्तिक आत्मनिवेदन में भी लोक-कल्याण की प्रार्थना भरी हुई है। इन गीतों पर रवीन्द्र का प्रभाव लक्षित होता है। 'सुन्दर हे सुन्दर ! दर्शन से जीवन पर बरसे अविनश्वर स्वर' रहस्यवादी गीत पर रविबाबू के 'एहो लोभिनु संग तब, सुन्दर हे, सुन्दर !' गीत का स्पष्ट प्रभाव है। इस संग्रह की प्रार्थनापरक आध्यात्मिक रचनाएँ 'गीतिका' की परंपरा से आगामी 'अर्चना'

और 'आराधना' की कड़ी जोड़ती हैं। 'अणिमा' के इन गीतों में 'गीतिका' की अपेक्षा सरलभाषा का प्रयोग हुआ है। इस संग्रह में प्रकृति-प्रयोग के दोनों ही रूप मिलते हैं—एक पहले का कल्पनारंजित, उद्दीपनकारी विराट् प्रकृति-चित्रण और दूसरा प्रकृति का कल्पनारहित नया यथातथ्यपूर्ण सरल चित्रण। 'निशा का यह स्पर्श शीतल, भर रहा है हर्ष उत्कल' तथा 'बादल छाये' में पहला रूप लक्षित होता है और 'जलाशय किनारे कुहरी थी' कविता में प्रकृति का यथातथ्यपूर्ण चित्रण हुआ है। निराला अपने आगामी काव्य में अन्त तक प्रकृति के ऐसे ही यथातथ्यपूर्ण सरल-स्वाभाविक वर्णनों की ओर अधिक बढ़े। प्रकृति का रहस्यात्मक, श्रृंगार-परक और कल्पनारंजित विराट चित्रण करना उन्होंने आगे बहुत कम कर दिया।

इस संग्रह से ही कवि को अपने 'दिवस की संध्याबेला' का भी आभास होने लगा था जो अन्तिम रचना 'सान्ध्यकाकली' की 'पत्रोत्कंठित जीवन का विष बुझा हुआ है' कविता में सर्वाधिक भाव-सघनता से प्रकट हुआ। वैयक्तिक विषाद की व्यंजना इस संग्रह की कई कविताओं में हुई है। कवि की थकी हुई वाणी से स्वर निकला—

मैं अकेला
देखता हूँ, आ रही मेरे दिवस की सान्ध्यबेला।
थके आधे बाल मेरे, हुए निष्प्रभ गाल मेरे,
चाल मेरी मंद होती जा रही, हट रहा मेला।

पर इस सांध्यबेला में भी असंतोष की छटपटाहट नहीं है, संतोष की शांति है। कवि जानता है कि "नदी-झरने जो मुझे थे पार करने, कर चुका हूँ।" अतः यदि कोई नाव नहीं है तो अब कोई चिंता की बात नहीं।

इस संग्रह में कुछ प्रसिद्ध महापुरुषों और साहित्यकारों पर लिखी प्रशस्तियाँ वर्णनात्मक ही हैं; उनमें काव्यत्व सहज ही है। 'अणिमा' में 'सहस्राब्दि', 'उद्-बोधन' और 'स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज' तीन दीर्घ प्रगीत हैं। 'सहस्राब्दि' एक सशक्त रचना है। इसमें उनकी अतीत-दर्शन, राष्ट्रीय-गौरव एवं सांस्कृतिक-ऐतिहासिक चेतना की प्रवृत्ति पुनः प्रकट हुई।

नई व्यंग्यात्मक रचनाएँ तथा ग्राम-जीवन और प्रकृति के चित्रण-सम्बन्धी रचनाएँ भी 'अणिमा' में कम नहीं हैं। कवि की यथार्थपरक प्रवृत्ति का इनमें पूर्ण परिचय मिलता है। 'सड़क के किनारे' कविता में तो ग्राम-प्रांत के बहुत अच्छे स्नैपशॉट हैं। निराला जी ने कल्पना की रंगीनियों को त्यागकर इन कविताओं में यथार्थ का आँचल पकड़ा है। 'यह है बाजार', 'दाना' आदि कुछ कविताओं में यथार्थ चित्रण के साथ व्यंग्य भी अच्छा उभरा है। भाषा का इनमें सरलतम गद्य-वत् इतिवृत्तात्मक रूप है। कोई संगीत नहीं, कोई लय-ताल नहीं, अलंकार नहीं।

इन यथार्थपरक कविताओं में भावसंवेदनाएँ भी अपेक्षाकृत कम उभर पाई हैं।

कुल मिलाकर 'अणिमा' संधिकाल की ऐसी रचना है जिसमें एक ओर छायावाद युग की प्रायः सभी परम्पराएँ रक्षित हैं : 'गीतिका' की गीतशैली, वेदनागीत, रहस्यवादीगीत, अतीत गौरव-गान आदि, प्रकृति का विराट् रहस्यपूर्ण वर्णन, वैयक्तिक विषाद आदि छायावादी युग की प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं; दूसरी ओर उसमें आगामी 'अर्चना', 'आराधना' के आत्मनिवेदनात्मक भक्ति-गीतों, यथातथ्यपूर्ण प्रकृति-वर्णनों, ग्रामचित्रों तथा 'नये पत्ते और 'बेला' की यथार्थपरक व्यंग्यात्मक सामाजिक रचनाओं और गद्यवत् भाषा-शैली की भी भूमिका निर्मित हुई।

बेला : जनवरी 1946 में प्रकाशित 'बेला' उर्दू-शैली की गजलों और नये लय-गीतों का संग्रह है, जिनमें विभिन्न यथार्थवादी विषयों को अपनाया गया है। इसमें निराला जी ने नये-नये प्रयोग किए हैं। भाषा-शैली, छंद-बंध, लय-गीत आदि अभिव्यक्ति पक्ष की नवीन प्रयोगात्मकता के साथ भाव और विषय की दृष्टि से भी नवीनता है। इसमें 'गीतिका' शैली के कुछ गीतों के सिवा अधिकतर गीत और गजलें उर्दू शैली में रची गई हैं। इसकी बदली हुई उर्दू-शैली मिश्रित भाषा और उर्दू-फारसी छन्द और बहरें इसे नई प्रयोगवादी रचना सिद्ध करते हैं। दो-तीन कविताओं में निराला ने कजली और लोकगीतों की तर्जें अपनाई हैं। उर्दू-शैली की गजलों में कहीं तो ठेठ हिन्दी का ठाठ है, कहीं हिन्दी-उर्दू का मैत्रीपूर्ण मेल है। बहुत कम पंक्तियाँ ऐसी होंगी जहाँ संस्कृत और फारसी की बेमेल खिचड़ी दिखाई दे। आधुनिक हिन्दी कविता में प्रयोगवाद का आरम्भ निराला से ही माना जाता है और निराला की 'बेला' और 'नये पत्ते' रचनाएँ इस दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। कवि का स्पष्टतः प्रगतिवादी रूप यहां है। प्रगतिशील तो वह आरम्भ से ही था, अब वर्ग-संघर्ष, सर्वहारा वर्ग की प्रतिष्ठा, पूंजीपतियों के विनाश, ब्रिटिश साम्राज्यवादियों से मुक्ति, जाति-वर्ण-बंधन-मोचन आदि का खुलकर संघर्षमय चित्रण हुआ है। असल में निराला का विद्रोही प्रचण्ड रूप 'बेला' और 'नये पत्ते में ही' स्पष्ट हुआ। प्रगतिवादियों के स्पष्ट स्वरों में कवि कहता है :

आज अमीरों की हवेली, किसानों की होगी पाठशाला,
धोबी, पासी, चमार, तेली खोलेंगे अंधेरे का ताला।

ऐसी यथार्थपरक रचनाओं में भाषा-शैली अलंकाररहित गद्यवत शुष्क ही है। उसमें पूंजीवाद के प्रति घृणा और किसानों-मजदूरों-गरीबों, निम्नवर्णों, शोषितों के प्रति सहानुभूति का भाव है। कवि ने रक्त-क्रांति का आह्वान भी एक-दो कविताओं में किया है। निराला जी ने राजतंत्र, सामंतवाद, पूंजीवाद सबको 'बेला' में मृत्युदण्ड दिया है।

'बेला' में प्रगति और प्रयोग की उपर्युक्त प्रवृत्ति होते हुए भी कवि परम्परा

को तिलांजलि नहीं दे सका है। इसमें 'गीतिका' आदि की परम्परा के शृंगार, अलौकिक प्रेम-भक्ति आदि के विविध प्रकार के गीत भी पर्याप्त हैं। आध्यात्मिक शरण और मिलन की दिव्य प्रतिक्रिया का वर्णन इस गीत में सुन्दर है :

नाथ तुमने गहा हाथ, बीणा बजी !
विश्व यह हो गया साथ, द्विविधा लजी।

इस प्रकार 'बेला' प्रयोग, प्रगति और परम्परा का अद्‌भुत त्रिवेणी-संगम है।

नये पत्ते : मार्च 1946 में प्रकाशित 'नये पत्ते' निराला का प्रसिद्ध व्यंग्य-काव्य-संग्रह है। इसमें भी कवि की यथार्थवादी प्रवृत्ति, सामाजिक व्यंग्य-चित्रण और उर्दू-शैली के नये बंध-प्रयोग पाये जाते हैं। 'देवी सरस्वती' कविता इस संग्रह की श्रेष्ठ रचना है। इसमें इन्होंने षड्‌ऋतुओं के सरस्वती के उदात्त चित्र प्रस्तुत किये हैं। इसमें एक ओर कल्पनाप्रियता, सरस्वती-वंदन आदि छायावादी प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं, दूसरी ओर सामान्य ग्राम जीवन के प्रति रुझान, कृषकों तथा निम्न-वर्ग के प्रति सहानुभूति, जमींदारों तथा शोषक महाजनों का विरोध आदि प्रगति तत्त्व बीच-बीच में प्रकट हुए हैं। 'नये पत्ते' में आधी से अधिक रचनाएँ कवि की यथार्थपरक प्रगतिवादी दृष्टि की सूचक हैं। ये निराला की सामाजिक चेतना, इतिहासदर्शन और प्रयोगवादी तथा प्रगतिवादी प्रवृत्ति की परिचायक हैं। इनमें निराला एक सफल व्यंग्यकार के रूप में आधुनिक हिन्दी काव्य में अपना अप्रतिम स्थान बनाए हुए हैं।

छायावाद-रहस्यवाद काअपार्थिव सूक्ष्म या छद्म प्रेम यहां पार्थिव और स्पष्टतः लौकिक 'प्रेमसंगीत' बन गया है। कवि यथार्थ भूमि पर उतर आया है। बम्हन का लड़का कहारिन के पीछे मरता है ! कैसा जबरदस्त व्यंग्य है ! वैसे तो ब्राह्मण हैं—जात के ऊँचे, अहीरों-कहारों—सबको नीच समझते हैं, पर काली किन्तु यौवनवाली कहारिन के पीछे मरते हैं ! 'थोड़ों के पेट में बहुतों को आना पड़ा', 'कुत्ता भौंकने लगा', 'झींगुर डटकर बोला', 'छलाँग मारता चला गया', 'डिप्टी-साहब आये', 'महँगू महंगा रहा', 'खुशखबरी', 'दगा की', 'प्रेमसंगीत', 'गर्म पकौड़ी', 'राजे ने रखवाली की', 'चरखा चला', 'मास्को डायलाग्ज', आदि कविताओं में सामाजिक व्यंग्य भरे पड़े हैं। वर्ग-विषमता और वर्ग-संघर्ष का इनमें खुलकर चित्रण हुआ है। डिप्टी साहब गाँव में आए हैं। उनके साथ टिड्डीदल अमला, थानेदार, सिपाही सब हैं। जमींदार का आदमी बदलू के गाँव से बीस सेर दूध धौंस जमाकर उनके लिए ले जाना चाहता है। जनता अब कुछ प्रबुद्ध हो गई है। उस बदमाश की धमकी और अपमान की बात से उत्तेजित होकर बदलू उसकी नाक पर तानकर एक घूंसा जड़ देता है। मन्नी कुम्हार, कुल्ली तेली, झकुआ चमार, लच्छू नाई और बली कहार सब टूट पड़ते हैं। गाँव की इस भड़की हुई परिस्थिति को देखकर 'तब तक सिपाही थानेदार के भेजे हुए आये और दाम दे-

देकर माल ले गये।'

वर्ग-संघर्ष की कैसी सशक्त अभिव्यक्ति है !

इस प्रकार 'नये पत्ते' निराला की काव्य-चेतना के विकास की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। कवि युग-पुरुष बनकर समाज, जीवन, धर्म आदि सभी का लेखा-जोखा करता सभी विकृतियों और विषमताओं पर हँसता, प्रहार करता अपनी विद्रोही प्रकृति का परिचय देता हुआ काव्य के नये क्षितिजों को खोज रहा है। 'नये पत्ते' में प्रयोग, प्रगति, व्यंग्य-हास्य, भाषा की सरलता आदि विशेषताएँ उसे निराला की महत्त्वपूर्ण कृति सिद्ध करती हैं।

गीत-काव्य : 1946 के बाद निराला जी की प्रमुख प्रवृत्ति में फिर परिवर्तन आया। 1947 से 1961 तक का समय निराला की काव्य-साधना का तीसरा और अन्तिम सोपान है। निराला ने यथार्थ की विभीषिका को भी त्याग दिया और समस्त जीवन-अनुभव और संघर्षों का पर्यवसान अध्यात्म-भावना, प्रशांत-प्रवृत्ति और आत्मनिवेदनकारी भक्ति-भावना में हो गया। इस अन्तिम समय में निराला ने प्रकृति-ऋतु-वर्णन, करुणा, शांत और भक्तिरसपूर्ण गीतों की ही मुख्य रूप से सृष्टि की जो उनके चार गीत संग्रहों में प्रकाशित हुए हैं : (1) अर्चना ('50), (2) आराधना ('53), (3) 'गीतगुंज' ('54 व '59) और (4) अन्तिम 'सांध्यकाकली' (1969)।

इन गीतों में मुख्य स्वर विनय-भक्ति का है। कवि की आर्त्तवाणी अपने आराध्य से शरण की बार-बार याचना करती है। अपने भग्न तन, रुग्ण मन, असहाय दशा और जीवन की विषण्णता का उल्लेख करते हुए कवि ने अशरण-शरण राम या मातृशक्ति अथवा 'हरि' से पार तारने की प्रार्थनाएँ की हैं। कई गीतों में निराला ने युग की विभीषिका का वर्णन भी किया है। 'शिशिर की शर्वरी हिंस्र पशुओं से भरी,' 'घनतम से आमृत्त धरणी है' (अर्चना), 'मानव जहाँ बैल घोड़ा है' (आराधना) आदि ऐसे ही गीत हैं। ऐसे गीतों में निराला जी ने इस भौतिक युग की आर्थिक विषमता, भौतिक अशांति, नैराश्य, पराजय आदि का वर्णन किया है। 'अर्चना' और 'आराधना' तो इस युग के तुलसीदास की विनय-गीतियाँ हैं। पर कवि का यह गान पराजय और थकान का वृद्ध-गान नहीं है। यह तो विश्रांति का एक स्थल है जहाँ रुककर कवि ने युग और जीवन को फटकारा कम है, उसके लिए अपने प्रभु से मंगल कामना की है। राष्ट्रकल्याण और नव जीवन-जागरण को यहाँ भी कवि नहीं भूले हैं। प्रकृति तथा बादल-वर्षा-वसंत के यथार्थ चित्र इन गीतों में खूब पाये जाते हैं। यहाँ कल्पना की रंगीनी नहीं, अपितु प्रकृति के यथातथ्य सौन्दर्य-उल्लास का वर्णन हुआ है। 'अर्चना' के 'फूटे हैं आमों में बौर,' 'आराधना' के 'खेत जोत कर घर आये हैं,' जैसे गीतों में ग्राम-प्रकृति और ग्राम-जीवन की सरल-सहज अभिव्यक्ति हुई है। कुछ गीतों में शृंगार

का सहज-सादा लोकगीतों का रूप भी मिलता है।

निराला जी ने 'सहज-सहज कर दो,' 'सीधी राह मुझे चलने दो' की प्रार्थनाएँ की हैं। यहाँ न-केवल उनका मन सीधा और सरल दिखाई देता है, उनकी वाणी में भी गजब की सहजता है, सारल्य है। भाषा में सादगी, भाव में सरलता, ध्वनि और वातावरण में साधारणता सब कुछ सहज है। छोटी-छोटी टेकों और लघु-लघु बंधों में बंधे उनके अन्तिम गीत कलात्मक गीतों की अपेक्षा लोक गीतों की कोटि में अधिक आते हैं। 'गीतिका' के गीतों में शास्त्रीय संगीत और कला-सज्जा है, यहाँ लोकगीतों में माधुर्य और निरलंकृत प्रवाह है। कुछ गीतों में निराला जी ने चलती हुई भजन की धुनें, बहरें, दादरा, ठुमरी आदि बंदिशें भी अपनाई हैं। जैसे अर्चना का यह गीत—'वे कह जो गए कल आने को, सखि, बीत गये कितने कल्पों।'—'बजरंगबली मेरी नाव चली' धुन पर है। इन अन्तिम गीतों—विशेषतः 'सांध्यकाकली' संग्रह से कवि के काव्य, जीवन और उसकी विचारधारा पर निम्न महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है : (1) इनसे प्रमाणित होता है कि कवि अपनी अन्तिम साँसों तक साहित्य-सृजन और कलासाधना करता रहा था।

(2) यह एक आश्चर्य की ही बात है कि रुग्णावस्था और मानसिक असंतुलन की स्थिति में भी निराला जी स्वस्थ और संतुलित कविता करते रहे। यह तथ्य हमारी इस धारणा को पुष्ट करता है कि कविता रचते समय निराला जी मानसिक दृष्टि से स्वस्थ हो जाते और सात्त्विक वृत्ति ग्रहण रखते थे। दो-चार अटपटी रचनाओं के सिवा इन अन्तिम कविताओं में कवि के सरल, स्पष्ट और उदात्त भाव प्रकट हुए हैं। इनमें कवि की जीवन के प्रति आस्था, आशा और उदात्त भावना स्पष्ट लक्षित होती है। मृत्यु की नीली रेखा का आभास हो जाने पर भी कवि अन्त समय तक आशावादी बना रहा।

(3) इन रचनाओं में कवि की प्रतिनिधि भाषा-शैली का प्रयोग हुआ है। इनमें 'परिमल,' 'गीतिका' आदि की सरल तत्समयुक्त शब्दावली और तुकांतक प्रवृत्ति का आवर्त्तन हुआ। इससे प्रमाणित होता है कि उर्दू-अंग्रेजी की मिश्रित शब्दावली, उर्दू छन्द और गजलों के प्रयोग, संस्कृत-निष्ठ समास-बहुल भाषा-शैली, स्वच्छन्द छन्द आदि विभिन्न प्रकार के प्रयोगों के बाद कवि अपनी मूल भाषा-शैली और प्रतिनिधि शास्त्रीय एवं लोक-गीत-संगीत-शैली को ही अन्त तक अपनाये रहा। अन्त में कवि ने अलंकार-सज्जा त्याग कर सहज सरल मार्ग ही अपनाया है।

●●

10

छायावादी महाकवि जयशंकर प्रसाद

1. उपक्रम
2. दार्शनिक पृष्ठभूमि
3. प्रगति और पलायन
4. अनन्त सत्ता के प्रति उत्कंठा
5. प्रकृति-प्रयोग
6. नारी-भावना
7. प्रेम-भावना
8. छायावादी कलात्मक अभिव्यक्ति : रम्य कल्पनाएं
9. वैयक्तिक गीतिकाव्य
10. छन्द-योजना

प्रसाद जी ने द्विवेदी युग की शुष्क-इतिवृत्तात्मक काव्य-धारा से असंतुष्ट होकर एक नवीन काव्यचेतना का प्रवर्त्तन किया। द्विवेदी युग के पश्चात् दो महायुद्धों के बीच (सन् 1916 ई० से सन् 1938 ई० तक) हिन्दी साहित्य में जो छायावादी काव्यधारा प्रवाहित हुई उसके प्रवर्त्तन का श्रेय जयशंकर प्रसाद को, अन्य प्रवर्त्तक कवियों पंत, निराला और महादेवी से अधिक है। प्रसाद जी का 'प्रेम-पथिक' सं० 1962 वि० (सन् 1905 ई०) में सर्वप्रथम ब्रजभाषा में लिखा गया था, फिर सं० 1970 वि० (सन् 1913 ई०) में प्रसाद जी ने खड़ीबोली नागरी में इसका परि-वर्द्धित और संशोधित रूप निकाला। प्रसाद जी की इस सन् 1913 ई० की रचना में ही छायावाद की समस्त प्रवृत्तियाँ लक्षित होती हैं। स्वच्छन्द आन्तरिक प्रेम, सामाजिक परम्पराओं की उपेक्षा, प्रेम-भावना का उदात्तीकरण (Sublimation of the sentiment of love) सोने और सपने के संसार में विचरण की भावना तथा लाक्षणिक भावभंगिमा और प्रतीकात्मकता आदि अनेक छायावादी विशेष-ताएँ प्रेम-पथिक में मिलती हैं। जिस सात्त्विक, निश्छल आन्तरिक आदर्श प्रेम की व्याख्या वर्षों बाद पंत जी की ग्रंथि में मिलती है उसका स्पष्ट चित्रण 'प्रेम-पथिक' में हुआ है। छायावादी प्रेम-भावना का इससे स्पष्ट प्रकाशन और क्या होगा ?—

"पथिक ! प्रेम की राह अनोखी भूल-भूलकर चलना है
घनी छाँह है जो ऊपर तो नीचे काँटे बिछे हुए,
— — — —
प्रेम पवित्र पदार्थ न इसमें कहीं कपट की छाया हो,
इसका परिमित रूप नहीं जो व्यक्तिमात्र में बना रहे
क्योंकि यह प्रभु का स्वरूप है जहाँ कि सब को समता हो
इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रांत भवन में टिक रहना
किन्तु पहुँचना उस सीमा पर जिसके आगे राह नहीं।

दार्शनिक पृष्ठभूमि

छायावादी-काव्य एक मानवतावादी उदार दार्शनिक पृष्ठभूमि पर खड़ा है। नवयुग के छायावादी कवि पुराने संकुचित वातावरण की घुटन से ऊब कर एक व्यापक और उन्मुक्त वातावरण में साँस लेना चाहते थे। आत्म-प्रसार के लिए उनका हृदय छटपटा रहा था। इस आत्मप्रसार की भावना को सर्वप्रथम प्रसाद जी ने अनन्त प्रेम का पथिक बनकर प्रकट किया। नवयुग के नवीन सामाजिक आध्यात्मिक दर्शन ने ही आत्मविकास की यह भावना जगाई। स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, महात्मा गांधी, कवीन्द्र-रवीन्द्र आदि नवयुग के मनीषियों ने जिस विश्वबन्धुत्व और विश्व-मानवतावाद की भावना का प्रचार किया, उसी उदार दृष्टिकोण से हमारे कवि प्रसाद भी प्रभावित हुए। आत्म-विस्तार की इसी भावना को सर्ववाद या सर्वात्मवाद अथवा समानता की दृढ़ दार्शनिक भित्ति प्राप्त हुई।

आदर्शात्मक आध्यात्मिक चिंताधारा का प्रभाव छायावादी काव्य पर खूब पाया जाता है। छायावाद की समस्त भावाभिव्यक्ति के मूल में सर्वात्मवाद की भावना निहित है। छायावादी कवि प्रकृति के कण-कण में इसी के कारण एक सचेतन सत्ता का आभास पाता है। इसी के कारण वह तृण-लता-गुल्म सबसे रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है। इसी भावना के परिणामस्वरूप उसका प्रेम आत्मिक प्रेम है जहां आत्मा का मिलन है, हृदयों का संयोग है, शारीरिक लिप्सा नहीं। इसी प्रवृत्ति के कारण छायावादी कवियों ने एक अखण्ड जीवन की कल्पना की है। यही सर्ववाद प्रसाद जी में आनन्दवादी दर्शन के रूप में व्यक्त हुआ है। एक ही विश्वात्म-सत्ता सर्वत्र विराजमान है, इस भाव को प्रसाद जी इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

नीचे जल था, ऊपर हिम था, एक तरल था एक सघन।
एक तत्त्व की ही प्रधानता कहो उसे जड़ या चेतन।।

(कामायनी)

वास्तव में छायावाद पर वर्तमान युग के आध्यात्मिक दर्शन का ही प्रभाव पड़ा है। शंकर के निवृत्तिमूलक अद्वैतवाद की बजाय इस पर स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ के सामाजिक तत्त्वों से युक्त वेदान्त दर्शन का प्रभाव है। नवयुग के विचारकों ने वेद, उपनिषद्, गीता, वेदान्त तथा वैष्णव धर्म को मिलाकर एक ऐसे अध्यात्मवाद को जन्म दिया, जो देश की प्राचीन दार्शनिक परम्परा में होता हुआ भी वर्तमान युग की सामाजिक आवश्यकताओं के अनुकूल था। स्वामी विवेकानन्द, रामतीर्थ, रवीन्द्रनाथ ठाकुर और गांधी जी—युग की इन चार प्रेरक शक्तियों के साथ व्यक्ति और समाज, समाज और राष्ट्र, राष्ट्र और विश्वात्मा तथा विश्वात्मा और परमात्मा का समन्वय प्रस्तुत करते हुए हमारे छायावादी कवियों ने अध्यात्म की नई व्याख्या की। प्रसादजी ने भी शैवों के प्रत्यभिज्ञान दर्शन की नवीन सामाजिक और मानवतावादी व्याख्या प्रस्तुत की है। अध्यात्म दर्शन के इसी समाजीकरण के कारण छायावादी दर्शन प्रवृत्तिमूलक है। प्रसाद जी का आनन्दवादी दर्शन शंकर के मायावाद की तरह निवृत्तिमूलक नहीं। आनन्दवादी प्रसाद इसी विश्व में सौन्दर्य, सत्य और आनन्द की खोज करते हैं। श्रद्धा इस जगत की विशालता, सुन्दरता आदि को व्यक्त करती हुई कहती है—

> अवकाश सरोवर का मराल,
> कितना सुन्दर कितना विशाल
> इसके स्तर-स्तर में मौन शांति,
> शीतलता अगाध है ताप भ्रांति। (कामायनी)

इसीलिए प्रसाद जी इसी संसार को स्वर्ग बनाना चाहते हैं। इसी के सुख-दुःखमय जीवन से उन्हें अनुराग है—

> विधाता की कल्याणी सृष्टि
> सफल हो इस भूतल पर पूर्ण; (कामायनी)

छायावादी कवियों पर सामाजिक और वैयक्तिक दुःखों का बहुत प्रभाव पड़ा है। प्रथम महायुद्ध के विनाशकारी तांडव से समस्त योरोप कांप उठा था, विनाश की धू-धू करती हुई ज्वाला से मानवता त्रस्त थी। हमारे कवियों का हृदय सामाजिक एवं वैयक्तिक विफलताओं से भी क्षुब्ध था। अतः उनका व्यथित हृदय दुःखवाद की अश्रु-लिपि में करुणा के गीत लिखने लगा। महादेवी का सारा काव्य दुःख और पीड़ा से भरा हुआ है। प्रसाद जी की आन्तरिक वेदना भी बौद्धों की करुणा के रूप में साथ-साथ उफन कर निकल पड़ी है। परन्तु छायावाद का यह दुःखवाद, निराशा और वेदना संध्या की कालिमा नहीं, प्रत्युत प्रत्यूष की निहारिका है, जो आशा और विश्वास की आलोक-किरणों की सूचना देती है। दुःख और करुणा को छायावादी कवियों ने जीवन का एक ऐसा तत्त्व बना दिया जो जीवन को मरु-स्थल नहीं, अपितु उर्वर ही बनाता है। जीवन के दुःखों की ज्वाला में करुणा की

तरंग बनकर छायावादी कवि उसे (जीवन को) शीतल बनाना चाहता है—

भुनती वसुधा तपते नग,
दुखिया है सारा अग जग
कंटक मिलते हैं प्रति पग
जलती सिकता का यह मग
बह जा बन करुणा की तरंग,
जलता है जीवन-पतंग।

—अशोक की चिंता (लहर)

छायावाद की उपर्युक्त दुःखवाद की प्रवृत्ति जीवन में समरसता की स्थापना का साधन है। जीवन के दुःख ही सुखों को लाते हैं। सुख-दुख के संतुलन से ही जीवन का स्वाभाविक विकास होता है। प्रसाद जी की निम्न प्रसिद्ध पंक्तियाँ देखिए—

मानव जीवन वेदी पर परिणय हो विरह-मिलन का
सुख-दुःख दोनों नाचेंगे है खेल आँख का मन का। (आँसू)

सुख-दुःख से युक्त इस मानव-जीवन को परिपूर्ण बनाने की आकांक्षा सभी छायावादी कवियों में पाई जाती है। छायावाद का मूल दर्शन आत्मिक है, अतः उसमें आत्म-साधना, आत्म-परिष्कार, आत्म-विस्तार तथा आत्म-बलिदान की भावना पाई जाती है। छायावादी दर्शन की मूल प्रेरणा सांस्कृतिक होने के कारण सत्य, त्याग, सेवा, अहिंसा, आत्म-बलिदान आदि उच्च सांस्कृतिक मूल्यों की सभी छायावादी कवियों ने प्रतिष्ठा की है। प्रसाद जी की 'कामायनी' छायावाद के सांस्कृतिक पक्ष का पूर्ण प्रतिनिधित्व करती है। श्रद्धा, विश्वास, प्रेम, त्याग, सेवा, अहिंसा, आत्म-बलिदान और पर-दुःख-कातरता की करुण-मूर्ति कामायनी श्रद्धा मानो छायावाद की ही प्रतिमूर्ति है।

प्रगति और पलायन

नवयुग के प्रकाश में जहाँ एक ओर छायावादी कवियों ने पुरानी गली-सड़ी धारणाओं और रूढ़ियों के विरुद्ध आवाज़ लगाई और नवीन प्रगति का आह्वान किया वहाँ अतीत की स्वर्णमय संस्कृति के प्रति भी उन्हें मोह रहा है। एक ओर प्रसाद जी कहते हैं—

पुरातनता का यह निर्मोक
सहन करती न प्रकृति पल एक
नित्य नूतनता का आनन्द
किए है परिवर्तन में टेक। (कामायनी)

दूसरी ओर अतीत सांस्कृतिक गौरव का गान भी करते वे नहीं थकते। वर्तमान जीवन की विषमताओं एवं विफलता की ठेस को भुलाने के लिए हमारे कवियों ने

अतीत के स्वर्णयुग का सहारा लिया। वर्तमान की हार और हीनता का उत्तर उन्होंने अतीत की जीत और ऐश्वर्य से दिया। अतीत का मोह सबसे अधिक प्रसाद को था। उनके ऐतिहासिक नाटक भारतीय संस्कृति के आलोकमय मन्दिर के पुन-रुद्धार के परिचायक हैं। इन नाटकों के कई गीतों में यही भावना पाई जाती है। 'स्कंदगुप्त' का प्रसिद्ध गीत 'हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे उप-हार' सांस्कृतिक गौरव और अतीत-अभिमान को जगाने वाला है। वह हमारी राष्ट्रीय भावना को भी बड़ी सूक्ष्मता से छूता है।

किन्तु छायावादी कवि जीवन की यथार्थ समस्याओं और विभीषिकाओं में संघर्षशील न हो सका। जीवन की वास्तविकता उसे कई बार खिन्न बना देती थी, और ऐसे क्षणों में वह कोलाहल की अवनी को छोड़कर, प्रकृति अथवा अतीत की सुखद छाया में विश्राम ढूंढ़ने लगता था। कुछ आलोचकों—जैसे श्री शिवदान सिंह चौहान आदि ने छायावादी कवियों की इस भावना को पलायन-वृत्ति कहा है, परन्तु इसके ही आधार पर इन कवियों को पलायनवादी कहना उनके प्रति घोर अन्याय है। वस्तुत: जीवन की विषमता से झुंझलाकर कुछ देर के लिए ये कवि कल्पना के सुखद लोक में विचरण करना चाहते हैं। जीवन के प्रति उपर्युक्त प्रगतिशील दृष्टिकोण ही छायावादी कवियों की मूल भावना है। यह पलायन की वृत्ति तो एक प्रकार का श्रम-परिहार है। इस प्रकार प्रगति और पलायन छाया-वादी कवियों की एक अद्भुत मिश्रित भावना है। जीवन की वास्तविकताओं से टक्कर लेने का साहस किसी भी छायावादी कवि ने नहीं दिखाया। निराला में जो संघर्ष की भावना पाई जाती है, वह उनके प्रगतिवादी कवि का ही एक रूप है।

इस जीवन से कुछ देर के लिए पलायन की भावना का सुन्दर प्रकाशन प्रसाद जी की इस प्रसिद्ध कविता में हुआ है—

ले चल वहाँ भुलावा देकर
मेरे नाविक धीरे-धीरे।
जिस निर्जन में सागर-लहरी
अम्बर के कानों में गहरी—
निश्छल प्रेम-कथा कहती हो,
तज कोलाहल की अवनी रे!

अनन्त सत्ता के प्रति उत्कंठा

अनन्त और विराट् रहस्यमय सौन्दर्य-सत्ता के प्रति उत्कंठा और जिज्ञासा की भावना भी छायावादी कवियों की उपर्युक्त भावना का ही एक और उदात्तीकृत (Sublimed) रूप है। आधुनिक रहस्यवाद का यह प्रथम सोपान छायावाद की

भी एक विशेषता है। 'कामायनी' में मनु उसी विराट् के प्रति जिज्ञासा का भाव प्रकट करते हुए कहते हैं—

विश्वदेव, सविता या (पूषा,
सोम, मरुत चंचल पवमान,
वरुण आदि सब घूम रहे हैं
किसके शासन में अम्लान?
× × ×
सिर नीचा कर किसकी सत्ता
सब करते स्वीकार यहाँ;
सदा मौन हो प्रवचन करते
जिसका वह अस्तित्व कहाँ?

वह कौन है? उसका अस्तित्व कहाँ है? यह जानने की उत्कंठा सभी छायावादी कवियों में समान रूप से पाई जाती है।

इस प्रकार छायावाद एक दृढ़ दार्शनिक आधार पर खड़ा है। प्रसाद जी ने अपनी दार्शनिक दृष्टि से उसकी यह नींव बहुत मजबूत की है। छायावाद अनेक तत्त्वों के सामंजस्य का काव्य है। प्रसाद जी की कामायनी में यह सामंजस्य या समरसता का आनन्दवादी दर्शन बहुत सुन्दर ढंग से व्यक्त हुआ है। छायावाद में जो जड़-चेतन, व्यष्टि-समष्टि, पुरुष-नारी, दुख-सुख, विरह-मिलन, प्रवृत्ति-निवृत्ति, मुक्ति-बंधन, जीवन-मृत्यु, पलायन और प्रगति, द्वैत-अद्वैत, सांत और अनन्त, राष्ट्रीयता-अन्तर्राष्ट्रीयता आदि अनेक तत्वों में अद्भुत सामंजस्य की स्थापना हुई है, वह प्रसाद के काव्य में सर्वाधिक है। उनकी 'कामायनी' में छायावाद का उपर्युक्त दार्शनिक पक्ष बहुत दृढ़ है।

प्रकृति-प्रयोग

छायावादी कवियों की आत्म-प्रसार और स्वच्छन्दता की वृत्ति उन्हें प्रकृति के उन्मुक्त प्रांगण में ले गई। यहाँ उन्होंने प्रेम के अनन्त राज्य, अपार सुषमा और सौन्दर्य, पवित्रता, निश्छलता और सबसे बढ़कर अबाध स्वच्छन्दता का अनुभव किया। उनका हृदय इस खुले वातावरण को पाकर खिल उठा। पुरानी संकुचित धारणाओं और सामाजिक तथा पारिवारिक परंपराओं में उनका दम घुट रहा था। वे नदी-नालों, निर्झरों, पशु-पक्षियों, मेघ-पवन आदि की स्वच्छन्द गति में अपनी स्वच्छन्द तान मिलाना चाहते थे। प्रकृति के क्रोड़ में ही उनके व्यथित हृदय को सान्त्वना मिली, वहीं उनकी सौन्दर्य-भावना की तृप्ति हुई; उनके विशाल हृदय को फैलने के लिए वहीं अनन्त आकाश, विस्तृत समुद्र मिला और वहीं उन्हें विराट् सचेतन सत्ता के दर्शन हुए। अतः प्रकृति के साथ इन कवियों ने आत्मीयता

का सम्बन्ध स्थापित कर लिया। प्रकृति के कण-कण को उन्होंने एक सचेतन व्यक्तित्व प्रदान किया। प्रकृति के अनुराग में भीगी छायावादी कवि की तूलिका ने प्रकृति के अनेक कल्पनायुक्त सुन्दर चित्र अंकित किए। प्रसाद की 'कामायनी' में ऐसे रम्य चित्र भरे पड़े हैं। इन कवियों ने प्रकृति का मानवीकरण स्थान-स्थान पर किया है। प्रकृति का मानवीकरण छायावादी काव्य की एक बहुत बड़ी विशेषता है। प्रकृति को नारी-रूप में इन कवियों ने बहुत चित्रित किया है। 'कामायनी' में 'इन्द्रजाल जननी-रजनी' का चित्रण जिन रम्य कल्पनाओं से प्रसाद जी ने किया है, वह उनकी अपूर्व प्रतिभा का परिचायक है—

जब कामना सिंधु-तट आई
ले संध्या का तारा-दीप,
फाड़ सुनहली साड़ी उसकी
तू हंसती क्यों अरी प्रतीप ?

× × ×

पगली हां संभाल ले कैसे
छूट पड़ा तेरा आंचल—
देख बिखरती है मणिराजी
अरी उठा बेसुध चंचल
फटा हुआ था नील वसन क्या
ओ यौवन की मतवाली,
देख अकिंचन जगत लूटता
तेरी छवि भोली-भाली॥

नारी-रूप में प्रकृति-चित्रण करके छायावादी कवियों ने प्रकृति के माध्यम से अपनी शृंगार-भावना को भी व्यक्त किया है। निराला की 'जुही की कली', 'शेफालिका' आदि कविताएँ इसी प्रवृत्ति की द्योतक हैं। इनमें प्रकृति का ऐन्द्रिक चित्रण हुआ है। प्रकृति के पारस्परिक प्रणय-व्यापार अथवा ऐन्द्रिक-चित्रण का प्रसाद जी की 'कामायनी' से निम्न उदाहरण देखिए—

भुज-लता पड़ी सरिताओं की
शैलों के गले सनाथ हुए;
जलनिधि का आंचल व्यंजन बना
धरणी का, दो-दो साथ हुए।

प्रसाद जी ने प्रकृति के बाह्य-सौन्दर्य का ही चित्रण नहीं किया है, छायावाद के सभी कवियों की तरह, उसकी अन्तरात्मा का भी सूक्ष्म निरीक्षण किया है। प्रकृति में द्रवणशीलता, मृदुलता, कोमलता और भावुकता के भी उन्होंने दर्शन किए हैं। मानव के कारुण्य पर प्रकृति भी अपनी संवेदना प्रकट करती है। मानव के

साथ वह हँसती, संदेश देती और उसे उत्साहित भी करती है। निस्संदेह प्रसाद जी ने प्रकृति की आत्मा को पहचाना है, उसके स्पन्दनों का अनुभव किया है, उसे राग-विराग से पूर्ण मानव की ही तरह सचेतन माना है। प्रसाद की 'कामायनी' तो प्रकृति की चित्रशाला है। 'कामायनी' में प्रकृति-चित्रण की छायावादी विशेषताओं का विस्तृत विवेचन हमने अन्य निबंध में किया है।

नारी-भावना

प्रकृति की ही भाँति छायावादी कविता में नारी को प्रधानता मिली है। इन कवियों ने प्रकृति में ही नारी के नैसर्गिक रूप का अनुभव किया। यही कारण है कि इनकी नारी प्रकृति की ही भाँति एक नैसर्गिक प्रतिमा है। आधुनिक युग में पुरुष और नारी के सम्बन्धों में स्वच्छन्दता आई। सदियों के पुराने सामाजिक संकुचित पर्दे को चीरकर नर और नारी सच्चे अर्थों में जीवन-संगी बनने के भाव को समझने लगे। एक प्रकार के समझौते के स्थान पर नर-नारी के सम्बन्ध का आधार प्रेम ही उचित समझा जाने लगा। परम्परागत वैवाहिक-प्रथा, जिसमें माँ-बाप की इच्छा से ही वैवाहिक बंधन में नर-नारी बँधते थे, जीवन की एक विरस असंगति प्रतीत होने लगी। 'प्रेम-पथिक' की पुनली का गठबंधन अपरिचित व्यक्ति से हो गया, और उसके साहचर्यगत प्रेम का भाव हृदय में ही छटपटा कर रह गया। प्रणयी पथिक और उसकी पुतली के कुसुम-हृदय कुचले ही गए—

"पुतली व्याही जावेगी, जिससे वह परिचित कभी नहीं
यही ध्यान था उठता मन में "हाय प्राणप्रिय ! क्या होगा ?"
किन्तु कौन सुनता उस शहनाई में हृत्तंत्री झनकार
जो नौबतखाने में बजती थी अपनी गहरी धुन में
रूखा शीशा जो टूटे तो सब कोई सुन पाता है
कुचला जाना हृदय-कुसुम का किसे सुनाई पड़ता है !
(प्रेम-पथिक)

इस विडम्बना के कारण साहित्य में पहली बार पुरुष और नारी के बीच वैयक्तिक स्वच्छन्द प्रेम का अभ्युदय हुआ। सदियों के प्राचीन बंधनों से नारी भी मुक्त हुई। वह अब केवल पुरुष की इच्छा का क्रीड़ा-कंदुक नहीं बन सकती थी। पुरुष उसके संसर्ग का आनन्द उसे समानता का दर्जा देकर ही उठा सकता था। वर्तमान युग में छायावादी कवियों ने नारी की मुक्ति का नारा लगाया। प्रकृति की ही तरह उन्होंने नारी के दो रूपों का ही मुख्यतः अवलोकन किया है। एक उसका 'सखि,' 'सहचरी', 'प्राण', प्यारी, प्रेयसी का रूप और दूसरा 'देवी', 'माँ' वाला उसका विराट् रूप।

पूर्व-युग की नारी-भावना से छायावादी कवियों की नारी-भावना का अन्तर

समझने के लिए मैथिलीशरण गुप्त और प्रसाद जी की नारी-भावना का अन्तर समझ लेना पर्याप्त है। एक की नारी कुल-वधू, गृहलक्ष्मी और कर्त्तव्य-परायण गृह-पत्नी है, तो दूसरे की निसर्ग-बाला। एक में मध्यकालीन आदर्श है, तो दूसरी नवयुग की प्रतिमा है। गुप्त की नारी (उर्मिला) पुरुष का आश्रय खोजती है—

खोजती हैं किन्तु आश्रय मात्र हम।
चाहती हैं एक तुम-सा पात्र हम।। (साकेत)

इसके विपरीत प्रसाद की नारी पुरुष का 'शीतल उपचार' तथा उसकी 'मधुर प्रेरणा' है। गुप्त की नारी पत्नी है, तो प्रसाद की नारी प्रेमिका। उर्मिला और कामायनी की श्रद्धा में जो अन्तर है, वही पूर्वकाल की नारी में और छायावादी नारी में है। प्रसाद की श्रद्धा छायावाद की अनुपम नारी-सृष्टि है, जो

"नित्य यौवन छवि से ही दीप्त,
विश्व की करुण-कामना मूर्ति।
स्पर्श के आकर्षण से पूर्ण,
प्रकट करती ज्यों जड़ में स्फूर्ति।"

वह सत्-कर्मों की प्रेरणा देने वाली शक्ति-संचारिणी-नारी है। उसके दो रूप हैं। प्रेयसी का रूप और दूसरा विश्वकल्याणी मातृ-रूप। प्रेयसी-रूप में वह जीवन में वसंत का दूत बनकर आती है—

"कौन हो तुम वसंत के दूत
विरस पतझड़ में अति सुकुमार,
घन तिमिर में चपला-सी-रेख
तपन में शीतल मन्द बयार।"

श्रद्धा मनु के शुष्क जीवन में सरसता, स्निग्धता और मधुरता का संचार करती है। वह पीयूष स्रोत-सी बहाने वाली है। वह स्वच्छन्द निसर्ग-बाला जिस स्वच्छन्दता के साथ एक अपरिचित व्यक्ति मनु से परिचय प्राप्त करती, और प्रणय-सूत्र में बँधती है, क्या इस प्रकार की स्वच्छन्दता द्विवेदी युग या पूर्व काल की सामाजिक बंधनों से बँधी कोई नारी दिखा सकती थी ?

छायावादी कवियों के स्वच्छन्द, आत्मिक प्रेम का चित्रण प्रसाद जी में बहुत सुन्दर मिलता है। इस प्रेम का विकास मानस-मंथन से होता है। यह बड़ा ही सूक्ष्म और मानसिक प्रेम है। इस प्रेम के तरल, मधुर, नीरव और आनन्दमय उद्वेग का क्या कहना ? प्रीति की धारा चुपचाप हृदय में समाने लगती है। शरीर का रोम-रोमअभिनव आनन्द से कल-कूजन करने लगता है। नारी के नीरव, सूक्ष्म प्रथम प्रेमोद्वेग का एक चित्र देखिए—

और वह नारीत्व का जो मूल मधु अनुभाव,
आज जैसे हँस रहा भीतर बढ़ाता चाव।

मधुर व्रीड़ा मिश्र चिंता साथ ले उल्लास,
हृदय का आनन्द कूजन लगा करने रास।
गिर रही पलकें झुकी थी नासिका की नोक,
भ्रू-लता थी कान तक चढ़ती रही बेरोक।
स्पर्श करने लगी लज्जा ललित कर्ण-कपोल,
खिला पुलक कदंब-सा था भरा गद्‌गद् बोल।

छायावादी सूक्ष्म नारी-सौन्दर्य के चित्र कितने अद्‌भुत हैं! श्रद्धा का शरीर अस्थि-चरममय स्थूल शरीर नहीं है। नील-परिधान में उसका मृदुल अधखुला अंग ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे मेघों के वन में बिजली का फूल खिला हो। उसके मुख पर घुंघराले बाल मानों नील-घन-शावक हैं, जो मुख-चन्द का सुधा-पान करने आए हैं, और श्रद्धा की मोहनी मुस्कान तो अद्‌भुत थी। उसका शरीर वसा-चर्म से नहीं, सुरभित पुष्प-पराग के परमाणुओं से निर्मित कितना सूक्ष्म, कितना अद्‌भुत है—

कुसुम कानन-अंचल में मंद
पवन-प्रेरित सौरभ-साकार,
रचित परमाणु पराग शरीर
खड़ा हो ले मधु का आधार।

सौन्दर्य का एक बहुत ही उत्तम भाव-चित्र प्रसाद के इस गीत में देखिए—

तुम कनक-किरण के अन्तराल में
लुक-छिपकर चलते हो क्यों?
नत-मस्तक गर्व वहन करते,
यौवन के घन रसकन ढरते,
हे लाज-भरे सौंदर्य, बता दो
मौन बने रहते हो क्यों?
अधरों के मधुर कगारों में
कल-कल ध्वनि की गुंजारों में
मधुसरिता-सी यह हँसी तरल
अपनी पीते रहते हो क्यों? (चन्द्रगुप्त)

छायावादी कवियों ने अपनी अद्‌भुत कल्पना-शक्ति के द्वारा नारी के सूक्ष्म सौंदर्य-चित्र प्रस्तुत किए हैं। पुराने कवियों का-सा रूढ़ सौंदर्य-चित्रण उन्होंने नहीं किया। नारी-सौंदर्य का एक अभिनव मान-दण्ड इन कवियों ने प्रस्तुत किया है।

प्रेम-भावना

छायावादी प्रेम-भावना अतृप्ति-परक है। निराशामय विफल-प्रेम का चीत्कार सभी

छायावादी कवियों में पाया जाता है। आरंभिक कविताओं में तो यह वेदना बहुत मुखर है। 'ग्रंथि', 'उच्छवास की बालिका', 'आँसू' आदि पन्त जी की रचनाएँ, प्रसाद का 'प्रेम-पथिक', 'आँसू' आदि और महादेवी के गीत सब में प्रेम की वेदना-विवृत्ति है। प्रसाद के 'आँसू' की पंक्ति-पंक्ति में प्रेम की अतृप्ति का प्रकाशन हुआ है। 'लहर' में भी प्रेम की लालसा और हसरत का चित्रण मिलता है, एक चित्र देखिए—

चिर तृषित कंठ से तृप्ति-विधुर
वह कौन अकिंचन अति आतुर
अत्यन्त तिरस्कृत अर्थ सदृश
ध्वनि कम्पित करता बार-बार
धीरे से वह उठता पुकार—
मुझ को न मिला रे कभी प्यार !

इस निराशा और हसरत के कारण कवि का हृदय वेदना-विह्वल होकर हाहाकार कर उठता है। किन्तु इस वेदना और रुदन में ही छायावादी कवि भटका नहीं रहता। वह इस प्रेम को विशुद्ध और व्यापक बना देता है। उसके प्रेम में असफलता का अनुभव उसकी अपूर्णता अथवा उसके वासना-मिश्रित-भाव का द्योतक नहीं। उसका प्रेम आत्मसमर्पणमय है, जिसमें 'उत्सर्ग ही उत्सर्ग छलकता है।' उसका स्वभाव देना ही है, कुछ लेना नहीं। जो जितना देता है, वह उतना ही अधिक प्रेमी है—

पागल रे वह मिलता है कब;
उसको तो देते ही हैं सब
आँसू के कण-कण से गिनकर! (लहर)

इससे भी आगे बढ़कर छायावादी कवि प्रेम का उदात्तीकरण करता है। इस प्रेम की ज्वाला में वह प्रकाश दिखाई पड़ता है जो संसार को उज्ज्वल, शीतल और आलोकमय बनाने की क्षमता रखता है—

निर्मम जगती को तेरा
मंगलमय मिले उजाला,
इस जलते हुए हृदय की
कल्याणी शीतल ज्वाला। (आँसू)

और यह प्रेम सीमाहीन, विश्वव्यापी और स्वार्थ-वासना से रहित हो जाता है। अतृप्ति की कटुता और वासना का दंश समाप्त हो जाता है। निराशा और वेदना आशा एवं उल्लास में परिवर्तित हो जाती है। इस प्रेम-पथ का पथिक श्रांत-भवन में टिकना नहीं चाहता, वह तो वहाँ तक अपने पाँव की गति बढ़ाए रखना चाहता है, "जिसके आगे राह नहीं।"

कल्याणी नारी—प्रेम की इस उच्च भाव-भूमि की आलम्बन नारी केवल प्रेममयी, कलामयी, जीवन-सहचरी, 'सखी', 'प्रेयसी', 'प्राण' ही नहीं रहती, वह श्रद्धामयी, करुणामयी, प्रेरणामयी, शक्तिमयी कल्याणी भी है :

अकेली सुन्दरता कल्याणी
सकल ऐश्वर्यों की संधान;
देवि! माँ ! सहचरी! प्राण ! (पंत)

इस नारी को एक रहस्यमयी शक्ति के रूप में छायावाद में स्थान मिला है। श्रद्धा ही मनु को शाश्वत आनन्द की उपलब्धि कराती है। उसके उदार, शुद्ध मातृ-हृदय का अनुभव करते हुए मनु कहते हैं—

"तुम देवि ! आह कितनी उदार,
यह मातृ मूर्त्ति है निर्विकार;
हे सर्वमंगले ! तुम महती,
सब का दुःख अपने पर सहती!
कल्याणमयी वाणी कहती,
तुम क्षमा-निलय में हो रहती ।"

इस प्रकार छायावादी-काव्य में जो प्रेम का अभिनव रूप, नारी की अपूर्व प्रतिष्ठा और सौन्दर्य तथा यौवन का मानस-मंथनकारी नवीन अनुभव पाया जाता है, वह प्रसाद-काव्य की अद्‌भुत देन है। प्रेम यौवन और सौन्दर्य के अमर कवि प्रसाद ने छायावाद को अपनी अनेकानेक सूक्ष्म भाव-लहरियों और सौन्दर्य-किरनें देकर उसे आलोकित किया है।

छायावादी कलात्मक अभिव्यक्ति—रम्य कल्पनाएँ

छायावादी काव्य की मूल-भावना रोमाण्टिक है। यह मानसिक स्वच्छन्दता का काव्य है। रूढ़िगत प्राचीन काव्य से असन्तुष्ट होकर छायावादी कवियों ने नवीन-काव्य-सृजन का उत्साह दिखाया। नवीन सौन्दर्य-सृष्टि के लिए इनकी कल्पनाएँ इन्द्रधनुषी पंख लगाकर उड़ने लगीं। कविता 'कल्पना के कानन की रानी' बन गई। प्राचीन नायिका-चित्रण से असंतुष्ट होकर छायावादी कवि अपनी कल्पना की प्रेमिकाओं और पत्नियों का निर्माण करने लगे। वर्तमान संसार से असन्तुष्ट होकर वे अपनी भावनाओं और कल्पनाओं का नवीन संसार बसाने लगे, सौन्दर्य के प्राचीन-मानों से ऊबकर अपनी कल्पना की सुन्दर-सृष्टि करने लगे। वे परम्परागत अभिव्यक्ति-शैली के स्थान पर नवीन कल्पनायुक्त सूक्ष्म अभिव्यक्ति चाहने लगे। अपनी उर्वरा कल्पनाशक्ति के द्वारा छायावादी कवियों ने साधारण वस्तुओं और रूपों को भी असाधारण रूप प्रदान किया। अपनी कल्पना के उन्मुक्त विकास और विलास के लिए उन्हें अनन्त का उच्च और विस्तृत वितान तथा प्रकृति का विशाल प्रांगण ही मिल गया था। इस सुषमायुक्त प्राकृतिक

आँगन में उनकी कल्पना ने खूब गुल खिलाए। प्रसाद जी के काव्य में प्रकृति एवं नारी के अनेक कल्पनामय अद्भुत चित्र मिलते हैं।

मध्ययुग में 'नक्षत्र', 'प्रपात', 'वसन्त-रजनी', 'पवन', 'बादल', 'लहर', 'आँसू', 'चाँदनी', 'किरण', 'प्रात', 'कलिका', 'मधुवन' आदि पर स्वतन्त्र कविताएँ रचने की कल्पना भी किसी कवि के मन में नहीं हो सकती थी। परियों के बच्चे बने हुए मेघों के साथ छायावादी कवियों की कल्पना भी आकाश में उड़ी फिरती है। इसी कल्पना के पंखों पर चढ़कर छायावादी कवि प्रसाद कभी विस्मृति के गर्त में छिपे स्वर्णमय-अतीत की ओर झाँक आते हैं, कभी 'क्षितिज के उस पार' हो आते हैं, कभी नाना दृश्य-रूपों को मान्यता और विराटता प्रदान करते हैं तथा कभी भविष्य के आदर्श-लोक की स्थापना करते हैं।

द्विवेदी काल की आरम्भिक इतिवृत्तात्मक गद्यवत् शुष्क काव्य-शैली को छायावादी कवियों ने लाक्षणिक भाव-भंगिमा से युक्त कल्पनाशील कलात्मक शैली के रूप में परिवर्तित कर दिया। प्रकृति के क्रोड़ से उनकी सजग कल्पना अनेक नवीन उपमानों को खोज लाई। भाषा को नवीन रूप, रंग, ध्वनि, लालित्य और अभिव्यंजना शक्ति प्रदान करने का श्रेय प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी—छायावाद के इन प्रमुख कवियों को है। नव गति, नव लय-ताल, नवीन पद, नव छन्द और सब कुछ नव का जो आग्रह बढ़ा, उसने एक नूतन कला का सृजन किया। पूर्वकाल की लालित्य-रहित पदावली के स्थान पर ध्वन्यार्थ-व्यंजक मधुर शब्दों तथा संगीतात्मक ललित पदों से कविता-कामिनी का शृंगार होने लगा। द्विवेदी युगीन भाषा-शैली से छायावादी भाषा-शैली का अन्तर स्पष्ट करने के लिए हम प्रसाद जी की ही दो भिन्न-भिन्न शैलियों के उदाहरण देते हैं। उसके 'कानन-कुसुम' की कई कविताएँ द्विवेदी युग की भाषा-शैली का नमूना प्रस्तुत करती हैं। निम्न पंक्तियाँ देखिए—

दिननाथ अपने पीत कर से थे सहारा ले रहे
उस शृंग पर अपनी प्रभा मलिना दिखाते ही रहे
वह रूप पतनोन्मुख दिवाकर का हुआ पीला अहो
भय और व्याकुलता प्रकट होती नहीं किसकी कहो

'कानन-कुसुम' की 'भक्ति योग', 'जलद-आवाहन' आदि कविताओं की उपर्युक्त पंक्तियों जैसी इतिवृत्तात्मक भाषा-शैली और छन्द-योजना द्विवेदी युग की गुप्त और अयोध्यासिंह उपाध्याय की भाष-शैली से पूर्ण साम्य रखती है। इसके विपरीत 'आँसू' का पहला ही छन्द देखिए—

इस करुणा कलित हृदय में
अब विकल रागिनी बजती

क्यों हाहाकार स्वरों में
वेदना असीम गरजती ?

भाषा में कैसा ध्वनि-लालित्य एवं श्रुति-कोमलता है। नवीन छन्द, भाषा की प्रवाहात्मकता, सरसता, ध्वनियों का सामंजस्य, विशेषण-विपर्यय आदि द्वारा भाषा की शक्ति—ये इस पदावली की कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो इसे द्विवेदी युग की शुष्क-शैली से पृथक् करती हैं। द्विवेदी काल की एक भी कविता में ऐसी स्फीत वाग्धारा नहीं मिलेगी।

प्रसाद जी ने पंत, निराला, महादेवी आदि प्रमुख छायावादी कवियों की तरह मधु, सुधा, सुरभि, स्वर्ण, मधुर, स्पन्दन, कम्पन, मृदु, मृदुल, मुग्ध, चंचल, अंचल, आँसू, नीरव, अरुण, चपल, तरल आदि अनेक छोटे-छोटे लघु वर्णों के रोमानी शब्दों का मोहक और सजीव प्रयोग किया है। इन कवियों ने अँग्रेजी के भी अनेक रोमानी शब्दों को छायानुवाद करके ग्रहण किया है, जैसे—भग्न हृदय (Broken heart), 'स्वर्गीय प्रकाश' (Heavenly light), 'सुनहला स्वप्न' (Golden dream,), 'शाश्वत नभ के गान' (Eternal music of the sphere), उष्ण विचार (Warm feeling) आदि। रोमानी शब्दों का यह चयन छायावादी कवियों की रोमांटिक प्रवृत्ति का ही द्योतक है। इस प्रकार इन कवियों ने अपने शब्द-भण्डार को खूब समृद्ध किया। उन्होंने कविता में अनेक शब्दों को नया अर्थ दिया और अनेक नए कोमलकांत पदों का आविष्कार किया। छायावादी सभी कवियों की तरह प्रसाद की एक बहुत बड़ी विशेषता है साभिप्राय चित्रात्मक, लाक्षणिक विशेषणों का प्रयोग। किशोर सुन्दरता, उज्ज्वल वरदान, सुप्त व्यथा, सजल संसृति, बीहड़ वेला, सुरभित लहर, ढीली साँस आदि प्रयोग प्रसाद जी की कला-मर्मज्ञता के परिचायक हैं।

कल्पना-प्रवणता की अपार विशेषता के ही कारण छायावादी कवियों ने अपनी अद्‌भुत चित्र-शक्ति का परिचय दिया है। इनकी कल्पना इतनी सचेतन एवं प्रखर है कि प्रत्येक अनुभूति उनके सम्मुख चित्र रूप में आती है। उनकी भाषा सर्वत्र बिम्बग्राहिणी है। यही कारण है कि उनके काव्य में अनेक वस्तुओं-रूपों के संश्लिष्ट चित्र पाए जाते हैं। चित्रकला का यह कौशल यहाँ तक बढ़ा-चढ़ा हुआ है, कि कहीं-कहीं एक ही शब्द-चित्र को प्रस्तुत करने की क्षमता रखता है। शब्द-चित्रों (One word-picture) की प्रवृत्ति प्रसाद में और पन्त में बहुत है। प्रसाद जी की 'कामायनी' में तो शब्द-चित्र स्थान-स्थान पर मिलते हैं। "अरी आँधियो ! ओ बिजली की दिवा-रात्रि तेरा नर्तन"—बिजली की दिवा-रात्रि में चित्रोपमता की पराकाष्ठा है। 'चिंता', 'लज्जा' अदि अमूर्त-भावों के लिए जो विशेषण रूप में शब्द-चित्र प्रसाद जी ने प्रयुक्त किए हैं, वे एक-से-एक बढ़कर हैं। 'चिंता' के लिए—'अरी अभाव की चपल बालिके, री ललाट की खल रेखा' आदि सब प्रयोग

चित्रात्मक हैं। 'लज्जा' का बहुत ही सुन्दर भाव-चित्र देखिए—

"मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हूँ
मैं शालीनता सिखलाती हूँ,
× × ×
लाली बन सरल कपोलों में
आँखों में अंजन-सी लगती;
कुंचित अलकों सी घुंघराली
मन की मरोर बन कर जगती।
× × ×
मैं वह हल्की सी मसलन हूँ
जो बनती कानों की लाली।"

इस तरह छायावादी सांकेतिक शैली का निर्माण प्रसाद जी की विशेष देन है। भाषा की अभिधा-शक्ति के स्थान पर उन्होंने लक्षणा-व्यंजना से अपनी भाषा को प्रभावशाली बनाया है। अनेक प्रकार के लाक्षणिक प्रयोग—जैसे, कहीं सत्त्ववाचक के लिए असत्त्ववाचक का प्रयोग, कहीं क्रिया के रूप में लाक्षणिक प्रयोग, कहीं विरोधमूलक शब्दों के द्वारा, कहीं विशेषण-विपर्यय और कहीं मानवीकरण द्वारा भाषा को सशक्त बनाया है। प्रसाद की 'आँसू', 'लहर' और विशेषत: 'कामायनी' में छायावादी कलात्मक शैली के सभी सूक्ष्म उपकरण प्राप्त होते हैं।

सौन्दर्यमय प्रतीक विधान भी छायावादी चित्रात्मक, सांकेतिक, लाक्षणिक भाषा-शैली की एक विशेषता है। प्रसाद जी के प्रतीक बड़े मनमोहक होते हैं। एक उदाहरण देखिए—

मधुमय वसंत जीवन-वन के,
वह अन्तरिक्ष की लहरों में,
कब आए थे तुम चुपके-से
रजनी के पिछले पहरों में। (कामायनी)

इन पंक्तियों में 'मधुमय वसंत', यौवन के लिए, 'अंतरिक्ष की लहर' किशोर भावनाओं के लिए, तथा 'रजनी का पिछला पहर' वय:संधि के प्रतीक रूप है।

छायावादी कवियों की नवीन औपम्य-योजना भी प्रसाद जी में सर्वाधिक है। मूर्त्त-अमूर्त्त का सुन्दर अप्रस्तुत-विधान उनके काव्य की भी सबसे बड़ी विशेषता है। हमने प्रसाद जी की कला के प्रकरण में उनकी इस विशेषता पर प्रकाश डाला है। प्रभाव-साम्य पर बल रहने के कारण उनकी अभिव्यक्ति बहुत सूक्ष्म तथा सांकेतिक है। यह सांकेतिक अभिव्यक्ति अन्योक्ति, समासोक्ति, रूपकातिशयोक्ति और सांगरूपकों के रूप में भी बहुधा प्रकट हुई है। प्रभावसाम्यमूलक अप्रस्तुतों के अतिरिक्त छायावादी कविता में तुलना और विरोधाभासमूलक

अप्रस्तुतों की भी कमी नहीं है। प्रसाद और महादेवी में यह प्रवृत्ति बहुत अधिक है। 'आँसू' की 'शीतल ज्वाला जलती है, ईंधन होता दृगजल का' पंक्ति में सुन्दर विरोधाभास है। इसी प्रकार के सुन्दर प्रयोग 'कामायनी' में पाए जाते हैं।

वैयक्तिक गीति काव्य

छायावादी कविता वैयक्तिक कविता है। कवियों के व्यक्तिगत सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, उनकी अपनी अनुभूतियों का भावावेशमय चित्रण ही छायावाद में हुआ है। यही कारण है कि छायावादी कविता मुख्य रूप से प्रगीतात्मक ही रही है। जब कवि अपने ही सुख-दुःख की भावावेशमय अभिव्यक्ति पर ध्यान रखेगा, तो उसकी वाग्धारा प्रगीत (Lyric) के रूप में ही प्रकट होगी। इसी से समस्त छायावादी कविता मुक्तक प्रगीत-काव्य है। इसमें 'ग्रन्थि', 'राम की शक्ति-पूजा', 'तुलसीदास' आदि खंड-काव्य नाममात्र को ही रचे गए हैं, और उनमें भी अंतर्मुखी भावना के प्राधान्य के कारण खंड-काव्य के लक्षणों की अपेक्षा, गीति-काव्य के लक्षण ही अधिक स्पष्ट हुए हैं। व्यक्तित्व की प्रधानता के कारण छायावादी कवि को उन कथाओं से कोई सरोकार नहीं रहा जो स्वयं उनके भाव-क्षेत्र में नहीं आती थीं। इसीलिए बाह्यार्थपरक प्रबन्ध काव्य की रचना छायावाद में नहीं हुई। समस्त छायावादी काव्य में 'कामायनी' एक ऐसा प्रबन्ध काव्य है, जिसमें प्रसाद जी ने बाह्य कथा का आधार अपनाने का प्रयास किया है परन्तु उसमें भी भाव-प्रवणता, बाह्य प्रसंगों और घटनाओं के घात-प्रतिघातों के अभाव तथा प्रगीतात्मक एवं व्यंजक भाषा के कारण प्रबन्ध-सौष्ठव पूर्ण रूप में नहीं आ सका। फिर भी 'कामायनी' जैसा सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य छायावादी कविता को प्रसाद जी की महत्त्व-पूर्ण देन है। इसके अतिरिक्त प्रसाद जी ने छायावादी गीति-काव्य को पूर्णता प्रदान करने में भी योग दिया है। 'झरना', 'लहर' आदि संग्रहों में उनके श्रेष्ठ गीत गीति-काव्य का चरमोत्कर्ष उपस्थित करते हैं।

छन्द-योजना

छायावादी कवियों ने छन्द-योजना में भी अद्भुत नूतनता दिखाई। परम्परागत काव्य-रूढ़ियों से इन कवियों को घृणा थी, फलतः छन्द के प्राचीन बन्धनों में बंधना इन्हें रुचिकर प्रतीत न हुआ। इसीलिए नवीन छन्दों का प्रयोग स्वतन्त्रता से हुआ। प्रसाद जी ने मात्रिक छन्दों में ऐसे प्रकारों की सृष्टि की जिनमें प्रत्येक चरण में भिन्न-भिन्न छन्दों के चरण पाये जाते हैं। द्विवेदी जी ने संस्कृत के वार्णिक छंदों का महत्त्व जता दिया था, किंतु खड़ीबोली के लिए इन छंदों की अनुपयुक्तता छायावादी कवियों ने बहुत शीघ्र अनुभव कर ली थी। यही कारण है कि इन

छायावादी कवियों ने पूर्व काल के साँचे के स्थान पर, अपनी अभिव्यंजना को सफल बनाने के लिए नए छंदों, नए साँचों का आविष्कार किया। प्रसाद, निराला आदि ने बंगला से प्रभावित होकर भी नए छन्द-विधान को अपनाया। आरम्भ में भिन्नतुकान्तता की भी प्रवृत्ति हुई थी। 'ग्रंथि' (पंत), 'प्रेम-पथिक' (प्रसाद) आदि रचनाएँ इसी का परिणाम है। किन्तु बाद में तुकान्त छन्द अधिक अपनाए गए। तुकान्त छन्दों में भी इन कवियों ने कई नए भेदों का निर्माण किया। निराला ने तो मुक्त-छन्द ही निकाल डाला। छायावादी कवियों की छन्द-सम्बन्धी यह स्वतन्त्रता उनकी भाव-स्वच्छन्दता का ही परिणाम है। प्रसाद जी ने छन्द के अनुसार भावों को ढालने की अपेक्षा भावों के अनुसार छन्द को ढाला है।

इसी प्रकार छायावादी कलातमक अभिव्यक्ति, नवीन भाषा-शैली, नवीन शब्द-योजना, नवीन छन्द-प्रयोग आदि सभी विशेषताएँ प्रसाद-काव्य में प्राप्त होती हैं। वस्तुतः छायावाद के प्रवर्तन का श्रेय ही प्रसाद, पंत और निराला को है। इन कवियों ने अपनी कला को गीतात्मकता या संगीत एवं चित्रात्मकता पर गढ़ा है। उनकी रंगीन-कला उनकी कल्पना-शक्ति की अद्‌भुत देन है। छायावाद के अभ्युदय में प्रसाद जी ने बहुत कार्य किया। उनके छायावादी व्यक्तित्व की छाप उनके सभी प्रकार के काव्य में ढूँढ़ी जा सकती है। प्रसाद जी ने छायावाद को ऐतिहासिक महत्ता प्रदान की। इस छायावादी दृष्टि का प्रभाव साहित्य पर व्यापक रूप से पड़ा। समाज और साहित्य को उसने जिस तरह पुरानी रूढ़ियों से मुक्त किया, उसी तरह आधुनिक राष्ट्रीय और मानवतावादी भावनाओं की ओर भी प्रेरित किया। व्यक्ति की स्वाधीनता, विराट् कल्पना, प्रकृति-साहचर्य, मानव-प्रेम, वैयक्तिक प्रणय, उच्च नैतिक आदर्श, देश-भक्ति, राष्ट्रीय स्वाधीनता आदि के प्रसार द्वारा छायावाद ने हिन्दी जगत् के जीवन में जो ऐतिहासिक काम किया है, उनमें सर्वाधिक योग प्रसाद जी का ही है। प्रसाद जी द्वारा प्रवर्त्तित इस छायावादी जीवन-दृष्टि तथा कल्पना-रुचिरता का व्यापक प्रसार कविता के अतिरिक्त कहानी, नाटक, उपन्यास, आलोचना आदि अन्य काव्य-रूपों में भी हुआ है। प्रसाद जी की 'आकाश दीप', 'स्वर्ग के खंडहर में' जैसी कहानियाँ कथा-साहित्य में उनके छायावादी व्यक्तित्व के प्रसार की द्योतक हैं। प्रसाद जी की 'तितली' को छायावादी पुतली कहना अत्योक्ति न होगी। उनके 'अजातशत्रु', 'स्कंदगुप्त', 'कामना' आदि नाटकों में भी छायावादी रंग गहरा है। एक विशेष प्रकार की रोमानियत उनके साहित्य में सर्वत्र ही देखी जा सकती है। यही नहीं, छायावादी भावुकता, कल्पना-प्रियता और नवीन लाक्षणिक भाव-भंगिमा के समावेश से हिन्दी-गद्य-शैली में नवीन रूप-रंग भरने का श्रेय भी प्रसाद जी को है। इनके छायावादी व्यक्तित्व द्वारा हिन्दी साहित्य-जगत में एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक कार्य की पूर्ति हुई, संदेह नहीं।

11

कवि-पंत की सौन्दर्य-भावना

1. सौन्दर्य प्रवृत्ति
2. प्रकृति-सौन्दर्य
3. नारी-सौन्दर्य
4 रहस्य-सौन्दर्य
5. सत्यं, शिवं, सुन्दरम् का समन्वय
6. मानव-जीवन-सौन्दर्य
7. सौन्दर्य-भावना में परिवर्तन
8. अन्तिम परिणति और उपसंहार

सौन्दर्य-प्रवृत्ति

सौन्दर्य-प्रवृत्ति या सौन्दर्य-भावना मानव की सहज वृत्ति है। सौन्दर्य का आकर्षण अद्‌भुत होता है। प्रत्येक सहृदय मनुष्य मंत्र-विमोहित-सा सौन्दर्य की ओर खिंचा जाता है। प्रकृति के सुन्दर दृश्य, नारी का रूप-सौन्दर्य, बालक का चंचल एवं भोला सौन्दर्य, चित्रकार की तूलिका के कमाल आदि सौन्दर्य के विविध रूप प्रत्येक प्राणी को आकर्षित करते हैं। सौन्दर्य केवल बाह्यपरक नहीं होता, मन और आत्मा का सौन्दर्य भी मुग्ध करता है। बाहरी तौर पर चाहे इस अन्तः सौंदर्य में कुछ विशेषता दिखाई न पड़े, पर भावों का सौन्दर्य—आत्मा का सौन्दर्य—बाह्य सौन्दर्य से भी अधिक प्रभावकारी होता है। काव्य में सौन्दर्य के ये दोनों रूप —बाह्य सौन्दर्य एवं अन्तः सौन्दर्य—भिन्न-भिन्न प्रकार से कवि-अनुभूति का विषय बनते रहे हैं।

छायावाद के प्रमुख स्तम्भ कविवर पंत का काव्य 'सुन्दरम्' से ओतप्रोत है। उनके छायावादी काव्य में तो 'सुन्दर' का प्रमुख स्थान है, 'शिवं' और 'सत्यं' का स्थान उसके बाद है। पंत जी की काव्य-चेतना में परिवर्तन के साथ-साथ उनकी सौन्दर्य-भावना भी बदलती रही है।

प्रकृति-सौन्दर्य : अल्मोड़ा जिले के पर्वतीय प्रांत में उत्पन्न हुआ कवि आरंभ में प्रकृति की अनंत सुषमा से प्रभावित हुआ। तुषार-मण्डित शुभ्र शैल-श्रेणियों,

हरियाली उपत्यकाओं, जल-प्रपातों, झीलों झरनों, रजत-रजनियों में उन्मुक्त विचरने वाला कवि प्रकृति का अनुरागी बन गया। यौवनागम के समय मानव के लिए मानवी-सौन्दर्य का आकर्षण सर्वाधिक होता है। युवक कवि नारी-सौन्दर्य पर भी मुग्ध हुआ। पर कई बार तो प्रकृति ने उसे इतना आकृष्ट किया है कि उसकी तुलना में उसे नारी-सौन्दर्य कम आकर्षक प्रतीत हुआ है। वह अपनी कल्पना की सुन्दरी बाला से स्पष्ट कहता है कि प्रकृति की अनन्त सुषमा को छोड़कर मैं तेरे मांसल सौन्दर्य की सीमा में अपने को कैसे बाँध सकता हूँ ?

छोड़ द्रुमों की मृदुल छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया
बाले ! तेरे बाल-जाल में, कैसे उलझा लूं लोचन।
तज कर तरल तरंगों को, इन्द्रधनुष के रंगों को;
तेरे भ्रू भंगों में कैसे, बिधवा दूं निज मृग-सा मन॥

प्रकृति के सुकुमार कवि पंत ने "मधुकर का-सा जीवन" अपनाकर कंटीले कांटों से बचते हुए, निशि-भोर "सुमन-दल चुने" हैं। प्रकृति के सौन्दर्य में कवि ने खूब मन रमाया है: चांदनी रातों में घण्टों नौका-विहार किया है। उसने सैकत-शैय्या पर लेटी दुग्ध-धवल गंगा का पूत तापसी-रूप निहारा है। प्रकृति के अनेक सौन्दर्य-चित्रों का पंत जी ने अपनी अनुभूति के बल से सजीव अंकन किया है। एक उदाहरण देखिए :

नौका से उठती जल-हिलोर
हिल पड़ते नभ के ओर-छोर

× × ×

सामने शुक्र की छवि झल-मल, पैरती परी-सी जल में कल,
रूपहले कचों में हो ओझल।
लहरों के घूंघट से झुक-झुक दशमी का शशि निज तिर्यक् मुख
दिखलाता मुग्धा-सा रुक-रुक। —नौका-विहार

पिक के कल-कूजन, भ्रमरों की मधु गुंजार, सरिताओं और झरनों के सरगम कवि पंत को मुग्ध करते हैं। मधुपकुमारी से अनुनय-विनय करता हुआ कवि कहता है :

सिखला दो ना हे मधुप कुमारी ! मुझे भी अपना मीठा गान।

नारी-सौन्दर्य : इस प्रकार कवि पंत की सौन्दर्य-भावना का प्रथम विकास प्राकृतिक सौन्दर्यानुभूति के रूप में हुआ। प्रकृति की शांत, आह्लादक, चित्र-विचित्र रंगों और रूपों में सजी क्रोड़ पाकर कवि मंत्र-मुग्ध-सा हो जाता रहा है। पर इसके साथ-साथ कवि नारी-सौन्दर्य का भी अनुरागी रहा है। नारी के अंग-प्रत्यंग-सौन्दर्य में कवि ने प्रकृति की स्वाभाविक सुषमा-जैसी छटा ही अनुभव की है: होठों की लाली में प्रातः की अरुणिमा, वाणी में पिक की मधु तान और

त्रिवेणी की लहरों का गान, घने काले केशों में मेघों की श्यामलता है :

> (i) **अरुण अधरों का पल्लव-प्रात, मोतियों का हिलता हिम हास,**
> **हृदय में खिल उठता तत्काल, अध-खिले अंगों का मधुमास।**
> (ii) **तुम्हारे छूने में था प्राण ! संग में पावन गंगा-स्नान !**
> **तुम्हारी वाणी में कल्याणी ! त्रिवेणी की लहरों का गान ।।**

नारी-सौन्दर्य का कैसा पावन, सूक्ष्म मानसिक चित्रण है ! कवि पंत ने रीतिकालीन कवियों-जैसा स्थूल सौन्दर्य-चित्रण नहीं किया। प्रकृति से भव्य उपमान चुनकर ही पंत जी ने अपनी 'प्रेयसी' और 'भावी पत्नी' का सुन्दर श्रृंगार किया है। बहुधा प्रकृति ने ही अपनी सौन्दर्य-निधि प्रदान कर नारी की अंग-यष्टि का भव्य निर्माण किया है। नील गगन ने नयनों में चुपचाप नीलिमा ढाल दी, लहरों ने चंचलता प्रदान की—

> **मुग्ध स्वर्ण किरणों ने प्रात, प्रथम खिलाए वे जलजात।**
> **नील व्योम ने ढल अज्ञात, उन्हें नीलिमा दी नव जात।**
> **आकुल लहरों ने तत्काल, उनमें चंचलता दी ढाल।**

यही नहीं, प्रेयसी का अद्भुत सौन्दर्य भी प्रकृति में सुषमा भरता है। उसकी सुगंधित श्वासों से ही प्रकृति में मधुमास छा जाता है, उस तन्वी से प्रेरणा लेकर ही लवंग लता अपने अंग चुनाती है :

> **तुम्हारी पी मुख-वास छवि आज बौरे भौंरे सहकार।**
> **चुनौती लवंगलता निज अंग, तन्वी तुमसी बनने सुकुमार ।।**

रहस्य-सौन्दर्य : इस प्रकार प्रकृति-सौन्दर्य और मानवी-सौन्दर्य पंत-काव्य में एकाकार हो गया है। प्रकृति की सौन्दर्य-छटा से ही विस्मय-विमुग्ध हुआ कवि उसमें अलौकिक सत्ता के सौन्दर्य का आभास पाने लगता है। वह आश्चर्यचकित हो प्रश्न कर उठता है, कि वह परम सौन्दर्य-राशि कहाँ है, जिस पर जगत् की अनंत सुषमा भी मुग्ध है:

> **मैं चिर उत्कंठातुर**
> **जगति के अखिल चराचर**
> **यों मौन-मुग्ध किसके बल ?**

संध्या की लाली में वह उस परम सौन्दर्य-सत्ता की मुस्कान का अनुभव करता है—

> **हुआ था जब संध्यालोक, हँस रहे थे तुम पश्चिम ओर।**
> **विहग-रव बनकर मैं चितचोर ! गा रहा था गुण किन्तु कठोर !**

सत्यं-शिवं-सुन्दरं का समन्वय : पंत की सौन्दर्य-भावना सत्य और शिव से समन्वित है। सौन्दर्य में सत्य का संधान कवि पंत को रहस्य-सत्ता की ओर ले

गया और शिवं की खोज ने उसे मानव-सौन्दर्य की ओर आकृष्ट किया। कवि ने उस परम सत्य के निमंत्रण, संकेत, आदेश प्राकृतिक सुषमा में ही अनुभव किये। कवि को विस्मय होता है कि न-जाने कौन नक्षत्रों के द्वारा उसे मौन निमंत्रण देता है, न-जाने कौन सौरभ के मिस मौन संदेश भेजता है? और कवि उस सौन्दर्य-सत्ता का दर्शन करने को व्याकुल हो उठता है:

ऐ असीम सौन्दर्य राशिमय हृदकम्पन से अन्तर्धान।
विश्वकामिनी की पावन छवि, मुझे दिखाओ करुणावान्।

और अंत में इतनी कातरता और विह्वलता के पश्चात् कवि-जीवन में रूप-सुधा बरसी, उसे जीवन-निधि प्राप्त हुई, सत्य का साक्षात्कार ही नहीं हुआ, कवि उससे एकाकार हो गया—

एक हूँ मैं तुमसे सब भाँति जलद हूँ मैं यदि तुम हो स्वाति।

मानव-जीवन-सौन्दर्य : कवि पंत ने प्रकृति से सत्य और शिव की उपलब्धि की। प्रकृति के उपादान मानव के सम्मुख जीवन के अनेक सत्यों का उद्घाटन करते हैं। वन की सूनी डाली पर खिली कलि मानव को दुख भी सुखपूर्वक सहन करने की शिक्षा देती है, हंसमुख प्रसून महत् आत्मबलिदान का संदेश देते हैं:

हंसमुख प्रसून सिखलाते पल भर है जो हँस पाओ
अपने उर की सौरभ से जग का आंगन भर जाओ।

सौन्दर्य-भावना में परिवर्तन : 'गुंजन' में आकर कवि पंत की सौन्दर्य-भावना में परिवर्तन की दिशा दिखाई दी। वह मानव-जीवन-सौन्दर्य का गायक बन गया। 'युगांत' में आकर तो कवि की सौन्दर्य-भावना में अद्‌भुत परिवर्तन हो गया। 'गुंजन' में कवि पंत जग-जीवन के सौन्दर्य का गायक बना था, वह सुन्दर से सुन्दरतम की आकांक्षा इसी जग-जीवन में करने लगा—

सुन्दर से सुन्दरतर सुन्दरतर से सुन्दरतम
सुन्दर जीवन का क्रम रे सुन्दर-सुन्दर जग-जीवन

विहग, तरु, सुमन—प्रकृति—भी सुन्दर है, पर मानव सबसे सुन्दर है—"सुन्दर हैं विहग, सुमन सुन्दर, मानव, तुम सबसे सुन्दरतम।" (युगांत)।

मानव-जीवन-सौन्दर्य की इस तीव्र आकांक्षा ने कवि पंत की सौन्दर्य-चेतना में जबरदस्त परिवर्तन उपस्थित कर दिया। 'युगांत,' 'युगवाणी,' और 'ग्राम्या' में कवि का दृष्टिकोण सर्वथा बदल गया। वह पुकार उठा—

आज असुन्दर लगते सुन्दर, प्रिय पीड़ित-शोषित जन
जीवन के दैन्यों से जर्जर मानव मुख हरता मन। —युगवाणी

इसी भावना-परिवर्तन के कारण कवि पंत को सौन्दर्य और प्रेम का प्रतीक ताजमहल असुन्दर और "मृत्यु का पार्थिव पूजन"-सा लगने लगता है। कवि जग-जीवन की विषणणता पर शोक प्रकट करता हुआ कहता है:

शव को दें हम रूप-रंग आदर मानव का ?
मानव को हम कुत्सित चित्र बना दें शव का ?

अपनी इस सौन्दर्य-दृष्टि के सम्बन्ध में स्वयं कवि पंत ने कहा है, "मानव-स्वभाव का भी मैंने सुन्दर ही पक्ष ग्रहण किया है। इसी से मेरा मन वर्तमान समाज की कुत्साओं से कटकर भावी समाज की कल्पना की ओर प्रभावित हुआ—यह आशा मुझे अज्ञात रूप से सदैव आकर्षित करती रही है—

"मनुज प्रेम से जहाँ रह सकें, मानव-ईश्वर।
और कौन-सा स्वर्ग चाहिये मुझे धरा पर ?"

प्रगतिवाद या भौतिक जीवन-दर्शन का कवि पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह जर्जर और दलित जीवन का गायक बन गया। जीवन की इस विषमता के रहते, प्रकृति के कल्पना-लोक में विचरने का किसे अवकाश है ?—

कहाँ मनुज को अवसर देखे मधुर प्रकृति-मुख ?
भव-अभाव से जर्जर प्रकृति उसे देगी सुख ?

अब तो ग्राम-प्रकृति ही सुन्दर प्रतीत होती है। 'भारत माता ग्राम-वासिनी' का धूल-भरा ग्राम-प्रांत का मटमैला आंचल ही अब सौन्दर्य-भावना जगाता है। प्रकृति भी अब जग के दुख-दैन्य पर आठ-आठ आंसू बहाती प्रतीत होती है: चांदनी का यह वर्णन देखिए—

जग के दुख-दैन्य शयन पर यह रुग्णा जीवन बाला
रे कब से जाग रही वह आँसू की नीरव माला !

ग्राम-प्रांत का यह रात्रि-वातावरण जर्जर जीवन को और भी विषण्ण बना रहा है—

विरहा गाते गाड़ी वाले, भूँक-भूँक कर लड़ते कूकर।
हुआ-हुआ करते सियार, देते विषण्ण निशि-वेला को स्वर।

अंतिम परिणति : 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' के बाद कवि मानव-जीवन के सांस्कृतिक विकास की ओर अधिक उन्मुख हुआ। यद्यपि इस प्रगतिवादी काल में भी उसने केवल भौतिक उन्नति को सब-कुछ कभी नहीं माना, वस्तुतः वह अर्थ-विषमता का हल ही केवल भौतिकवाद या मार्क्सवाद द्वारा संभव मानता था, जीवन के पूर्ण विकास के लिए वह आत्मिक उन्नति भी आवश्यक मानता रहा। परवर्ती रचनाओं में कवि पंत ने सांस्कृतिक और आत्मिक विकास को महत्त्व प्रदान किया। 'स्वर्णकिरण,' 'स्वर्णधूलि' तथा अन्य परवर्ती रचनाओं में कवि ने उच्च सांस्कृतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा में ही सौन्दर्य का अवलोकन किया है। अरविन्द के अध्यात्म-दर्शन का भी उस पर प्रभाव पड़ा। सभी जीवन-दर्शनों और सौन्दर्य-दृष्टियों का समन्वय कवि के काव्य की विशेषता बन गई। वह संकुचित घेरों से बाहर निकलकर विश्व-संस्कृति और मानवतावाद का पोषक बन गया। विश्व-कल्याण-कामना ही उसकी सुन्दरतम सौन्दर्य-भावना बन गई। इस प्रकार कवि पंत की सौन्दर्य-चेतना ने परिवर्तन की कई करवटें ली हैं। आरम्भ में वह सुन्दरम् का ही मुख्य गायक था, पर शनैः शनैः वह सत्यं और शिवं की ओर बढ़ता गया।

●●

13

धर्मवीर भारती

कवि-व्यक्तित्व और कृतित्व

हिन्दी के प्रसिद्ध साप्ताहिक 'धर्मयुग' के अभूतपूर्व सम्पादक डा० धर्मवीर भारती ने गत पैंतीस वर्षों में हिन्दी जगत् में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया है। लगभग सन् 1950 से उनकी रचनाएँ प्रकाश में आने लगी थीं। षष्ठिपूर्ति (जन्म 25 दिसम्बर, 1926 ई०) के इस साहित्यकार ने उपन्यास, कविता, नाटक आदि कई साहित्य-विधाओं में शैली-शिल्प और चिंतन की नवीन-नवीन पद्धतियों का उन्मेष किया है। आप न-केवल एक सफल सम्पादक हैं, अपितु हिन्दी के एक श्रेष्ठ कथाकार होने के साथ-साथ उच्च कोटि के कवि भी हैं। कथाकार के रूप में आपकी प्रतिभा का अधिक प्रखर रूप प्रकट हुआ है या कवि-रूप में—यह विवाद का विषय हो सकता है, पर इस तथ्य से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि भारती का कवि-रूप उनके कथाकार (उपन्यासकार, नाटककार, कहानीकार) पर भी छाया रहता है।

जयशंकर प्रसाद की तरह भारती की रोमानी प्रवृत्ति (यद्यपि भिन्न रूप में) उनकी सब रचनाओं में पाई जाती है। सौन्दर्य, यौवन और कला का प्रेमी यह साहित्यकार मूलतः भावुक और रोमान्टिक कलाकार है। इसीसे सब क्षेत्रों में उसने स्वच्छन्द गति दिखाई है।

अपने विद्यार्थी-जीवन-काल में ही श्री धर्मवीर भारती ने साहित्य-सृजन की प्रतिभा प्रकट कर दी थी। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से स्नातकीय परीक्षा पास करने के बाद भारती ने प्रथम श्रेणी में हिन्दी एम० ए० की उपाधि प्राप्त की। भारती को इलाहाबाद विश्वविद्यालय का सर्वाधिक अध्ययनशील छात्र घोषित किया गया और इस उपलक्ष्य में उन्हें चिंतामणि घोष स्वर्णपदक प्रदान किया गया। भारती की इस अध्ययनशील प्रवृत्ति ने उन्हें भावुक के साथ-साथ मननशील और चिंतनशील बनाया, यही कारण है कि उनकी समस्त रचनाएँ भावना के साथ-साथ जीवन-बोध और युग-बोध की परिचायक हैं। भारती ने एम०ए० के पश्चात

'सिद्ध साहित्य' पर डा० धीरेन्द्र वर्मा के निरीक्षण में शोधकार्य कर पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय में ही प्राध्यापक लग गये थे। पर उनका सर्जक अपने को अध्यापकीय क्षेत्र में ही सीमित नहीं रख सका। फलतः सन् 1959 में वे बम्बई से प्रकाशित होने वाले हिन्दी के प्रसिद्ध साप्ताहिक 'धर्मयुग' के प्रधान सम्पादक नियुक्त हो गए। इस पत्रिका के सम्पादक बनने से आप टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रकाशन तथा भारतीय ज्ञानपीठ-जैसी प्रसिद्ध प्रकाशन-संस्थाओं से सम्बद्ध हो गए। आपकी प्रायः सभी रचनाएँ भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित हुई हैं।

यद्यपि भारती अपने दो उपन्यासों—'गुनाहों का देवता' और 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' के कारण हिन्दी में पहले ही कथाकार के रूप में प्रसिद्धि पा चुके थे पर 'धर्मयुग' का सम्पादक बनने के बाद तो आपको अपनी प्रतिभा प्रकट करने का विशेष अवसर मिल गया। लगभग इसी समय आपकी काव्य-कृति 'कनुप्रिया' प्रकाश में आई जिससे कवि के रूप में भी आपकी विशेष ख्याति हुई। 'कनुप्रिया' से पूर्व भारती जी की 'सात गीत वर्ष' और 'ठण्डा लोहा' (1952 ई०) दो काव्य-संग्रह, और जनवरी 1956 में 'अंधायुग' नामक काव्य-नाटिका प्रकाशित हो चुके थे। पर कवि के रूप में उनकी परम प्रतिष्ठा 'कनुप्रिया' से विशेष हुई। 'अंधायुग' काव्य-नाटिका का भी खूब प्रचार और रेडियो पर प्रसारण हुआ। सन् 1954 में श्री धर्मवीर भारती के पाँच एकांकी नाटकों का संग्रह 'नदी प्यासी थी' नाम से प्रकाशित हुआ। 'मुर्दों का गाँव', 'चाँद और टूटे हुए लोग' तथा 'बन्द गली का आखिरी मकान' नामक उनके तीन कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त प्रसिद्ध अंग्रेजी लेखक आस्कर वाइल्ड की कहानियों का हिन्दी अनुवाद उन्होंने 'आस्कर वाइल्ड की कहानियाँ' नामक संग्रह में किया है। 'देशान्तर' नामक संग्रह में भारती ने इक्कीस पाश्चात्य देशों की 161 कविताओं का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया है। 'सिद्ध साहित्य' (शोध-प्रबंध) के अतिरिक्त 'प्रगतिवाद : एक समीक्षा' और 'मानव-मूल्य और साहित्य' उनकी साहित्य-समीक्षा-सम्बन्धी रचनाएँ हैं। 'ठेले पर हिमालय', 'कहनी-अनकहनी' और 'पश्यन्ती' नामक संग्रहों में उनके ललित और वैयक्तिक निबंध तथा गद्य-रचनाएँ संकलित हैं। 1968 में भारती का एक और काव्य-नाटक 'सृष्टि का आखिरी आदमी' प्रकाशित हुआ।

इस प्रकार श्री धर्मवीर भारती ने उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, काव्य, समालोचना, निबंध, सम्पादन, अनुवाद आदि विविध साहित्य-विधाओं में अपनी सफल गति का परिचय दिया है। इन सब साहित्य-रूपों में उनका कौन रूप सर्वोत्कृष्ट है—किस क्षेत्र में उनकी प्रतिभा का सर्वश्रेष्ठ रूप प्रकट हुआ है, इस प्रश्न का यद्यपि दो टूक उत्तर देना कठिन है, तथापि गहराई से देखने पर यही

विदित होता है कि भारती की कवि-प्रतिभा ही विकास की सर्वोच्च मंजिल पर पहुंची है।

भारती ने युवा गीतकार के रूप में अपनी कविता-रचना आरंभ की। 1946 से सन् 1952 के बीच रची गई कविताओं में से चुनी हुई 38 कविताओं को श्री धर्मवीर भारती ने 'ठण्डा लोहा' नामक संग्रह में प्रकाशित कराया। इस आरंभिक काव्य-रचना से ही कवि की रोमांटिक प्रवृत्ति का परिचय मिल जाता है। इस रचना में इस युवा गीतकार ने अधिकांश प्रणय-गीत गाए हैं। सन् 1952 में प्रकाशित इस संग्रह की भूमिका में भारती ने कहा है : "मैं कविताएँ बहुत कम लिख पाता हूँ और अक्सर कुछ लिख लेने के बाद मौन का एक लम्बा व्यवधान बीच में आ जाता है…।

"इस संग्रह में दी गई कविताएँ मेरे पिछले छः वर्षों की रचनाओं में से चुनी गई हैं और चूंकि यह समय अधिक मानसिक उथल-पुथल का रहा, अतः इन कविताओं में स्तर, भावभूमि, शिल्प और टोन की काफी विविधता मिलेगी। एकसूत्रता केवल इतनी है कि सभी मेरी कविताएँ हैं, मेरे विकास और परिपक्वता के साथ उनके स्वर बदलते गए हैं…यद्यपि आज मेरा मन उस भूमि पर है जो 'कवि और अनजान पगध्वनियाँ' या 'कलाकार से' या 'फूल, मोमबत्तियाँ, सपने' की भावभूमि हैं, पर जिन गलियों से मैं गुजर चुका हूँ उनका महत्त्व कतई कम नहीं होता क्योंकि उन्हीं से गुजर कर मैं यहाँ तक पहुँचा हूँ। कैशोरावस्था के प्रणय; रूपासक्ति और आकुल निराशा से एक पावन, आत्मसमर्पणमयी वैष्णव भावना और उसके माध्यम से अपने मन के अहम् का शमन कर अपने से बाहर की व्यापक सचाई को हृदयंगम करते हुए संकीर्णताओं और कट्टरता से ऊपर एक जनवादी भाव-भूमि की खोज—मेरी इस छंद-यात्रा के ही प्रमुख मोड़ रहे हैं।

"सबसे पिछला मोड़ 'कवि और अनजान पगध्वनियाँ' में स्पष्ट नजर आया है। इस मोड़ का प्रारंभ 'ठंडा लोहा' से हुआ था।…

"मैं अपना पथ बना रहा हूँ। जिन्दगी से अलग रहकर नहीं, जिन्दगी के संघर्षों को झेलता हुआ, उसके दुख-दर्द में एक गंभीर अर्थ ढूंढ़ता हुआ और उस अर्थ के सहारे अपने को जन-व्यापी सच्चाई के प्रति अर्पित करने का प्रयास करता हुआ। कवि का जीवन, कवि की वाणी, अर्पित जीवन और अर्पित वाणी होते हैं। आशीर्वाद चाहता हूँ कि धीरे-धीरे मैं और मेरी कलम एक निर्मल और सशक्त माध्यम बन सकें जिससे विराट् जीवन, उसका सुख-दुःख, उसकी प्रगति और उसका अर्थ व्यक्त हो सके।"

भूमिका के वक्तव्य से यह लम्बा उद्धरण इसीलिए प्रस्तुत किया गया है कि कवि की प्रवृत्ति और उसके संकल्प को समझा जा सके। इसमें संदेह नहीं कि भारती ने व्यक्तिगत प्रणयानुभूति, कैशोरावस्था की रूपासक्ति और आकुल

निराशा का इस संग्रह के अधिकांश गीतों में चित्रण किया है। पहली कविता 'ठंडा लोहा' में ठंडा लोहा जगत् की हृदयहीनता का प्रतीक है। कवि का निराशा और दु:ख से भरा स्वर इस गीत में फूट पड़ा है :

ओ मेरी आत्मा की संगिनि !
तुम्हें समर्पित मेरी साँस-साँस थी लेकिन
मेरी साँसों में यम के तीखे नेजे-सा
कौन अड़ा है ?
ठंडा लोहा !
मेरे और तुम्हारे सारे भोले निश्छल विश्वासों को
आज कुचलने कौन खड़ा है ?
ठंडा लोहा !
फूलों से, सपनों से, आँसू और प्यार से
कौन बड़ा है ?
ठंडा लोहा !

—ठंडा लोहा

कवि ने कभी अपनी प्रेयसी के 'शरद के चाँद-से उजले धुले-से पाँव', लहर पर नाचते ताजे कमल-मुख, दो बड़े मासूम बादल (आँखें) अपनी गोद में सहलाए और चूमे थे और उस प्यार की मादकता में कवि डूब गया था :

अर्चना की धूप-सी तुम गोद में लहरा गयीं,
ज्यों झरे केसर तितलियों के परों की मार से,
सोनजूही की पंखुरियों से गुंथे, ये दो मदन के बान
मेरी गोद में !
हो गए बेहोश दो नाज़ुक, मृदुल तूफान,
मेरी गोद में !

—तुम्हारे चरण

और यह रूप कवि के लिए केवल वासना या भोग का प्रतीक नहीं था, अपितु कवि भारती ने उसकी पवित्रता और उज्ज्वलता का भी अनुभव किया है। इस पूजा-से रूप को कवि अनन्त जीवनदायी समझता है :

पूजा-सा तुम्हारा रूप
जी सकूंगा सौ जनम अंधियारियों में, यदि मुझे
मिलती रहे
काले तमस की छांह में
ज्योति की यह एक अति पावन घड़ी !

—प्राथना की कड़ी

इन प्रणय-गीतों में कवि भारती ने अनूठी रोमानी उपमान-योजना की है। प्रेयसी के रूठे, उदास चेहरे की सौन्दर्य-छवि पर कवि अनेक बार मुग्ध हुआ है :

तुम कितनी सुन्दर लगती हो
जब तुम हो जाती हो उदास !
ज्यों किसी गुलाबी दुनिया में सूने खण्डहर के आसपास
मद-भरी चाँदनी जगती हो !

—उदास तुम

पर कवि बहुत दिन अपनी किशोरी प्रेयसी के रूप का रस पान नहीं कर सका, अपनी 'मुग्धा' पर मुग्ध नहीं रह सका ! एक दिन उसके देखते-देखते उसकी प्रिया का डोला 'कोई और' ले जाता है। कवि विवश-भाव से मन मसोस कर रह जाता है और अपनी प्रेयसी को भी 'लोक की मरजाद' का ही पाठ सिखाता है :

भोर फूटे, भाभियाँ जब गोदभर आशीष दे दें
ले विदा अमराइयों से
चल पड़े डोला हुमच कर
है कसम तुमको, तुम्हारे कोंपलों-से नैन में आँसू न आय
राह में पाकड़ तले
सुनसान पाकर
प्रीत ही सब-कुछ नहीं है, लोक की मरजाद है सबसे बड़ी।

—डोले का गीत

जिस प्रेयसी के फिरोज़ी होठों पर उसने अपनी 'ज़िन्दगी बरबाद' कर डाली थी, जिसके 'वक्ष की जादूभरी मदहोश गरमाई' में कवि डूब गया था, जिसकी चितवनों पर वह किसी भी मोल अपने को लुटाने के लिए प्रस्तुत था, जिसे उसने 'आदिम गुनाहों का अजब-सा इन्द्रधनुषी' स्वाद सिखाया, उसका प्रणय कवि के लिए त्याग, मुक्ति या साधना से भी बढ़कर हो गया था :

बड़ा मासूम होता है गुनाहों का समर्पण भी
हमेशा आदमी
मजबूर होकर लौट आता है
जहाँ हर मुक्ति के, हर त्याग के, हर साधना के बाद

इस प्रणय को कवि किसी प्रकार हेय या पाप मानने को तैयार नहीं है :

अगर मैंने किसी के होंठ के पाटल कभी चूमे
अगर मैंने किसी के नैन के बादल कभी चूमे
महज इससे किसी का प्यार मुझको पाप कैसे हो ?
महज इससे किसी का स्वर्ग मुझ पर शाप कैसे हो ?

—गुनाह का गीत

पर अंततः कवि को निराशा और विफलता ही मिली। उसका प्रणय किसी अन्य ने लूट लिया, उसकी प्रेयसी विवश-भाव से उससे बिछुड़ गई। "कवि मुरदा सपनों को ही सीने से चिपकाये" रहा।

भारती जी ने 'ठंडा लोहा' की भूमिका में कहा है कि अब उसने वह गुज़री हुई राह छोड़ दी है और वह जीवन की विषमताओं का गायक बन गया है। इसमें संदेह नहीं कि कुछ कविताओं में कवि ने 'अनजान पगध्वनियां' सुनी हैं और नई चेतना का दावा किया है :

ठहरो ! ठहरो ! ठहरो ! ठहरो ! हम आते हैं
हम नयी चेतना के बढ़ते अविराम चरण !
हम मिट्टी की अपराजित गतिमय संतानें
हम अभिशापों से मुक्त करेंगे कवि का मन !

—कवि और अनजान पगध्वनियां

पर सच तो यह है कि भारती सिवाय अपनी दो-चार कविताओं के सर्वत्र रोमांस के कवि प्रतीत होते हैं। 'सात गीत वर्ष' संग्रह ही नहीं, मैं यह बात 'कनुप्रिया' को भी ध्यान में रखकर कह रहा हूँ। इसमें संदेह नहीं कि 'फूल, मोमबत्तियाँ, सपने'-जैसी दो-चार कविताओं में कवि ने विराट् जीवन के सुख-दुख का गीत गाना चाहा है, पर उसमें कवि भारती को वैसी सफलता नहीं मिली हैं, जैसी प्रणय-गीत और रोमानी कविताएँ रचने में मिली है। 'कनुप्रिया' में कवि अवश्य ही 'कैशोरावस्था के प्रणय, रूपासक्ति और आकुल निराशा से एक पावन, आत्मसमर्पणमयी वैष्णव भावना' तक पहुँचा दिखाई देता है, पर 'जनवादी भावभूमि' या विराट जीवन के सुख-दुःख और प्रगति को अंकित करने का प्रामाणिक प्रयास उसने बहुत कम किया है। 'अंधायुग' और 'कनुप्रिया' में अवश्य भारती ने युद्ध की विभीषिका के प्रति वितृष्णा उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है, पर वह बहुत ही सीमित युग-संदर्भ को छूता है। उस चित्रण में भी वास्तविकता कम और कल्पना की रंगीनी अधिक है। इसी से उसमें युग-बोध की पूर्ण क्षमता नहीं। 'कनुप्रिया' भारती की सर्वोत्कृष्ट रचना है।

'कनुप्रिया' छायावादोत्तर काल की रचना अवश्य है, पर शैली, प्रवृत्ति और भाव-बोध सभी दृष्टि से वह छायावादी शैली की ही आधुनिक रचना सिद्ध होती है। राधाकृष्ण के परम्परागत-प्रणय, प्रसंग, पौराणिक मिथकों, कवि-समयों तथा प्रतीकों को भारती ने नया रूप प्रदान किया है। उसकी रोमानी गद्यगीत-शैली, मुक्त छन्द-प्रवाह, भावप्रवणता, अन्तर्मुखी प्रवृत्ति, लाक्षणिक प्रयोग, मूर्त-अमूर्त-विधान आदि विशेषताएँ उसे छायावादी काव्यकृति ही सिद्ध करती हैं। रचना को नया युगबोधक रूप प्रदान करने में अन्तिम 'इतिहास' और 'समापन' खण्ड विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। इसमें संदेह नहीं कि विषय-वस्तु, भाव-बोध और शैली-शिल्प

की दृष्टि से यह अन्तिम अश कवि की मौलिक कल्पनाशक्ति का परिचायक है, पर इसमें भारती ने परम्परा, इतिहास और संस्कृति के विपरीत कृष्ण के चरित्र को कुछ अधिक दूषित और एकांगी दर्शा दिया है। कृष्ण के इतिहास-निर्माण-कार्य को केवल जन-संहारक युद्ध मान लिया है। यही इस रचना के भाव-बोध की दुर्बलता है। परम्परा से हटकर भारती ने एक ओर तो यहाँ राधा के चरित्र को ऊँचा उठाया है और उसकी नारी-उपेक्षा का भाव दूर करने का प्रयत्न किया है, दूसरी ओर हिंसक युद्धों के प्रति वितृष्णा उत्पन्न कर आधुनिक भाव-बोध जगाया है : राधा केवल परम्परागत कृष्ण-विलासिनी या कृष्ण-वियोगिनी ही नहीं बनी रहती, अपितु वह अब जीवन-पगडण्डी के कठिनतम मोड़ पर इसलिए प्रतीक्षारत खड़ी है कि इस बार वह इतिहास-निर्माण में कनु का पूरा साथ देगी, पर कृष्ण के युग-निर्माणकारी उदात्त कृत्यों की सर्वथा अवहेलना करके, उसे इतिहास-निर्माण या युग-निर्माण में सर्वथा असफल घोषित करना और भारत-युद्ध को एक नरसंहारक अवांछित आयोजन मानना इतिहास को विकृत करना है। इस थोड़ी-सी विसंगति के सिवा यह रचना अत्यन्त मार्मिक और सफल है।

शैली-शिल्प और भावानुभूति की गहराई में वह बेजोड़ है। पर उसको भी दृष्टि में रखते हुए कुल-मिलाकर यही कहना पड़ता है कि कवि भारती मूलतः प्रेम, सौन्दर्य और यौवन के रोमांटिक कवि हैं, यद्यपि इस रोमांस को उसने एक 'पावन आत्मसमर्पणमयी वैष्णव भावना' में परिवर्तित करने का सफल प्रयास किया है। जनवादी भावभूमि और युग-समस्याओं को वह पूरे मनोयोग से नहीं अपना सका है। आशा रखनी चाहिए कि भारती अपने संकल्प पूरे करेंगे और उनकी लेखनी विराट् जीवन और उसके सुख-दुःखों की अभिव्यक्ति का और सशक्त माध्यम बनेगी। ●●

14

निराला का प्रकृति-चित्रण

(प्रकृति-अनुराग)

1. प्रकृति का मानवीकरण
2. प्रकृति से संवेदनशीलता और सहानुभूति
3. पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति-चित्रण
4. अलंकरण-हेतु प्रकृति-प्रयोग
5. प्रकृति में रहस्य-दर्शन
6. राष्ट्रीय गीतरूप में प्रकृति-चित्रण
7. ऋतु-वर्णन

आधुनिक युग में छायावादी कवि प्रकृति के प्रति एक नया दृष्टिकोण लेकर आये। जड़ प्रकृति सचेतन हो उठी! कवियों ने प्रकृति का मानवीकरण किया। कहीं वह सहचरी और प्रेयसी बनी, कहीं उसका विराट्‌रूप माँ बनाया गया। प्रकृति उप-देशिका बनी, और कहीं उसे मानवीय संवेदनाओं से परिपूर्ण मानवीय रूप प्रदान किया गया। प्रकृति मानव के लिए असीम जिज्ञासा का विषय भी बनी और उसका समाधान भी। प्रकृति ने ही कवियों को अनेक सौन्दर्यवर्द्धक सुन्दर उपमान दिये।

यों तो निराला-काव्य में प्रकृति-प्रयोग के अनेक रूप पाये जाते हैं, पर उनके प्रकृति-प्रयोग में तीन प्रवृत्तियाँ मुख्य रूप से लक्षित होती हैं—एक है प्रकृति का मानवीकरण, दूसरी प्रकृति में रहस्य-दर्शन और तीसरी वर्षा आदि ऋतु-वर्णन।

प्रकृति का मानवीकरण

कुछ विद्वान् प्रकृति के मानवीकरण की प्रवृत्ति को पश्चिम की देन बताते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दी छायावादी कवियों ने प्रकृति के चेतनगत मानवीकरण में अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों से भी प्रेरणा ग्रहण की, किन्तु भारतीय साहित्यकारों के लिए यह कोई नई प्रवृत्ति नहीं है। हमारे यहाँ वैदिक साहित्य से ही प्रकृति के मानवीकरण और उसमें देवत्व शक्तियों के आरोपण एवं परोक्ष सत्ता के दर्शन की प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। निराला

आदि छायावादी कवियों ने भारतीय प्राचीन परम्परा और नई पाश्चात्य प्रवृत्ति दोनों को अपना कर प्रकृति के नाना-विध प्रयोग अपने काव्य में प्रस्तुत किये। इनकी लेखनी से प्रकृति सजीव हो उठी, उसमें मानवीय स्पंदन, संवेदनशीलता और सक्रियता उत्पन्न हुई। निराला की 'जुही की कली' मुग्धा नायिका वनी हुई प्यारे से अठखेलियाँ करती है, 'संध्या सुन्दरी' एक सुन्दरी रमणी की भाँति अथवा परी-सी मंथर गति से धरती पर उतरती हैं :

(1) **अम्बर पथ से मन्थर संध्याश्यामा,**
उतर रही पृथ्वी पर कोमल-पद भार। —गीतिका पद 97

(2) **दिवसावसान का समय**
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या-सुन्दरी परी-सी
धीरे-धीरे-धीरे,
तिमिराञ्चल में चंचलता का नहीं कहीं आभास,
मधुर-मधुर हैं दोनों उसके अधर,—
किन्तु जरा गंभीर—नहीं है उनमें हास-विलास। —परिमल

इस मानवीकरण की एक बड़ी विशेषता यह है कि वह प्रकृति-दृश्य को खंडित नहीं करता, अपितु उसे उभारता ही है। संध्या का उपर्युक्त दृश्य सुन्दरी के आरोपण से विकृत नहीं हुआ बल्कि उसमें और भी सुन्दर रंग भर गया है।

'जुही की कली', 'संध्या-सुन्दरी' आदि कविताओं में निराला ने स्पष्टतः मानवीय आरोपण कर प्रकृति का स्पष्ट मानवीकरण किया है। किन्तु अनेक कविताओं में बिना मानवीय आरोपण के भी प्रकृति को सचेतन रूप प्रदान किया गया है। प्रकृति मानवीय कार्य-व्यापार में संलग्न है। रवि के अस्ताचल-गमन पर संध्या के दृग आँसुओं से छल-छल हो उठते हैं :

डूबा रवि अस्ताचल
संध्या के दृग छल-छल —गीतिका पद 73

'वन कुसुमों की शय्या' कविता में कवि ने शरद् व शिशिर को दो बहनों के रूप में चित्रित किया है : कमल-पत्र सोती हुई इन बहनों को पंखा झल रहे थे :

सोती हुई सरोज अंक पर
शरत् शिशिर दोनों बहनों के
मुख-विलासमय शिथिल अंग पर
पद्म-पत्र पंखा झलते थे।

इसी प्रकार चाँदनी बहन मालती की भोली सूरत पर मुग्ध होकर उसके गोल-कपोल चूम लेती है :

उधर मालती की चटकी जो कली

चाँदनी ने झट चूमे उसके गोल कपोल;
और कहा, बस बहन, तुम्हारी सूरत कैसी भोली !

समस्त प्रकृति गतिशील और सचेष्ट है। सूर्य, किरणें, वायु, विहग सभी निरन्तर कार्यरत हैं :

पड़े थे नींद में उनको प्रभाकर ने जगाया है।
किरन ने खोल दीं आँखें, गले फिर-फिर लगाया है।
हवा ने हल्के झोंकों से प्रसूनों की महक भर दी,
विहगों ने द्रुमों पर स्वर मिलाकर राग गाया है।

—वेला, पृ० 74

प्रकृति के **यथातथ्य चित्रण** में भी निराला ने प्रकृति को सजीवरूप प्रदान किया है। प्रकृति का काल्पनिक आवरणरहित आलम्बन रूप में यथातथ्य वर्णन निम्न पंक्तियों में देखिए : आकाश में काले-काले बादल छाये हैं, हवा के झोंकों से सरसी के कमल झूम रहे हैं। बेला और जुही झूमती हुई कानों में बातें कर रही हैं, मोर नाच रहे हैं और पीपल के पेड़ मस्ती में झूम रहे हैं :

छाए आकाश में काले-काले बादल देखे,
झोंके खाते हवा में सरसी के कमल देखे।
कानों में बातें बेला और जुही करती थीं,
नाचते मोर, झूमते हुए पीपल देखे। —वेला पृ० 30

मस्तानी वर्षा ऋतु का यह साधारण वर्णन है, पर फिर भी कितना आह्लादक है ! यहाँ कवि ने परम्परागत प्राचीन वस्तु-वर्णन की पद्धति नहीं अपनाई, अपितु वस्तु-वर्णन में भी सजीवता और चित्रात्मकता उत्पन्न कर दी है। हवा से झूमती बेला और जुही का कानों-कानों में बातें करना सचेतनता का द्योतक तो है, पर स्पष्ट मानवीय आरोपण यहाँ नहीं है।

बसंत ऋतु में भी प्रकृति सचेतन होकर झूम उठी है। लताएँ किसलय दल के सुन्दर परिधान धारण कर प्रिय वृक्षों से गले लग रही हैं। भ्रमर अपनी मधुर गुंजार से और कोयल अपनी सुरीली तान से वातावरण को सरस बना रही है। वन-उपवन में महा हर्ष और नवोत्कर्ष छा गया है :

सखि बसत आया।
महा हर्ष वन के मन,
नवोत्कर्ष छाया।
किसलय-वसना नव-वय लतिका,
मिली-मधुर प्रिय उर-तरु-पतिका।
मधुप-वृन्दबंदी—
पिक-स्वर नभ सरसाया। —गीतिका, गीत 3

निराला ने प्रकृति का श्रृंगारिक अर्थात् **श्रृंगार रस-व्यंजक चित्रण बहुत** किया है। 'जुही की कली', 'शेफालिका', 'भ्रमरगीत', जैसी कई रचनाओं में तो आद्यंत श्रृंगार रस ध्वनित हुआ है, पर अनेक रचनाओं में बीच-बीच में श्रृंगारिक संकेत मिलते हैं। उपर्युक्त वसंत-वर्णन में भी नव-वय-लतिकाओं का प्रिय वृक्षों से आलिगन-रत होना श्रृंगार रस का ही संकेत देता है। प्राचीन आचार्यों ने प्रकृति के ऐसे श्रृंगारिक वर्णनों को श्रृंगार रसाभास कहकर निम्न कोटि में रखा था, पर यह उनकी भ्रांति ही थी। ऐसे वर्णन एक ओर तो प्रकृति का सुन्दर चित्र प्रस्तुत करते हैं, दूसरी ओर परिनिष्ठित श्रृंगार रस की अनुभूति कराते हैं। 'जुही की कली' की तरह पल्लव-पर्यंक पर सोती हुई शेफाली का प्रिय से मिलन होता है, 'आशा की प्यास एक रात में भर जाती है, सुबह को शेफाली झर जाती है।'

'परिमल' की 'भ्रमरगीत' कविता में भ्रमर की अनुभूति के माध्यम से निराला जी ने सौन्दर्य, यौवन और प्रणय का बड़ा सुन्दर प्रतीकात्मक चित्रण किया है। भ्रमर और पुष्प का यह महा मिलन संयोग श्रृंगार का भव्य चित्रण प्रस्तुत करता है। जब कली खिली, नव यौवन-गंध-मधु का संचार हुआ तो आवाहन पाकर भंवरा गुंजार करता हुआ मँडराने लगा। प्रिया की नग्न कांति और नवलाज देख वह मुग्ध हो गया और तब एक प्राण हो दोनों मिल गए !

छायावादी कवियों ने प्रकृति के कोमल और सुन्दर रूप का चित्रण अधिक किया है, उसके परुष-कठोर, ओजपूर्ण या भयावह रूप का दर्शन बहुत कम हुआ है। छायावादी कवियों में निराला की इस दृष्टि से भी यह एक विशिष्टता है कि उन्होंने प्रकृति के उपर्युक्त **मधुर कोमल रूपों के अतिरिक्त उसकी ओजस्वी आत्मा के भी दर्शन किये हैं।** वस्तुत: **प्रकृति के ओजपूर्ण वर्णन में निराला का अपना** ओजस्वी व्यक्तित्व ही मुखर हो उठा है। 'बादल राग' कविता में बादल नव्य क्रांति का प्रतीक है। इस कविता में निराला ने **प्रकृति को जन-जीवन में नई चेतना जगाने का माध्यम बनाया है।** इन पंक्तियों में बादल के साथ निराला के ओजस्वी व्यक्तित्व का उद्घाटन हो रहा है :

ऐ स्वच्छन्द !
मंद चंचल-समीर-रथ पर उच्छृंखल !
ऐ उद्दाम !
अपार कामनाओं के प्राण !
बाधारहित विराट !
ऐ विप्लव के सावन !

'अनामिका' की 'नाचे उस पर श्यामा' कविता में निराला जी ने प्रकृति का प्रलय-रूप भयावह चित्रण किया है, कुछ पंक्तियाँ देखिए :

अंधकार उद्गीरण करता अंधकार घनघोर अपार
महाप्रलय की वायु सुनाती श्वासों में अगणित हुंकार।
इस पर चमक रही है रक्तिम विद्युज्ज्वाला बारम्बार।
फेनिल लहरें गरज चाहतीं करना गिरि-शिखरों को पार।
भीम-घोष-गंभीर, अतल धंस टलमल करती धरा अधीर
अनल निकलता छेद-भूमितल, चूर हो रहे अचल शरीर।

—अनामिका

प्रकृति से उपदेश-संदेश-ग्रहण—'तुलसीदास' में प्रकृति को शक्ति या प्रेरणा की प्रतीक बनाया गया है। ऐसी सशक्त प्रेरणामयी प्रकृति मानव को जीवन के अनेक सन्देश और उपदेश प्रदान करती है। प्रकृति के माध्यम से उपदेश देना बहुत प्राचीन कवि-परिपाटी है। छायावादी कवियों ने तो प्रकृति को मानवीय रूप प्रदान कर उसके अनेक क्रिया-कलापों से जीवन के सन्देश प्राप्त किये हैं। पंतजी के हंसमुख प्रसून हँस-हँसकर जीवन बिताने और जग के आँगन को सौरभ से भर जाने का सन्देश देते हैं, महादेवी के बादल और पुष्प भी आत्मोत्सर्ग की प्रेरणा देते हैं। निम्न गीत में निराला जी ने झरने की गतिशीलता को मानव के लिए प्रगति-पथ पर गाते हुए बढ़ते जाने की प्रेरणा का द्योतक बताया है :

ऊँचा रे, नीचे आता,
जीवन भर भर दे जाता;
गाता, वह केवल गाता—
"बंधु, तारना-तरना।" —गीतिका गीत 100

प्रकृति से संवेदनशीलता और सहानुभूति

'रास्ते के फूल से' नामक कविता में निराला जी ने प्रकृति के असहाय और दयनीय रूप का भी दर्शन किया है। दलित कुसुम की व्यथा को कवि ने सहृदयता के साथ सुना है। यही नहीं, कवि ने स्वार्थी और निर्दय मानव को भी फटकारा है जिसने अपना स्वार्थ सिद्ध कर पुष्प को धरती पर फेंक दिया :

"ढके हृदय में स्वार्थ लगाए ऊपर चन्दन,
करते समय नदीश नंदिनी का अभिनंदन,

× × ×

किन्तु देखकर तुम्हें जरा से जर्जर,
फेंक दिया पृथ्वी पर तुमको
रखे हुए हृदय में अपने उस निर्दय ने पत्थर ?"

उद्दीपन रूप में प्रकृति-प्रयोग—निराला जी ने अपनी दो-चार कविताओं में प्रकृति के माध्यम से यौवन और प्रणय की प्रथम लहरों के संचार का बड़ा सुन्दर

चित्रण किया है। 'परिमल' की 'दूत, अलि, ऋतुपति के आए' ऐसा ही गीत है जिसमें वर्षा के प्रथमपयोद के आगमन से प्रकृति में नव यौवन और मादकता के संचार का वर्णन किया गया है और साथ ही जिससे नारी में यौवन, सौन्दर्य, प्रणय की प्रथम लहर और लज्जा का संचार भी ,सांकेतिक है। कुछ पंक्तियाँ देखिए—

दूत, अलि, ऋतुपति के आयें।
काँप उठी विटपी यौवन के
प्रथम कम्प मिस, मन्द पवन से,
सहसा निकल लाज चितवन के भाव-सुमन छाये।
बही हृदय-हर प्रणय-समीरण
रूप-राशि जागी जगती-तन, खुले नयन भाये। —परिमल

प्रकृति का वियोग-उद्दीपनकारी चित्रण भी 'परिमल' के 'अलि, घिर आये घन पावस के' गीत में प्रकट हुआ है। पावस केमनोमुग्धकारी दृश्य विरहिणी को व्याकुल बना रहे हैं :

अलि, घिर आये घन पावस के।
छोड़ गये गृह जब से प्रियतम
बीते अपलक दृश्य मनोरम,
क्या मैं हूँ ऐसी ही अक्षम, क्यों न रहे बस के—
अलि, घिर आये घन पावस के। —परिमल

'गीतगुंज' और 'आराधना' में कवि ने जो चौमासा-वर्णन के गीत रचे हैं, वे भी वियोग-उद्दीपनकारी हैं। उनका उदाहरण हमने ऋतु-वर्णन में प्रस्तुत किया है।

पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति-चित्रण

वातावरण या पृष्ठभूमि के निर्माण के लिये भी प्रकृति का प्रयोग काव्य में—विशेषत: प्रबन्ध काव्य में किया जाता है। प्रसाद जी ने कामायनी में ऐसे प्रयोगों की अद्भुत क्षमता प्रकट की है। किसी विशेष भाव, घटना या परिस्थिति के प्रभाव को अतिशय बनाने में अनुकूल वातावरण-सृजन का बहुत महत्त्व है। निराला ने 'राम की शक्तिपूजा', तथा 'तुलसीदास' में विशेष रूप से प्राकृतिक वातावरण का सफलतापूर्वक चित्रण किया है। दुर्वृत्त रावण और उसकी शक्ति के कारण आशंका और भय का यह वातावरण कितना भाव और परिस्थिति के अनुकूल है, निम्न पंक्तियों में देखिए—

है अमा निशा, उगलता गगन घन अंधकार;
खो रहा दिशा का ज्ञान; स्तब्ध है पवन-चार;
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल;

भूधर ज्यों ध्यानमग्न; केवल जलती मशाल।
स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा फिर-फिर संशय
रह-रह उठता जग-जीवन में रावण-जय-भय।

—राम की शक्तिपूजा

निराला ने अपनी अनेक कविताओं में प्रातःकाल और संध्या के सुन्दर वातावरण चित्रित किये हैं। 'अनामिका' की 'दान' कविता के आरम्भ में उन्होंने प्रातःकाल का जो सुन्दर सजीव वातावरण चित्रित किया है, वह उनके प्रकृति-निरीक्षण और वर्णन-शक्ति का परिचय देता है। वसंत ऋतु का स्वच्छ बालारुण हँसता-हँसता कोमल-कोमल गति से उदित हुआ है। तरुणियों के समान चंचल किरणें चारों ओर फैल गई हैं। खिलती हुई सुन्दर कलियों और किसलयों के रक्ताभ और रसपूर्ण अधरों पर नई उमंग से भर कर भौंरे मंडराने लगे हैं। प्राणों को तृप्त कर देने वाली त्रिविध-समीर डोल रही है। भाव-भंगिमा और चंचलता से भरी क्षीण-कटि गोमती नदी नवल नटी बनी नृत्यरत है। कवि ऐसे सुहावने प्रातः समय में सैर को निकला है।

'संध्या सुन्दरी' में संध्या के मानवीकरण के अतिरिक्त संध्या के शांत वातावरण का सजीव चित्रण भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं। कवि ने 'सिर्फ एक अव्यक्त शब्द-सा "चुप चुप चुप" है गूँज रहा सब कहीं-जैसी पंक्तियों से संध्या का शांत-स्निग्ध वातावरण उपस्थित कर दिया है। इसी प्रकार 'बनबेला', 'नर्गिस' आदि लम्बी कविताओं में भी संध्या और रात्रि के सुन्दर वातावरण का चित्रण हुआ है।

अलंकरण-हेतु प्रकृति-प्रयोग (Metaphorical use of Nature)

उपमान-रूप में प्रकृति-प्रयोग काव्य-साहित्य के जन्म से ही आरम्भ हो गया था। प्राचीन साहित्य में भी कवियों ने प्रकृति से सुन्दर उपमानों को चुनकर अपने भाव तथा वस्तु-वर्णन को अलंकृत किया है। आधुनिक कवियों ने एक ओर तो प्रकृति से नवीन उपमानों का चयन किया, दूसरे परम्पराभुक्त उपमानों का भी नवीन ढंग से प्रयोग किया। प्रकृति के उपमानगत प्रयोग में जहाँ रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि सादृश्यमूलक अलंकारों की योजना हुई है, वहाँ प्रतीक रूप में भी प्रकृति की सुन्दर और प्रभावी योजना की गई है। छायावादी कवियों की अभिव्यक्ति सांकेतिक अधिक होने से उन्होंने प्रतीक-विधान, रूपकातिशयोक्ति, अन्योक्ति, समासोक्ति आदि का बहुत सहारा लिया है। निराला-काव्य से एक उदाहरण प्रतीक-योजना का देखिए—

उनके बाग में बहार,
देखता चला गया।

कैसा फूलों का उभार,
देखता चला गया। —बेला पृ० 37

यहाँ बाग शरीर का प्रतीक है, बहार यौवन के निखार का और फूल अंगों के प्रतीक हैं। इन प्राकृतिक प्रतीकों की योजना से सौन्दर्य-चित्रण प्रभावी हो गया है। 'अणिमा' में वार्द्धक्य से हताश कवि कह उठता है :

मैं अकेला।
आ रही मेरे गगन की सान्ध्य बेला।

यहाँ गगन जीवन का तथा संध्या वृद्धावस्था का प्रतीक है। 'कुकुरमुत्ता' में निराला ने गुलाब को उच्च वर्ग का तथा कुकुरमुत्ता को सर्वहारा वर्ग का प्रतीक बनाया है। इस प्रकार की प्रतीक-योजना कवि द्वारा प्रकृति के मानवीकरण का ही अंग है। 'कुकुरमुत्ता' की तरह 'कण', 'अनुताप', 'बादल' आदि अनेक कविताओं में अन्योक्ति शैली का सफल निर्वाह हुआ है।

इसी सांकेतिक शैली में निराला ने सावयव रूपकों का भी सफल प्रयोग किया है। 'तुलसीदास' में तुलसी-युग की सांस्कृतिक अवस्था को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने संध्या का रूपक बाँधा है।

प्रकृति के प्रतीकात्मक चित्रण द्वारा कवि ने जीवन की अभिव्यक्ति अनेक कविताओं में की है। सच तो यह है कि कवि की कोई भी अनुभूति बिना प्रकृति का सहारा लिये मानस-पटल से नहीं उतरती। अनामिका की 'उक्ति' कविता में ग्रीष्म काल के दग्ध-दाह और लू-आँधियों के पश्चात् सजल मेघमाला के क्षितिज पर प्रकट होने का जो प्रतीकात्मक चित्रण या रूपक बाँधा है, वह दग्ध जीवन को नव आशासंवलित करने के लिए ही है :

जला है जीवन यह आतप में दीर्घकाल,
सूखी भूमि, सूखे तरु, सूखे सिक्त आलबाल,
बंद हुआ गुंज, धूलि धूसर हो गए कुंज,
किन्तु पड़ी व्योम-उर बंधु, नील मेघ माल। —अनामिका

ऐसी समासोक्तियों या प्रतीकात्मक प्रस्तुत योजनाओं से निराला की सैंकड़ों रचनाएँ भरी पड़ी हैं।

निराला के कतिपय नवीन प्राकृतिक उपमान देखिये—विधवा की दीन और उपेक्षापूर्ण अवस्था को स्पष्ट करने के लिए निराला कहते हैं—"वह टूटे तरु की छूटी लता-सी दीन"। 'तुलसीदास' से एक सादृश्य चित्र देखिए—

बिखरी छूटीं शफरी-अलकें,
निष्णात नयन-नीरज-पलकें।

बिखरी और छूटी अलकों के लिए मछली की उपमा नई है, नेत्रों के लिए कमल परम्परायुक्त उपमान ही है।

अमूर्त्त का मूर्त्त विधान भी आधुनिक काल की एक विशेषता है। निराला को यौवन-मद की बाढ़ नदी-सी और जीवन प्रात-समीर-सा लघु प्रतीत होता है। 'स्मृति' को उन्होंने 'सुख-वृन्तों की कलियाँ' कहा है। स्मृति उषा के समान सुप्त पलकों (भावों) पर कोमल हाथ फेर कर जगा देती है—

ऊषा-सी क्यों तुम कहो द्विदल
सुप्त पलकों पर कोमल हाथ
फेरती हो ईप्सित मंगल,
जगा देती हो वही प्रभात। —स्मृति (परिमल)

'पंचवटी प्रसंग' में लक्ष्मण अपनी गृहहीन लक्ष्यहीन दशा की तुलना सलिल-प्रवाह में बहते शैवाल-जाल से करता है। निराला को प्रेयसी का रूप तरल तरंग-सा या ज्योतिर्मयी लता-सा प्रतीत होता है, कपोल कुसुम-दल-से, आँखें कमल सी, मन परिमल-सा और उर सरिता-सा लगता है। प्रकृति के ये उपमान कितने भव्य हैं!

प्रकृति में रहस्य-दर्शन

निराला ने प्रकृति के माध्यम से अपनी दार्शनिक एवं आध्यात्मिक भावनाओं को व्यक्त किया है। अद्वैत दर्शन के उद्‌गाता निराला ने जड़-चेतन सबको एक ही प्राण-सत्ता से अनुप्राणित अनुभव किया है। प्रकृति में विराट्-दर्शन की प्रवृत्ति को साहित्यिक बताते हुये निराला ने स्वयं कहा है—'लीलाम्बरी ज्योतिमूर्ति की सृष्टि कर चतुर साहित्यिक फिर उसे अनन्त नीलमण्डल में लीन कर देते हैं। पल्लवों के हिलने में किसी अज्ञात चिरन्तन अनादि सर्वज्ञ को हाथ के इशारे अपने पास बुलाने का इंगित प्रत्यक्ष करते हैं। इस तरह चित्रों की सृष्टि असीम सौंदर्य में पर्यवसित की जाती है।" (परिमल की भूमिका, पृ० 18)

प्रकृति के रमणीय दृश्यों में निराला ने अदृश्य परमसत्ता का आभास पाया है। उस असीम सौन्दर्य-सत्ता के दर्शनों को कवि व्याकुल हो उठता है। सौर-ब्रह्माण्ड सब उसी के प्रकाश के बल से उद्‌भासमान हैं। गगन, घन, विटपी, सुमन, नक्षत्र-मालिका—सबमें उसी परम सत्ता की मधुर मुस्कान छिटकी हुई है—

गगन घन-विटपी, सुमन नक्षत्र-ग्रह नव-ज्ञान।
बीच में तू हँस रही ज्योत्स्ना-वसन-परिधान।
देखने को तुझे बढ़ता विश्व-पुलकित-प्राण।

—गीतिका गीत 59

प्रकृति में रहस्यभाव छिपे हैं। कवि ने जिज्ञासा के प्रश्न भी प्रकृति से किये हैं। तरंगों को देखकर कवि सहसा पूछ उठता है, तुम कहाँ से आती हो? किसे मिलने जाती हो? किसके गान गाती हो?—

किस अनन्त का नीला अंचल हिला-हिलाकर
आती हो तुम सजी मण्डलाकार ?
एक रागिनी में अपना स्वर मिला-मिलाकर
गाती हो ये कैसे गीत उदार ?
× × × ×
चल चरण बढ़ाती हो, किससे मिलने जाती हो ?

यही जिज्ञासा निराला की इन पंक्तियों में पाई जाती है—

कौन तम के पार ?—(रे कह)
अखिल पल के स्रोत, जल जग
गगन घन-घन-धार—(रे, कह)

प्रकृति के माध्यम से निराला ने अपने अद्वैत दर्शन और अध्यात्मभाव को अनेक कविताओं में प्रकट किया है। उनकी 'तुम और मैं' कविता भी उनके दर्शनपरक रहस्यवाद का सुन्दर उदाहरण है। ब्रह्म यदि हिमालय शृंग है तो कवि की जीवात्मा सुरसरिता है, जीव ब्रह्म का ही अंश है—

तुम तुंग हिमालय-शृंग
और मैं चंचल गति सुर-सरिता
× × × ×
तुम दिनकर के खर किरण-जाल
मैं सरसिज की मुस्कान।

राष्ट्रीय गीतरूप में प्रकृति-चित्रण

निराला जी ने देश-प्रेम के रूप में भी जननी-जन्मभूमि भारत के प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण किया है। उनका 'भारति जय, विजय करे!' नामक प्रसिद्ध गीत भारत माता का भौगोलिक चित्र प्रस्तुत करने वाला सुन्दर राष्ट्रगीत है:

भारति जय विजय करे !
कनक-शस्य-कमलधरे !
लंका पदतल शतदल,
गर्जितोर्मि सागर-जल
धोता शुचि चरण युगल
स्तव कर बहु अर्थ भरे !
तरु-तृण-वन-लता वसन,
अंचल में खचित सुमन;
गंगा ज्योतिर्जल-कण
धवल धार हार गले।

मुकुट शुभ्र हिम-तुषार,
प्राण प्रणव ओंकार,
ध्वनित दिशाएँ उदार,
शतमुख-शतरव-मुखरे !

'अणिमा' के निम्न गीत में निराला जी ने भारत को जीवनधन मानकर उसकी प्राकृतिक सुषमा और महिमा का सुन्दर वर्णन किया है—

भारत ही जीवनधन, ज्योतिर्मय परम रमण,
सर-सरिता वन-उपवन ।
तपः पुंज गिरि-कंदर, निर्झर के स्वर पुष्कर,
दिक्-प्रांतर मर्म-मुखर, मानव, मानव-जीवन । —अणिमा

'परिमल' की 'जागरण' कविता में निराला जी ने अतीत भारत के "हरित पत्रों से ढके, श्यामल छाया के शान्ति के निविड़ नीड़, मलयज सुवास-स्वच्छ पुष्प-रेणु-पूरित" तपोवन-आश्रमों का मनोरम चित्र खींचा है ।

ऋतुवर्णन

यद्यपि निराला ने लगभग सब ऋतुओं का वर्णन अपनी विभिन्न रचनाओं में किया है, तथापि उन्हें वर्षा ऋतु और उसके बादल से विशेष मोह है। 'परिमल' से लेकर 'सांध्यकाकली' तक उनकी समस्त रचनाओं में बादल और वर्षा उनका सबसे प्रिय विषय है। 'परिमल' में ही 'बादल' का निराला ने अनेक रूपों में अवलोकन किया है । छः भागों में रचित 'बादल राग' निराला की एक प्रसिद्ध कविता है । निराला के व्यक्तित्व के कोमल और परुष दोनों ही रूपों की व्यंजना 'बादलराग' में हुई है । अपने कोमल रूप में बादल अपनी प्रिया श्यामा के अधरों की प्यास मिटाता है, जग को जलदान कर नवजीवन प्रदान करता है । वह पौधों को हँसाता और धरती के अंकुरों को उगाता है। उसका परुष रूप स्वच्छन्दता और विद्रोह का परिचायक है। वह अर्जुन-जैसा वीर है, इन्द्रधनुष उसका धनुष है और गगन गड़गड़ाहट उसके रथ का घरघर रव है। वह विप्लव-वीर अन्यायी शोषकों को आतंकित करता है और कृषक को आनन्दित। वह 'कुसुम-कोमल कठोर-पवि' है । कवि ने बादल को 'धरा के खिन्न दिवस के दाह,' 'सिन्धु के अश्रु,' 'अनन्त के चंचल शिशु,' 'तरु के सुमन', 'जीवन के पारावार,' 'विप्लव के वीर', 'नयन-मनोरंजन, नयन-अंजन,' 'इन्द्रधनुर्धर,' 'सुख-वालाओं के सुख-स्वागत !,' 'विश्व में नव जीवन-भर,' 'मन्द चंचल-समीर-रथ पर उच्छृं-खल !' 'अरे वर्ष के हर्ष' आदि कल्पनाप्रवण सम्बोधनों से पुकारा है ।

'अनामिका' की 'विनय', 'उत्साह' आदि कविताओं में भी कवि ने बादल को गरजने-बरसने और तप्त धरा को जल से शीतल कर देने का आवाहन किया है ।

उद्‌बोधन कविता तो 'परिमल' की 'बादलराग' कविता की ही पूरक प्रतीत होती है। कवि बादल से गरजने-बरसने और नव जीवन सरसाने का आवाहन करता हुआ प्राचीन को बिखर झर जाने देना चाहता है। कवि ने नवमेध के माध्यम से नव्य विराट् की कामना की है। यहाँ भी बादल नव्य क्रांति का दूत बना हुआ है—

'गरज गरज घन अंधकार में गा अपने संगीत,'
जीर्ण-शीर्ण जो दीर्ण धरा में प्राप्त करे अवसान,
रहे अवशिष्ट सत्य जो स्पष्ट।
ताल-ताल से रे सदियों के जकड़े हृदय-कपाट,
खोल दे कर कर कठिन प्रहार,
आये अभ्यंतर संयत चरणों से नव्य विराट्,
करे दर्शन, पाये आभार। —अनामिका

'गीतिका' के रहस्य-गीतों में कहीं उन्होंने बादल के रूप में जीवन-धन के आने का अनुभव किया है—'बादल में आये जीवन-धन,' कहीं वर्षा सुन्दरी का मानवीकृत सुन्दर चित्रण किया है—'मेघ के घन केश वाली चपलाचपल-नयनी वर्षा का पवन पट सर्वत्र लहरा-फहरा जाता है'; तो कहीं निराला जी ने 'परिमल' की 'बादल राग' कविता की तरह बादल को गर्जन-वर्षण के लिए पुकारा है—

घन, गर्जन से भर दो वन
तरु-तरु पादप-पादप-तन।
× × ×
गरजो हे मन्द्र, वज्र-स्वर,
थर्राये भूधर-भूधर,
झर झर झर झर धारा झर
पल्लव-पल्लव पर जीवन। —गीतिका गीत 54

'बेला' और 'नये पत्ते' तथा अन्तिम गीतों में कवि निराला ग्रामश्री के अवलोकन को बढ़ा। अब उसे ग्राम-प्रकृति का यथातथ्य ऋजु-रूप भाने लगा। यही कारण है कि इन रचनाओं में कवि ने अरहर, मूँग, ज्वार, सन और धान के खेतों, अखाड़े में कुश्ती लड़ते ग्राम-युवकों, बहते हुए नालों, चरते हुए ढोरों और हिरणों, पुरवाई के मस्त झोंकों में ही सच्चा आनन्द प्राप्त किया है—

घने-घने बादल हैं एक ओर गड़गड़ाते;
पुरवाई चलती है;
तालों में करंबुए, कोकनद खिले हुए;
ढोर चरते हुए,
कहीं हिरणों का झुंड, आम पकते हुए,
नाले बहते हुए,
युवक अखाड़ों में जोर करते हुए। —नये पत्ते

'गीतगुंज' में कवि ने प्रकृति के काव्यात्मक नागर सौंदर्य का अवलोकन भी किया है। कई गीतों में निराला जी ने वर्षा सुन्दरी के मनोहर चित्र प्रस्तुत किये हैं। कई गीतों में वर्षा का लोक-मंगलमय आवाहन है। कवि ने अन्धकार में बिजली के चमकने, वादलों की गर्जन-तर्जन, पुरवाई के झोंकों, फुहारों के पड़ने, नीम-पीपल आदि पेड़ों के झूमने और कजली-मलार आदि के गाए जाने का वड़ा सजीव वर्णन किया है।

'आराधना' में भी वर्षा और घन का वर्णन तीन-चार गीतों में पाया जाता है। कुछ पंक्तियाँ देखिए—

धाये धाराधर धावन हे !
गगन गगन गाजे सावन हे !
प्यासे उत्पल के पलकों पर
वरसे जल घर-घर-घर-घर-घर,
श्याम दिगन्त-दाम छवि छाई,
वही अनुत्कुंठित पुरवाई,
शीतलता-शीतलता आई, —आराधना, पृ० 3

अंतिम संग्रह 'सांध्यकाकली' की आधी से अधिक कविताएँ प्रकृति या ऋतु-वर्णन से सम्वन्धित हैं। यहाँ भी एक वात लक्ष्य करने की यह है कि कवि ने अधिकतर कविताएँ सावन की वरसती ऋतु में रची हैं और वे मुख्यतः वर्षा ऋतु से ही सम्बन्धित हैं। लगता है जैसे अपनी असंतुलित अवस्था में भी कवि वर्षा के काले-काले वादलों को देखकर झूम उठता होगा। इन कविताओं में कवि का हृदयोल्लास हरियाली बना प्रतीत होता है। वर्षा का मानवीकरण प्रथम कविता की निम्न पंक्तियों में देखिए—

प्राण, तुम सावन सावन-गात,
जलज-जीवन-यौवन अवदात।
मृदु बूँदों चितवन की लड़ियाँ,
केश मेघ, मुख, पलक अँखड़ियाँ, —सांध्यकाकली

कई कविताओं में वर्षा का यथातथ्य चित्र उपस्थित किया गया है—

श्याम गगन नव घन मडलाये।
कानन-गिरि-वन-आनन छाये।
लदे बाग आमों के परसे,
धानों के खेतों पर बरसे,
युवती निकलीं गागर कर ले,
पुरवी प्रिय को गले लगाये।
कमल ताल के जल बलखाये,

नाले उमड़-उमड़ कर आये
नद जल के मद व्याकुल धाये,
तट के नीम हिंडोले खाये। —पृ० 18

कवि वर्षा के बादलों से निवेदन-प्रार्थना करता है। वह उन्हें बरसने और जन-जन के प्राणों को सरसाने का आवाहन करता है—आँगन-आँगन स्नेह का स्पन्दन छा जाय, हरियाली के झूले झूलें और ग्राम-युवतियाँ अपने दुःख भुलाकर हर्ष-आनन्द से भर जायें—

आओ आओ वारिद वंदन !
बरसो सुख बरसो आनन्द !
जन जन के प्राणों में सरसो,
हरियाली के झूले झूलें,
ग्रामवधू सुख से दुख भूलें, —पृ० 22

और कवि के आवाहन पर वाकई सरस घटा घट-घट को सरसा देती है, जीवन पर हरियाली छा जाती है, दिशाएँ झूम उठती हैं, मृदंग-वादन और बूंदों की रिम-झिम से संगीतमय वातावरण उपस्थित हो जाता है। आनन्द और चक्षु-सुख की प्राप्ति ही कवि का उद्देश्य नहीं है, वह यहाँ भी बादल को शक्ति का अग्रदूत और जीवन के विकास का सम्बल बनने की पुकार करता है। वह चाहता है कि विकृत भाव नष्ट हो जायँ और सत्यधर्म की प्रतिष्ठा हो—

बरसो मेरे आँगन बादल,
नई शक्ति अनुरक्ति जगा दो,
विकृत भाव की भक्ति भगा दो,
उत्पादन के मार्ग लगा दो,
साहित्यिक-वैज्ञानिक बल। —पृ० 48

इस प्रकार निराला-काव्य में आद्योपांत बादल और वर्षा-ऋतु का विशेष वर्णन पाया जाता है। यह ऋतु उन्हें विशेष मन-भावनी रही है और इसमें उनका हृदय-कमल खूब खिला है।

अन्य ऋतुओं में वसंत और शरद का वर्णन भी कई संग्रहों की कई कविताओं में हुआ है, पर यह ऋतु-वर्णन अधिकतर यथातथ्य परिचयात्मक ही है। यहाँ कल्पना की रंगीनी नहीं दिखाई देती। 'अनामिका' की 'खुला आसमान' कविता में निराला जी ने बहुत दिनों की झड़ी के बाद आसमान के खुल जाने का बड़ा तथ्यपूर्ण चित्रण किया है :

बहुत दिनों के बाद खुला आसमान।
निकली है धूप, हुआ खुश जहान।

दिखीं दिशाएँ, झलके पेड़,
चरने को चले ढोर-गाय, भैंस-भेड़,
लोग गाँव-गाँव को चले,
कोई बाजार, कोई बरगद के पेड़ के तले। —अनामिका

शरदागम पर "बादलों का रंग बदल गया, पुरवाई बंद हो गई, ओस पड़ने लगी, हरसिंगार मुस्काने और झरने लगे, मालती खिली, शीत हवा सरसाई, नद के उद्गार घटे, निकले तट कटे-छटे, फैली हल-चलवाई।" —आराधना, पृ० 23

वसंत के आगमन पर आम्रमंजरियाँ बौरा गई हैं, भौंरे गूंज रहे हैं, तितलियाँ फूलों का रस ले रही हैं, शीतल मंद, सुगन्ध समीर डोल रहा है। हर तरफ़ बहार छा गई है। वन के मन में हर्ष छा गया है, किसलय-वसना लतिकाएँ प्रिय तरु-उर से जा मिली हैं, पिक-स्वर नभ में सरसा गया। —गीतिका, पृ० 5

निराला जी ने 'आराधना' और 'गीत गुंज' की एक-एक कविता में मध्ययुगीन बारहमासा-वर्णन की परम्परा में, चौमासा-वर्णन किया है। इनमें असाढ़, सावन, भादों और क्वार के चार महीनों में प्रकृति का उद्दीपनकारी चित्रण हुआ है। 'गीतगुंज' के गीत में विरहिणी को मदन सताता है और हर मास उसके लिए नई व्याकुलता उत्पन्न करता है। अन्त में प्रतीक्षारत नायिका का प्रियतम से मिलन हो जाता है। 'आराधना' में निराला जी ने इस विरह-भाव को प्रियतम हरि से सम्बद्ध करके एक तरह कृष्ण काव्य की बारहमासा-परम्परा का निर्वाह किया है। गाढ़ असाढ़ दहकता आया, विरहिणी का तन और भी जल उठा, रात में उसे चैन नहीं, नयनों से नीर-नदी बहने लगी। भला हरि के सिवा उसकी पीर कौन जान सकता है! सावन सर-सावन सुमन-भावन आया, घर-घर झूले पड़े, सखियाँ नई सँवारी साड़ियों में झूले झूलने लगीं, पर विरहिणी प्रिय बिना मन-झूरती रह जाती है। मोर का शोर और पपीहे की पी-पी पुकार सुनकर विरहिणी के प्राण डोल जाते हैं :

फिर लगा सावन सुमन भावन, झूलने घर-घर पड़े।
सखि, चीर सारी की सँवारी, झूलती झोंके बड़े।
बन मोर चारों ओर बोले, पपीहे पी-पी रटे,
ये बोल सुनकर प्राण डोले, ज्ञान भी मेरे हरे। —आराधना 96

इसी प्रकार भादों और क्वार के महीनों में विरहिणी विषम विरह-ज्वाल में जलती-बलती है। प्रिय के वियोग में न वह तीज का त्यौहार मना पाती है, न आश्विन का दुसहरा और रामलीला ही उसे आमोद प्रदान करते हैं।

निराला की 'देवी सरस्वती' कविता में विभिन्न ऋतुओं का एक साथ वर्णन हुआ है। यह रचना इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि इसमें शरद ऋतु-वर्णन के सहारे कवि ने भारतीय ग्राम्य-जीवन की सजीव झाँकी प्रस्तुत की है। खेत-खलिहानों का

गँवई वातावरण और ग्राम-जीवन तथा प्रकृति का सौन्दर्य यहाँ एकाकार हो गया है। कवि ने वर्षा से ऋतुवर्णन आरंभ किया है और प्रत्येक ऋतु में प्रकृति के नव-रूपों का ग्रामजीवन से सामंजस्य स्थापित किया गया है।

इस प्रकार निराला-काव्य सर्वत्र प्रकृति की रंगस्थली बना हुआ है। उसमें प्रकृति के नाना-विध प्रयोग पाए जाते हैं। समस्त काव्य में एक भी कविता ऐसी नहीं जिसमें प्रकृति किसी-न-किसी रूप में न आई हो। उन्हें प्रकृति की अनिवार्यता स्थान-स्थान पर अनुभव हुई है। चाहे प्रकृति के सौन्दर्य-चित्र निराला-काव्य में पंत-काव्य जैसे न हों, चाहे प्रकृति का संश्लिष्ट चित्रण निराला पंत-जैसा न कर पाए हों, पर यह ध्रुव सत्य है कि ऋतु-वर्णन और प्रकृति के मानवीकरण में वह पंत जी से जरा भी पीछे नहीं। प्रतीकात्मक रूप में प्रकृति का जैसा कल्पनाप्रवण प्रयोग निराला ने किया है, वह पंत और प्रसाद नहीं कर सके।

15

महादेवी की छायावादी प्रवृत्ति

1. दार्शनिक आधार : जीवन-दर्शन
2. क्षणिक पलायन
3. रहस्य-भावना
4. प्रकृति-चित्रण
5. नारी और प्रेम
6. कलात्मक अभिव्यक्ति : रम्य कल्पनाएँ
7. गीति-काव्य
8. व्यापक प्रभाव

महादेवी वर्मा आधुनिक हिन्दी-साहित्य की एक श्रेष्ठ कवयित्री और साहित्यकार हैं। छायावादी काव्य को न-केवल उन्होंने रूप-रंग, भाषा-सज्जा, भाव-संवेदना प्रदान कर समृद्ध किया, अपितु उसकी उत्कृष्ट व्याख्या भी की। छायावाद के उद्भव पर विचार करते हुए महादेवी ने कहा है : उसके (छायावाद के) जन्म से पूर्व कविता के बंधन सीमा तक पहुँच चुके थे और सृष्टि के बाह्याकार पर इतना अधिक लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अपनी अभिव्यक्ति के लिए रो उठा! स्वच्छन्द छन्द में चित्रित उन मानव-अनुभूतियों का नाम छाया उपयुक्त ही था और मुझे तो आज भी उपयुक्त लगता है।··· मनुष्य का जीवन चक्र की तरह घूमता रहता है। स्वच्छन्द घूमते-घूमते थककर वह अपने लिए सहस्र बंधनों का आविष्कार कर डालता है और फिर बन्धनों से ऊबकर उनको तोड़ने में अपनी सारी शक्तियाँ लगा देता है, छायावाद के जन्म का मूल कारण भी मनुष्य के इसी स्वभाव में छिपा हुआ है।" छायावाद के मूल में परम्परागत वन्धनों से मुक्ति, वाह्योन्मुखता के स्थान पर अन्त: प्रवृत्ति, आत्माभिव्यक्ति, स्वच्छन्द छन्द गति आदि कई प्रवृत्तियों पर इन पंक्तियों द्वारा प्रकाश पड़ा है। छायावाद पर बाह्य प्रभाव स्वीकारते हुए भी महादेवी उसकी मूल अन्त:चेतना को सर्वथा भारतीय मानती हैं। उनका कथन है—"छायावाद आज के यथार्थ से दूर जान पड़ने पर भी भारतीय काव्य की मूल प्रेरणाओं के निकट है। उसके.प्रतिनिधि कवि भारतीय

संस्कृति, दर्शन तथा प्राचीन साहित्य से विशेष परिचित रहे। पश्चिमीय और बंगला काव्य-साहित्य से उनका परिचय हुआ अवश्य, परन्तु उसका अनुकरण मात्र काव्य को इतनी समृद्धि नहीं दे सकता था। विशेषत: बंगला से उन्हें जो मिला, वह तत्त्वत: भारतीय ही था, क्योंकि रवीन्द्र स्वयं भारतीय संस्कृति के सबसे समर्थ प्रहरी हैं। उन्होंने अपने देश की अध्यात्म-सुधा से पश्चिम का मृत्तिका-पात्र भर दिया, इसी से भारतीय-कवियों ने उनके दान को अपना ही मानकर ग्रहण किया और पश्चिम ने कृतज्ञता के साथ।" इसी प्रकार महादेवी छायावाद को स्थूल के प्रति सूक्ष्म की प्रतिक्रिया मानती हुई भी, उसे स्थूल से सर्वथा असंपृक्त नहीं मानती तथा छायावाद के सूक्ष्म को कोरा वायवी मानने का निषेध करती हैं, : "छायावाद स्थूल की प्रतिक्रिया में उत्पन्न हुआ था, अत: स्थूल को उसी रूप में स्वीकार करना उसके लिए संभव न हुआ; परन्तु उसकी सौन्दर्य-दृष्टि स्थूल के आधार पर नहीं है, यह कहना स्थूल की परिभाषा को संकीर्ण कर देना है।...जीवन की समष्टि में सूक्ष्म से इतने भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह तो स्थूल से बाहर कहीं अस्तित्व ही नहीं रखता।"

दार्शनिक आधार : जीवन-दर्शन—छायावाद की आरम्भकालीन रचनाएँ प्रेम की वेदना-विवृत्ति तथा प्रकृति की कल्पनामयी भावभंगियों से ही मुख्य रूप से खेलती थीं किन्तु बाद को हमारे कवियों का ज्यों-ज्यों जीवन और जगत के प्रति चिंतन बढ़ता गया, त्यों-त्यों छायावाद एक विशिष्ट दार्शनिक दृढ़ भित्ति पर आरूढ़ हुआ। छायावाद के प्रमुख चार कवियों—पंत, निराला, प्रसाद और महादेवी—में महादेवी का आगमन बाद में उस वक्त हुआ जबकि छायावाद अपनी प्रौढ़ता के सोपान को पा चुका था। यही कारण है कि महादेवी के काव्य में छायावादी गहन-गंभीरता और दार्शनिक-आध्यात्मिक प्रौढ़ता खूब पाई जाती है। सर्ववाद या एकात्मवाद का प्रभाव सभी छायावादी कवियों पर पाया जाता है। सभी जड़-चेतन एक ही प्राण-चेतना से अनुप्राणित हैं। एक ही तत्त्व में सब मिलते हैं, एक ही परम प्रकाश से सब प्रोद्भासित होते हैं। महादेवी वर्मा कहती हैं—

तेरी आभा का कण देता, नभ को अगणित दीपक-दान,
दिन को कनक-राशि पहनाता, विधु को चाँदी का परिधान !

एक ही परम तत्त्व से समस्त जड़-जंगम आभासित होता है।

वास्तव में छायावाद पर वर्तमान युग के आध्यात्मिक दर्शन का ही प्रभाव पड़ा है। शंकर के निवृत्तिमूलक अद्वैतवाद के स्थान पर स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, रवीन्द्र आदि के सामाजिकता से युक्त वेदान्त दर्शन का प्रभाव ही हमारे इन कवियों ने ग्रहण किया है। नवयुग के हमारे मनीषियों ने वेद, उपनिषद्, गीता, वेदान्त तथा वैष्णव धर्म सबको मिलाकर एक ऐसे अध्यात्मवाद को जन्म दिया जो देश की प्राचीन दार्शनिक परम्परा में होता हुआ भी वर्तमान युग की सामाजिक

आवश्यकताओं के अनुकूल था। प्राचीन दर्शन की नवीन सामाजिक और मानवतावादी व्याख्या छायावादी कवियों की ऐसी अद्‌भुत विशेषता है जो महादेवी में विशेष रूप से पाई जाती है।

महादेवी वर्मा पर बौद्धों के दुःखवाद का बहुत प्रभाव पड़ा। नारी होने के कारण भी उनकी कविता में करुणा का स्वर सर्वाधिक मुखर हुआ पर जीवन और जगत की असारता और क्षणभंगुरता का स्थान-स्थान पर चित्रण करती हुई भी वह शंकर के 'मायावाद' और 'जगन्मिथ्या' से दूर रहीं। दुःखवाद वास्तविकता है। पुष्प मुरझाने के लिए ही विकसित होते हैं, चन्द्रमा छिपने के लिए ही उदय होता है, यहाँ सभी अस्थिर है—

विकसते मुरझाने को फूल,
उदय होता छिपने को चंद;
शून्य होने को झरते मेघ,
दीप जलता होने को मन्द;
यहाँ किसका अनन्त यौवन?

जीवन की इसी अचिरता को देखकर वह प्रश्न कर उठती हैं—

दिया क्यों जीवन का वरदान?
सिकता में अंकित रेखा-सा—
वात-विकंपित दीप-शिखा-सा—
काल-कपोलों पर अश्रु-सा—
ढल जाता हो म्लान!

परन्तु इस क्षणिक जीवन के महत्त्व को वह समझ जाती हैं। पुष्प क्षण-भर जीकर ही दिगन्त को सुवासित कर देता है, क्षण-भर जलकर ही दीपक आलोक फैला देता है। जीवन की इस नश्वरता में भी सौ-सौ वरदान छिपे हैं। जीवन की सार्थकता इसी में है कि इस क्षणिक जीवन से पुष्प की तरह जग के आँगन को सुवासित बना दिया जाए—

स्निग्ध अपना जीवन कर क्षार,
दीप करता आलोक-प्रसार।
जलाकर मृतपिण्डों में प्राण,
बीज करता असंख्य निर्माण;
सृष्टि का है यह अमिट विधान,
एक मिटने में सौ वरदान!

जीवन के दुःख, नश्वरता आदि से महादेवी निवृत्ति का भाव ग्रहण नहीं करतीं, अपितु वह तो 'जग की मुरझाई कलियों' को ही प्रफुल्लित बनाने की इच्छा प्रकट करके अपनी प्रवृत्ति का ही परिचय देती हैं।

छायावादी कवियों पर सामाजिक और वैयक्तिक दुःखों का प्रभाव पड़ा। महादेवी ने यद्यपि अपने निजी जीवन में दुःखों के अस्तित्व को नकारा है, पर युगीन प्रभाव से वह कैसे असंपृक्त रह सकती थीं ? प्रथम महायुद्ध के विनाशकारी तांडव ने समस्त योरुप को कंपा दिया था, मानवता के संहार पर कवियों ने भी आठ-आठ आँसू बहाए ! भारत में तो विदेशी सत्ता का दमन-चक्र और भी दुःख-दायी था। यही कारण है कि छायावादी-काव्य में व्यथा, वेदना और दुःखवाद का स्वर गूंज उठा। महादेवी का समस्त काव्य ही दुःख और पीड़ा से भरा हुआ है। परन्तु यह दुःखवाद, निराशा और वेदना संध्या की कालिमा नहीं, प्रत्यूष की निहारिका है। दुःख और व्यथा को इन छायावादी कवियों ने जीवन का एक ऐसा तत्त्व बना दिया जो जीवन-भूमि को मरुस्थल नहीं, अपितु उर्वरा ही बनाता है। दुःख के सम्बन्ध में महादेवी ने कहा है, "दु.ख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सकें, किन्तु हमारा एक बूंद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाए बिना नहीं गिर सकता।"

इस दुःखवाद की पृष्ठभूमि में सामाजिक विषमताएँ और असफलताएँ ही प्रमुख कारण है; छायावादी कवियों ने इस वेदना और दुख को एक व्यापक सार्वभौम शाश्वत तत्त्व के रूप में चित्रित किया है। महादेवी तो पीड़ा में ही अपने प्रियतम को ढूंढ़ा चाहती हैं और उससे भी यह बाँछा करती हैं कि "तुम दुख बन इस पथ से आना", 'वे नीर भरी दुख की बदली' बनकर जगत् को उर्वर बनाने के लिए बरस पड़ना चाहती हैं। वह मानवता के 'सूखे होठों के विषाद में' किस प्रकार घुल-मिल जाना चाहती हैं, देखिए—

कहता है जिनका व्यथित मौन,
हम-सा निष्फल है आज कौन ?
निर्धन के धन-सी हास-रेख,
जिनकी जगने न पाई देख;
उन सूखे होठों के विषाद में,
मिल जाने दो हे उदार !

विश्व-वेदना की जो भावना छायावादी कवियों में पाई जाती है, महादेवी में वह अत्यन्त गहन और सूक्ष्म तथा आध्यात्मिक संस्पर्श से ओतप्रोत है।

छायावादी कवि इस विश्ववेदना के भाव से जीवन-विमुख नहीं होता, व्यक्तिगत मुक्ति और मोक्ष का निषेध करता है; वह इस संसार के बंधन में ही अपनी मुक्ति मानता है। अपने प्रियतम की ही आरती उतारने वाली महादेवी भी 'वन्दिनी बनकर हुई मैं बंधनों की स्वामिनी-सी' कहकर बंधन और मुक्ति में

कोई अंतर नहीं मानती, जीत और हार में कोई फर्क नहीं समझती। उनके बंधन ही मुक्ति बन गए हैं—'मुक्ति बन गए मेरे बंधन'।

छायावाद की उपर्युक्त दुखवाद की प्रवृत्ति जीवन में सरसता की स्थापना का साधन है। जीवन के दुःख ही सुखों को लाते हैं। छायावाद में सुख-दुःख के समन्वयवादी सिद्धांत की प्रतिष्ठा भी इसी दुखवाद पर आधारित है। दुःख-सागर की सिहरी स्पन्दन में ही सुखों के बुद्‌बुद् उत्पन्न होते हैं। महादेवी कहती हैं—

सोते जो असंख्य बुद्‌बुद्-से, बेसुध सुख मेरे सुकुमार,
फूट पड़ेंगे दुःख-सागर की सिहरी धीमी स्पंदन में।

इसीलिए महादेवी ने अपने अश्रुनीर में सुख और दुःख दोनों ही तत्त्वों को सन्निहित माना है। इसीलिए वह जीवन में 'कलियों का चुम्बन' और 'काँटों का दंशन' दोनों चाहती हैं। हास-रुदन से युक्त, सुख-दुःखमय स्पन्दनों से भरा जीवन ही महादेवी का काम्य है। निर्वाण और मुक्ति के स्थान पर इसी सुख-दुःखमय बंधनों से युक्त जीवन को वह स्वीकार करती है—

वह सूनापन हो उनका;
यह सुख-दुखमय स्पन्दन मेरे हों!
झरते नित लोचन मेरे हों!
जिसमें कसक, न सुधिका दंशन;
प्रिय में मिट जाने के साधन,
वे निर्वाण-मुक्ति उनके;
जीवन के शतबंधन मेरे हों!

'समागमा सापागमा' तो बहुत पहले सुन आए हैं, परन्तु उसके साथ ही 'उत्पादि भंगुरम्' और 'जगन्मिथ्या' भी लगा था, वह निवृत्ति का ही द्योतक था। इस छायावादी सामाजिक अध्यात्म दर्शन का, सृष्टि, जीव, चराचर की सत्यता और शाश्वतता का तथा सुख-दुख की इस सम्मिलित उपासना का भाव मध्यकाल की विशिष्टाद्वैती अथवा शुद्धाद्वैती किसी भी विचारधारा में नहीं है। वहाँ जगत् और जीव को सत्य अवश्य कहा गया है, किन्तु किसी-न-किसी रूप में माया का अस्तित्व और 'जगन्मिथ्या' का भाव बना ही रहा।

सुख-दुख से युक्त इस मानव-जीवन को पूर्ण बनाने की आकांक्षा सभी छायावादी कवियों में पाई जाती है। छायावाद का मूलदर्शन आत्मिक है। अतः इन कवियों ने आत्म-साधना, आत्म-परिष्कार, आत्म-विस्तार एवं आत्मबलिदान से ही जीवन की पूर्णता की कल्पना की है। छायावादी दर्शन की मूल प्रेरणा सांस्कृतिक होने के कारण सत्य, त्याग, सेवा, आत्मबलिदान आदि उच्च सांस्कृतिक मूल्यों की सभी छायावादी कवियों ने प्रतिष्ठा की। महादेवी की पूत-आत्मा जगत्

की मंगल-कामनाओं से ओत-प्रोत है। वह संसृति के क्रंदन को अपने में भरकर उसे विषादरहित बनाने की तीव्र इच्छा रखती हैं। अपने प्रियतम से भी उनका यही कथन है—

तुम्हें बाँध पाती सपने में।
पावस घन-सी उमड़ बिखरती; शरद निशा-सी नीरव घिरती;
धो लेती जग का विषाद, ढुलते लघु आँसू कण अपने में!

क्षणिक पलायन : प्रसाद, पंत और निराला का छायावादी काव्य जिस प्रकार हमारे राष्ट्रीय और सांस्कृतिक आन्दोलनों को भी बड़ी सूक्ष्मता के साथ छू लेता है, वह बात महादेवी में नहीं पाई जाती। इन चारों छायावादी कवियों में महादेवी सर्वाधिक आत्म-केन्द्रित रही। यद्यपि जीवन की यथार्थ समस्याओं और उसकी विभीषिकाओं में संघर्षशील कोई भी छायावादी कवि नहीं हो सका, जीवन की कटु वास्तविकता उसे खिन्न तो बनाती थी, पर संघर्ष के लिए क्रियाशील नहीं करती थी, बल्कि कई बार वह खिन्न होकर इस कोलाहल की अवनी को छोड़कर प्रकृति अथवा अतीत की सुखद छाया में चला जाना चाहता रहा, पर राष्ट्रीय और सांस्कृतिक जीवन की उच्चाकांक्षाओं से वह रिक्त नहीं थे। कुछ आलोचकों ने इसे छायावादी कवियों की पलायन-वृत्ति कहा है, जो आंशिकरूप में ही सत्य है। महादेवी के प्राण क्षितिज के पार उस रहस्यमय लोक को देखने के लिए विकल हैं, वह अपने साँसों के बंधन से छूटकर उसी रहस्य-लोक में जाना चाहती हैं—

फिर विकल हैं प्राण मेरे,
तोड़ दो वह क्षितिज, मैं भी देख लूं उस ओर क्या है।
जा रहे जिस पंथ से युग-कल्प उसका छोर क्या है।
क्यों मुझे प्राचीर बनकर आज मेरे श्वास घेरे?

रहस्य-भावना : इस सुखद रहस्य-लोक की कल्पना हमारे इन कवियों ने अपनी रहस्यभावना के कारण ही की है। महादेवी के उपर्युक्त भाव उनकी रहस्य-भावना के ही द्योतक हैं। परोक्ष रहस्य-सत्ता के प्रति जिज्ञासा और उत्कंठा की भावना सभी छायावादी कवियों में है। आधुनिक रहस्यवाद का यह प्रथम सोपान छायावाद की भी एक विशेषता है। इसी भावना से ये कवि उस विराट सौन्दर्य-सत्ता की छवि का पान करना चाहते हैं। वह कौन है? उसका अस्तित्व कहाँ है? उसका रहस्य क्या है?—यह सब जानने का कौतूहल छायावादी कवियों में समान रूप से पाया जाता है। महादेवी उस चित्रकार का रहस्य जानना चाहती है—

कनक-से दिन, मोती-सी रात,
मिटाता-रंगता बारम्बार,
कौन जग का वह चित्राधार ?

छायावादी कवियों में उपर्युक्त आध्यात्मिक चेतना और रहस्य-भावना इतनी है कि बहुत-से आलोचक छायावाद और रहस्यवाद में कोई भेद नहीं मानते। महादेवी वर्मा का छायावादी काव्य भाव और कथ्य के स्तर पर रहस्यवाद में ही पर्यवसान पाता है। उन्होंने छायावाद के ही दूसरे सोपान को रहस्यवाद कहा है : "प्रकृति के लघु तृण और महान् वृक्ष, निविड़ अंधकार और उज्ज्वल विद्युत-रेखा, मानव की लघुता-विशालता, कोमलता-कठोरता और मोह-ज्ञान का केवल प्रतिविम्ब न होकर एक ही विराट् से उत्पन्न सहोदर हैं। जब प्रकृति की अनेक-रूपता में, परिवर्तनशील विभिन्नता में, कवि ने ऐसा तारतम्य खोजने का प्रयास किया जिसका एक छोर किसी असीम चेतन और दूसरा उसके समीप हृदय में समाया हुआ था, तब प्रकृति का एक-एक अंश अलौकिक व्यक्तित्व लेकर जाग उठा।

"परन्तु इस सम्बंध से मानव-हृदय की सारी प्यास बुझ न सकी।—इसी से अनेकरूपता के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोप कर उसके निकट आत्मनिवेदन करना इस काव्य (छायावाद) का दूसरा सोपान बना जिसे रहस्यमय रूप के कारण ही रहस्यवाद नाम दिया गया" (यामा की भूमिका)

महादेवी वर्मा में छायावाद और रहस्यवाद दोनों घुले-मिले अवश्य हैं, किन्तु छायावाद को ही रहस्यवाद मान लेना भ्रांति है। छायावाद अपनी विशिष्ट विचारधारा, विशिष्ट जीवन-दर्शन, विशेष आत्मिक भाव-संवेदन और नव काव्य-शैली और कलात्मक अभिव्यक्ति के कारण एक व्यापक और विराट् काव्यधारा है किन्तु रहस्यवाद अपने मूल रूप में केवल आत्मा का परमात्मा के प्रति प्रेम-निवेदन है। दोनों में उपर्युक्त रहस्य-भावना तो समान है, किन्तु छायावाद जहाँ असीम परमात्मा के प्रति जिज्ञासा-विस्मय और कौतूहल तक ही सीमित है, वहाँ रहस्यवाद का वास्तविक उन्मेष आत्मा-परमात्मा के विरह-मिलन की नाना अनुभूतियों में होता है। महादेवी में चूंकि रहस्यवादी प्रवृत्ति प्रमुख है, इसी से महादेवी का छायावाद रहस्यवाद में परिणति पाता प्रतीत होता है। आधुनिक युग में छायावाद-रहस्यवाद की समानता का भ्रम इसलिए फैला कि पंत, प्रसाद, निराला, महादेवी आदि हमारे छायावादी कवियों ने ही नवीन छायावादी शैली में रहस्यवाद की भी व्यंजना की। साथ ही छायावाद में उद्दाम वैयक्तिकता के कारण सूक्ष्म प्रेम और सौन्दर्य की अभिव्यक्ति हुई, वह अपने में स्वयं विस्मय और रहस्य था। किन्तु यह निर्भ्रांत रूप से समझ रखना चाहिए कि छायावाद और रहस्यवाद हिन्दी काव्य की दो स्वतंत्र धाराएँ हैं।

प्रकृति-चित्रण : छायावादी कवियों की आत्म-प्रसार और स्वच्छन्दता की वृत्ति उन्हें प्रकृति के उन्मुक्त प्रांगण में ले गई। वहाँ उन्होंने प्रेम के अनन्त राज्य, अपार सुषमा और सौन्दर्य, पवित्रता, निश्छलता और सबसे बढ़कर अबाध स्वच्छन्दता का अनुभव किया। नदी-नालों, निर्झरों, पशु-पक्षियों, मेघ, पवन, चाँदनी-रात्रि, पावस-शरद, लतापुष्प सबकी स्वच्छन्द गति में अपनी स्वच्छन्द नाद मिलाने लगे। प्रकृति के ये सब रूप मानव की तरह हँसने-रोने लगे, अपने हृदय के छिपे रहस्यों को मानव के सन्मुख प्रकट करने लगे। प्रकृति और मानव में एकात्मता स्थापित हुई, सचराचर प्रकृति मानव के साथ मिलकर एक रूप हो गई। प्रकृति की क्रोड में हमारे कवियों के व्यथित हृदय को सांत्वना मिली, वहीं उनकी सौन्दर्य-भावना की तृप्ति हुई; उनके विशाल हृदय को फैलने के लिए अनन्त आकाश, विस्तृत समुद्र मिला, और वहीं उन्हें विराट् सचेतन सत्ता के दर्शन हुए! प्रकृति के अनेक सुन्दर चित्रों से, सुन्दर-सुन्दर प्राकृतिक उपादानों से, रंग-विरंगी तूलिका से इन कवियों ने अपने काव्य में सौन्दर्य-सृष्टि की। महादेवी का एक संध्या का चित्र देखिए—

नव इन्द्रधनुष-सा चीर, महावर अंजन लें;
अलि-गुंजित मीलित पंकज, नूपुर-रुनझुन ले;
फिर आई मनाने साँझ, मैं बेसुध मानी नहीं!

प्रकृति के संश्लिष्ट चित्रों को बहुधा प्रकृति के मानवीकरण के रूप में प्रकट किया गया है। प्रकृति का सजीव मानवीकरण छायावादी काव्य की एक बहुत बड़ी विशेषता है। प्रकृति को नारी रूप में सर्वाधिक चित्रित किया गया है। महादेवी में यह प्रवृत्ति सर्वाधिक है। मधु-रजनी, बसंत, प्रभात, संध्या, अप्सरि, शरद-सुंदरी आदि अनेक रूपों में उन्होंने प्रकृति-सुन्दरी का चित्रण किया है। बल्कि महादेवी की प्रकृति उनकी चिर सहचरी वनी उनकी ही तरह प्रियतम की खोज करने वाली शृंगार और अभिसार के लिए प्रस्तुत उनकी सहचरी-सुन्दरी है। वसंत-रजनी का यह चित्र अवलोकनीय है—

धीरे-धीरे उतर क्षितिज से आ वसंत रजनी!
तारकमय नव वेणी-बंधन; शीशफूल कर शशि का नूतन;
रश्मि-वलय सित घन-अवगुण्ठन,
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे, चितवन से अपनी!

यही नहीं, वह मधु की रजनी को शृंगार कराकर अभिसार के लिए उद्यत करती हैं। प्रकृति का नारी-रूप मानवीकरण इतना स्पष्ट और सजीव है कि प्रकृति भी मानव की तरह प्रेम-व्यापार करती प्रतीत होती है। महादेवी की 'निशा-सुन्दरी' की अलकें राकेश प्रेम से धोता है, तो कहीं विधु-किरणें बीचियों को चूमती हैं, कहीं आकाश झुककर नायिका धरा को अपना प्यार देता है—"झूम गर्वित स्वर्ग

देता, नत धरा को प्यार-सा क्या ?" प्रकृति का यह पारस्परिक प्रणय-व्यापार महादेवी में बहुत पाया जाता है, किन्तु महादेवी का ऐन्द्रिक चित्रण (Sensuous treatment) निराला, पंत आदि की अपेक्षा अधिक संयत और सूक्ष्म है।

प्रकृति के साथ तादात्म्य छायावाद की प्रमुख विशेषता है। कहीं प्रकृति मानव के दुःख-दर्द के प्रति संवेदनशील होती है तो कभी मानव भी उसकी व्यथा का अनुभव कर अपनी सहानुभूति व्यक्त करता है। कुसुम के क्षणिक वैभव के बिखर जाने पर महादेवी की आत्मा रो उठती है। प्रेम की वेदी पर अपना हृदय बिंधवाने वाले भ्रमरों और सर्वस्व न्योछावर कर देने वाले शलभों को देखकर मानव-हृदय करुणार्द्र हो उठता है। व्यथित पुष्प के प्रति महादेवी के स्नेहातुर हृदय का यह उद्‌गार देखिए—

मत व्यथित हो फूल ! किसको सुख दिया संसार ने ?
स्वार्थमय सबको बनाया है यहाँ करतार ने !

पपीहे की 'पिउ-पिउ' की रटन सुनकर उनका हृदय द्रवित हो जाता है और वह उसके निर्मोही प्रियतम का पता पूछती हैं। 'प्रिय सांध्यगगन मेरा जीवन', 'मैं नीर भरी दुख की बदली', 'विरह का जलजात जीवन' आदि अनेक गीतों में कवयित्री ने अपने जीवन को प्रकृति के साथ एकाकार कर दिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकृति उनकी चिर सहचरी है। दोनों ही शृंगार करती हैं, एक साथ अभिसार करती हैं और दोनों ही उस परम ब्रह्म के समागम की प्रतीक्षा करती हैं।

छायावादी प्रकृति-प्रयोग की एक विशिष्टता जो विराट् परम सत्ता के प्रति जिज्ञासा, विस्मय आदि की भावनारूप है, वह महादेवी में विपुल पाई जाती है, हम ऊपर दर्शा चुके हैं।

नारी और प्रेम—प्रकृति की ही भांति छायावादी काव्य में नारी और प्रणय की प्रधानता मिलती है। प्रकृति में ही इन कवियों ने नारी के नैसर्गिक रूप का साक्षात्कार किया। यही कारण है कि इनकी नारी प्रकृति की ही भाँति एक निसर्ग-प्रतिमा है। सूक्ष्म सुन्दर नारी-सौन्दर्य के प्रकाशन के साथ ही सूक्ष्म और आत्मिक प्रेम का चित्रण भी छायावाद की विशिष्टता है। महादेवी का समस्त काव्य ही भावात्मक सूक्ष्म प्रेम का द्योतक है। प्रेम का अत्यन्त सूक्ष्म, निश्छल, पावन और परिष्कृत रूप महादेवी में पाया जाता है। शारीरिकता और स्थूलता तो उसे छूने भी नहीं पाती है। एक भाव-चित्र देखिए—

एक बार आओ इस पथ से मलय-अनिल बन हे चिर चंचल !
अधरों पर स्मित-सी किरणें ले श्रमकण से चर्चित सकरुण मुख,
तम हो तुम हो और विश्व में मेरा चिर परिचित सूनापन,
मेरी छाया हो मुझ में लय, छाया में संसृति का स्पंदन,
मैं पाऊं सौरभ-सा जीवन तेरी निश्वासों में घुल-मिल !

यह प्रेम लौकिक है या अलौकिक ?—इस विवाद में पड़ने की यहाँ जरूरत नहीं है। विशेष बात यही है कि यह सब सूक्ष्म है, भव्य है। महादेवी नारी हैं, अतः उनके प्रेम-चित्रों में उद्दामता कहीं नहीं है। पंत-निराला की-सी शारीरिक आकुलता यहाँ नहीं है। अधिकांशतः असीम परमसत्ता के प्रति व्यक्त होने के कारण उसमें रहस्य और अलौकिकता का पुट उसे रहस्यवादी काव्यानुभूति बना देता है। यद्यपि नारी के नख-शिख शारीरिक सौन्दर्य का चित्रण महादेवी ने पंत, प्रसाद, निराला की अपेक्षा बहुत कम किया है फिर भी जो है, वह अत्यन्त सूक्ष्म और भव्य है। छायावादी कवियों की नारी विधाता की अनुपम रचना है, पुराने कवियों के वयः सन्धि एवं मुग्धा नायिकाओं के स्थूल चित्रण से महादेवी का यह चित्र मिलाइए—

सजनि तेरे दृगबाल !
चकित-से विस्मित-से दृगबाल,
आज खोए-से आते लौट, कहाँ अपनी चंचलता हार ?
झुक जातीं पलकें सुकुमार, कौन-से नव रहस्य के भार ?
सरल तेरा मृदु हास !
अकारण वह शैशव का हास—
बन गया कब कैसे चुपचाप
लाज-भीनी-सी मृदु-मुस्कान,
तड़ित-सी जो अधरों की ओट,
झाँक हो जाती अन्तर्धान !
सजनि वे पद सुकुमार !
तरंगों-से द्रुतपद सुकुमार—
सीखते क्यों चंचल गति भूल,
भरे मेघों की धीमी चाल !

नारी को एक रहस्यमयी शक्ति के रूप में भी छायावाद में स्थान मिला है। नारी केवल प्रेममयी, सौन्दर्यमयी, कलामयी, जीवन-सहचरी, 'प्रेयसी', 'प्राण' ही नहीं रही, वह श्रद्धामयी, कल्याणी, प्रेरणामयी, शक्तिमती, करुणामयी भी बनी है। प्रसाद की श्रद्धा, निराला की शक्ति माँ, शारदा, पंत की 'अप्सरि' और महादेवी की 'प्रिय-प्रेयसि अप्सरि' ऐसे ही नारी-चित्र हैं। महादेवी की 'प्रिय-प्रेयसि अप्सरि' का यह चित्र देखिए, इसके अमर लास की रहस्यमयता का क्या कहना! यह प्रकृति-शक्ति कितनी विराट् है—

लय गीत मदिर, गति ताल अमर
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर !

रवि-शशि तेरे अवतंस लोल;
सीमन्त जटित तारक अमोल,
चपला विभ्रम, स्मित इन्द्रधनुष,
हिमकण बन झरते स्वेदनिकर !
युग है पलकों का उन्मीलन,
स्पंदन में अगणित लय-जीवन;
तेरी श्वासों में नाच-नाच,
उठता बेसुध जग सचराचर !

इस प्रकार छायावादी कवियों ने नारी-सौन्दर्य का जो एक अभिनव मानदण्ड प्रस्तुत किया, उसका समावेश महादेवी के गीतों में भी हुआ है। नारी के स्थूल सौन्दर्य की जगह इन कवियों ने उसके भाव-सौन्दर्य का सूक्ष्म चित्रण किया है।

कलात्मक अभिव्यक्ति, रम्य कल्पनाएँ—छायावादी काव्य की मूल भावना रोमाण्टिक है। यह मानसिक स्वच्छन्दता का काव्य है। रूढ़िगत प्राचीन काव्य से असंतुष्ट होकर छायावादी कवियों ने नवीन काव्य-सृजन का उत्साह दिखाया। नवीन सौन्दर्य-सृष्टि के लिए उनकी कल्पनाएँ इन्द्रधनुषी पंख लगाकर उड़ने लगीं, कविता कल्पना के कानन की रानी बन गई। सौन्दर्य के प्राचीन मानों से ऊबकर हमारे कवि अपनी कल्पना की सुन्दर-सृष्टि करने को मचलने लगे। प्राचीन परंपरागत अभिव्यक्ति-शैली के स्थान पर नवीन कल्पनायुक्त सूक्ष्म एवं स्वच्छन्द अभिव्यक्ति चाहने लगे। परियों के बच्चे बने हुए मेघों के साथ छायावादी कवियों की कल्पना भी आकाश में उड़ी फिरने लगी। महादेवी का काव्य छायावादी रंगीन कल्पनाओं से युक्त नव अभिव्यक्ति-शैली का काव्य है। ध्वन्यर्थव्यंजक मधुर शब्दों तथा संगीतात्मक ललित पदों से महादेवी ने अपनी पद-शैली सजाई है। निम्न पंक्तियों में शब्द भी गति और ताल देते हुए नृत्य-निरत दिखाई देते हैं—

लय गीत मदिर गति ताल अमर,
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर !

छायावादी कवियों ने 'मधु', 'सुधा', मधुर, सुरभि, सुवर्ण, स्पंदन, कंपन, मृदु, मृदुल, मुग्ध, कलकल, गुंजन, सिहरन, नीरव, उर्मिल, तन्द्रिल, चंचल, आँसू, पलक, कलि, लोल, स्मित, अधर, सित, सजल, किरण, करुणा, अरुणा, मदिर, सुमन, चपल, मधुप, तरल आदि अनेक छोटे-छोटे तीन-तीन, चार-चार वर्णों के रोमानी शब्दों का मोहक और सजीव प्रयोग किया है। महादेवी के काव्य में इन शब्दों की मसृणता देखते ही बनती है। शब्दों का ज्ञान इन कवियों को इस हद तक था कि लहर, तरंग, वीचि, उर्मि, हिल्लोल जैसे पर्यायवाची शब्दों के सूक्ष्म अंतर और भिन्न अर्थ-छायाओं को ये खूब समझते थे।

छायावादी कवियों ने हिन्दी कविता के शब्द-भण्डार को खूब समृद्ध किया है। इन्होंने कविता में अनेक शब्दों को नया अर्थ दिया और अनेक नए कोमलकांत पदों का निर्माण किया। इन कवियों के शब्द-चयन की एक बहुत बड़ी विशेषता है—साभिप्राय सार्थक कलात्मक लाक्षणिक विशेषणों का प्रयोग। सुन्दर चित्रात्मकता, लाक्षणिकता तथा प्रभविष्णुता इन विशेषणों की खूबी है। महादेवी के कुछ प्रयोग देखिए—उन्मन निद्रा, नीरव उच्छ्वास, अरुण बाण, निर्मम दर्पण, दीवानी चोट, अरुण घूंघट, बुझते प्राण, शीतल चुम्बन, गाढ़ा विषाद आदि।

कल्पना-प्रवणता की अपार विशेषता के ही कारण छायावादी कवियों ने अपनी अद्भुत चित्र-शक्ति का परिचय दिया है। इनकी कल्पना इतनी सचेतन एवं प्रखर है कि प्रत्येक अनुभूति इनके सम्मुख चित्र-रूप में ही आती है। इनकी भाषा सर्वत्र बिम्ब-ग्रहण कराती है। महादेवी वर्मा ने अपने गीतों के समानान्तर चित्र बनाकर अपनी चित्रात्मकता को प्रमाणित कर दिया है। काव्य, संगीत और चित्र इन तीनों की त्रिवेणी उनके भी प्रत्येक गीत की प्रत्येक पंक्ति में तरंगित रहती है। पंत की अपेक्षा महादेवी में संश्लिष्ट चित्रण की प्रवृत्ति कम है, वे भाव-चित्र अधिक प्रस्तुत करती हैं, साथ ही महादेवी के चित्रों में गांभीर्य रहता है। महादेवी के प्रकृति-चित्र हम ऊपर उदाहृत कर आए हैं, एक और उदाहरण देखिए—

स्वर्ण कुमकुम में बसाकर,
है रंगी नव मेघ-चूनर,
बिछल मत घुल जाएगी,
इन लहरियों में लोल री!
चाँदनी की सित सुधाभर,
बांटता इनसे सुधाकर,
मत कलि की प्यालियों में,
लाल मदिरा घोल री!
मत अरुण घूंघट खोल री!

चित्र में रंग कितनी भव्यता से भरे हुए हैं मानो इन्द्रधनुष-तूलिका को मधु में डुबोकर चित्र बनाया गया है। महादेवी के "राग-भीनी तू सजनि, निःश्वास भी तेरे रंगीले" गीत में भी संध्या का जो धूप-छांही और गत्यात्मक चित्र है, उसमें लाल-पीले, धुंधले-काले रंगों का सामंजस्य है। पंत की तरह महादेवी ने भी एक शब्द-चित्र (One word picture) का प्रयोग कर अपनी अद्भुत चित्र-शक्ति का परिचय दिया है। उषा के अरुण-वसना, मुकुल-दशना, मधुप-रशना आदि चित्रात्मक विशेषण तथा रजनी को 'नीलम की निस्सीम परी,' घन को 'सिंधु का उच्छ्वास', तारों को 'बिखरे सित अक्षर', 'मूक गगन के अश्रु' आदि कहकर महादेवी ने सुन्दर चित्र निर्मित किए हैं।

छायावादी कवियों ने बहुत ही सुन्दर सांकेतिक शैली को जन्म दिया। भाषा की अभिधा शक्ति के स्थान पर उन्होंने लक्षणा-व्यंजना से अपनी भाषा को विलक्षण बनाया है। अनेक प्रकार के लाक्षणिक प्रयोगों से छायावादी कविता भरी हुई है। कहीं सत्त्ववाचक के लिए असत्त्ववाचक का प्रयोग करके, कहीं क्रिया के रूप में, कहीं विरोधमूलक शब्दों के द्वारा, कहीं विशेषण-विपर्यय और मानवीकरण अलंकारों द्वारा इन कवियों ने लाक्षणिक प्रयोगों से अपनी अभिव्यक्ति को बहुत ही सशक्त बनाया है।

मानवीकरण अंग्रेजी अलंकार माना जाता है। यद्यपि हमारे यहाँ आदिकाल से इस अलंकार का प्रयोग चला आ रहा है, किन्तु आधुनिककाल में छायावादी कवियों ने इसे विशेष प्रश्रय दिया और इसके प्रयोग में अपनी सूक्ष्म अनुभूति का परिचय दिया। यह छायावादी कवियों की चित्र-शक्ति का ही द्योतक है। इन कवियों ने दो रूपों में इसका व्यवहार किया है—एक जड़ प्रकृति को मानवी-रूप प्रदान कर और दूसरे भावों के मूर्त्तीकरण के रूप में। महादेवी में दोनों ही रूपों में यह लाक्षणिक प्रयोग और मानवीकरण देखिए—

कलियों की घन जाली में छिपती देखूँ लतिकाएँ,
या दुर्दिन के हाथों में लज्जा की करुणा देखूँ!

छायावाद की सांकेतिक शैली का इससे भव्य उदाहरण क्या होगा! अन्तिम पंक्ति में नारी के लिए सूक्ष्म असत्त्ववाचक लज्जा का प्रयोग कैसा अनूठा है! इसी प्रकार 'झरते नित लोचन मेरे हों' में क्रिया के रूप में लक्षणा का प्रयोग हुआ है। शापमय-वर, मधुर पीड़ा आदि विरोधमूलक शब्दों के प्रयोग द्वारा भी लाक्षणिकता उत्पन्न की गई है। विशेषण-विपर्यय महादेवी में प्रचुर है। महादेवी की सूक्ष्म कलाका एक उदाहरण देखिए—

कहता है जिनका व्यथित मौन,
हम-सा निष्फल है आज कौन ?
निर्धन के धन-सी हास-रेख,
जिनकी जग ने न पाई देख,
उन सूखे होंठों के विषाद में,
मिल जाने दो हे उदार !
बस एक बार, बस एक बार !

'व्यथित मौन' में विशेषण-विपर्यय का कैसा सुन्दर प्रयोग है! व्यथित मौन नहीं, दुखी और असहाय व्यक्ति है। साथ ही "कहता है जिनका व्यथित मौन" में मूर्त के लिए अमूर्त का भी लाक्षणिक प्रयोग है। यहां भाव का मानवीकरण भी है। सूखे होंठों के विषाद में मिलना कैसा विलक्षण लाक्षणिक प्रयोग है! दीन-हीन-दुखी व्यक्ति का चित्र-सा आँखों के आगे नाच उठता है। 'विषाद में घुलमिल

जाना' कितना सशक्त प्रभावोत्पादक प्रयोग है! साथ ही छायावाद में जो रूढ़ि-युक्त उपमानों के स्थान पर प्रभाव-साम्य पर आधारित नवीन उपमान-योजना की प्रवृत्ति है, उसका सुन्दर उदाहरण 'निर्धन के धन-सी हास-रेख' में मिलता है। छायावादी सूक्ष्म, सशक्त, सांकेतिक, ललित और लक्षणा-व्यंजनापूर्ण शैली का उपर्युक्त पंक्तियाँ सर्वोत्तम उदाहरण हैं। जड़ वस्तुओं और भावों का मानवी-करण महादेवी की कला को सहज-साध्य है। उनकी इच्छाएँ सिहरतीं, आशा मुस्कराती, करुणा ढुलती, आहें सोती, शून्य गाता, सूखापन बिखरता, प्रभात हँसता, किरणें मचलतीं, मौलश्री अलसाती और सकुचाती हैं।

सौन्दर्यमय प्रतीक-विधान के रूप में लाक्षणिक प्रयोग भी छायावादी शैली की एक विशेषता है। महादेवी की रहस्य-भावनाओं की अभिव्यक्ति सर्वत्र ही प्रतीकों द्वारा हुई है। प्रतीकों के रूप में लक्षणा का सुन्दर उदाहरण देखिए—

यह पतझड़ मधुवन भी हो
शूलों का दंशन भी हो, कलियों का चुम्बन भी हो।

—नीरजा

यहाँ पतझड़ विषादमय जीवन का प्रतीक है और मधुवन सुखमय जीवन का, शूल दुखों के प्रतीक हैं तथा कलियाँ सुखों की प्रतीक हैं। इस प्रकार के प्रतीक-प्रयोग से काव्य की प्रभविष्णुता बढ़ जाती है। एक और उदाहरण देखिए, अश्रु-नीर में उत्पन्न शुद्ध कमल आत्मा का प्रतीक—

इसमें न पंक का चिन्ह शेष
इसमें न ठहरता सलिल-लेश,
इसको न जगाती मधुप-भीर!

यहाँ पंक तामसिकता का, सलिल राजसिक भावनाओं का, मधुप-भीर काम-वासनाओं तथा सांसारिक इच्छाओं के प्रतीक हैं। इसी प्रकार महादेवी ने संसार के लिए सागर, तरी जीवन के लिए, पतवार साहस के लिए, वीणा के तार हृदय के भावों के लिए, ग्रीष्म रोष के और शिशिर जड़ता के लिए प्रतीक प्रयुक्त किए हैं।

छायावाद में अधिकतर नवीन औपम्य विधान मिलता है। पुराने उपमानों को भी इन कवियों ने नये ढंग पर बड़ी ही सूक्ष्मता के साथ प्रयुक्त किया है। छायावाद में जो आभ्यंतर प्रभाव-साम्य पर जोर दिया गया है, उसका कारण उसकी अन्तर्दृष्टिदायिनी कल्पना-शक्ति है। कल्पनाजनित अन्तर्दृष्टि के ही द्वारा छायावाद में दो भिन्न प्रतीत होने वाली वस्तुओं में निहित आभ्यंतर साम्य का पता लगाया गया है। इसी अन्तर्दृष्टि के द्वारा छायावादी कवि चराचर के बीच स्थित सूक्ष्म सम्बंध-सूत्रों को देखने में समर्थ है। महादेवी की ऐसी ही आभ्यंतर प्रभाव-साम्य से युक्त सूक्ष्म उपमान-योजना देखिए—

जिन प्राणों से लिपटी हो पीड़ा सुरभित चंदन-सी,
तूफानों की छाया हो जिसको प्रियालिंगन-सी—
जिसको जीवन की हारें हों, जय के अभिनन्दन-सी—

पीड़ा के लिए सुरभित चंदन अमूर्त के लिए मूर्त उपमान-योजना तथा हारों के लिए अभिनन्दन अमूर्त के लिए अमूर्त उपमान कितने सूक्ष्म और भावाभिव्यंजक हैं !

अमूर्त के लिए मूर्त अप्रस्तुत का एक और उपमान-प्रयोग देखिए—

शतरंगों के इन्द्रधनुष-सी स्मृति उर में छाई।

अमूर्त्त के लिए अमूर्त्त—रात-सी नीरव व्यथा—इसमें रात की नीरवता अमूर्त्त है, व्यथित व्यक्ति के मौन द्वारा उसकी साम्यता जताई गई है। इसी प्रकार 'तम-सी अगम मेरी कहानी' में कहानी अमूर्त्त अप्रस्तुत के लिए अमूर्त्त तम। अप्रस्तुत का ऐसा विधान ज़रा कठिन कार्य होता है, किन्तु प्रतिभा-सम्पन्न कवियों की कल्पना-शक्ति को यह सहज-साध्य है। मूर्त्त का अमूर्त्त विधान और देखिए—

शून्य नभ पर जब उमड़ मधुर भार-सी
नैश तम में सघन छा जाती घटा।

यहाँ 'घटा के छा जाने' मूर्त्त वस्तु-विधान की मधुभार अमूर्त्त से उपमा दी गई है। मूर्त्त के लिए मूर्त्त विधान तो आदि काल से होता आया है, किन्तु छायावादी कवियों की विशेषता यही है कि वे इस रूप-विधान में भी सूक्ष्मता और सुन्दरता का समावेश कर देते हैं—'कनक-से दिन मोती-सी रात' में ऐसा ही सूक्ष्म प्रयोग है। 'नीरजा' की इस पंक्ति में भाव-व्यंजना कितनी सार्थक और सफल है !—

पावस घन-सी उमड़ बिखरती,
शरद निशा-सी नीरव घिरती !

प्रभाव-साम्य पर बल देने के कारण छायावादी कवियों की सांकेतिक अभिव्यक्ति अन्योक्ति-समासोक्ति, रूपकातिशयोक्ति और सांग-रूपकों के रूप में भी प्रकट हुई है। महादेवी वर्मा ने सांगरूपकों का बहुत सुन्दर प्रयोग किया है। "मैं नीर-भरी दुख की बदली," "विरह का जलजात जीवन," "मैं बनी मधुमास आली !", "प्रिय, सांध्यगगन मेरा जीवन !" आदि पूरे गीतों में सांगरूपकों की रुचिरता दर्शनीय है। रहस्यवादी होने के कारण महादेवी ने अन्योक्ति तथा समासोक्तियों का भी सुन्दर प्रयोग किया है। 'टूट गया वह निर्मम दर्पण', 'कीर का प्रिय, आज पिंजर खोल दो !' 'शलभ मैं शापमय वर हूँ, किसी का दीप निष्ठुर हूँ' आदि गीतों में अन्योक्ति का प्रयोग है। समासोक्ति इन पंक्तियों में देखिए—

चुभते ही तेरा अरुण बाण—
इन कनक-रश्मियों में अथाह,

लेता हिलोर तम-सिंधु जाग;
बनती प्रवाल का मृदुल फूल,
जो क्षितिज -रेख थी कुहुर-म्लान !

छायावादी कवियों के इन प्राचीन अलंकारों के प्रयोग में भी विशेषता यह है कि इन्होंने इनमें अप्रस्तुत-विधान बहुत सूक्ष्म रखा है। महादेवी वर्मा के निम्न सांगरूपक में स्वांति-नक्षत्र में सीपी के अंदर मोती बनने के परम्परागत कवि-समय का किस विलक्षणता से सहारा लिया गया है, देखिए—

तरल मोती से नयन भरे—
मानस से ले उठे स्नेह-घन,
कसक विद्युत् पुलकों के हिम-कण,
सुधि-स्वांति की छाँह—
पलक की सीपी में उतरे !

प्रभाव-साम्यमूलक अप्रस्तुतों के अतिरिक्त छायावादी कवियों में तुलना और विरोधाभाससंयुक्त अप्रस्तुतों के प्रयोग की भी विशेषता है। प्रसाद और महादेवी वर्मा में विरोधाभास अलंकार की प्रवृत्ति खूब पाई जाती है। महादेवी के "बीन भी हूँ मैं तुम्हारी, रागिनी भी हूँ" आदि गीतों में सुन्दर विरोधाभास पाए जाते हैं।

गीति-काव्य : छायावादी कविता वैयक्तिक कविता है। कवियों के व्यक्तिगत सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, उनकी निजी अनुभूतियों का भावावेशमय चित्रण ही छायावाद में हुआ है। यही कारण है कि छायावादी काव्य समग्रतः प्रगीतात्मक ही रहा है। जब कवि अपने सुख-दुःख की अभिव्यक्ति पर ही केन्द्रित रहेगा, तो उसकी वाग्धारा प्रगीत (Lyric) के रूप में ही प्रकट होगी। इन कवियों ने स्पष्ट रूप से निजी सुख-दुःख का प्रकाशन किया है, इसीलिए यह काव्य प्रायः समग्रतः मुक्तक काव्य ही है। दो-चार खण्ड काव्य और 'कामायनी' (प्रसाद) जैसा महाकाव्य अपवाद ही है। महादेवी वर्मा का समस्त गीति-काव्य मुक्तक काव्य है। छायावाद ने गीतिकाव्य को पूर्णता प्रदान की। भाव-प्रवणता, संगीतात्मकता, भाषा की कोमल-कांत पदावली, संक्षिप्त भावाभिव्यक्ति, आत्माभिव्यक्ति आदि गीति-काव्य की समस्त विशेषताएँ इन कवियों में पाई जाती हैं। महादेवी के गीतों में जो माधुर्य और संगीतात्मकता है, उसकी तुलना कठिन है। गीत का रूप-संस्कार करने में महादेवी सब छायावादी कवियों में अग्रणी है। महादेवी और प्रसाद ने अधिकतर भारतीय संगीत को ही अपने गीति काव्य में अपनाया, निराला और पंत ने पाश्चात्य संगीत को भी अपने प्रगीत-काव्य में स्थान दिया है।

छायावाद में छन्द-प्रयोग की जो नूतनता पाई जाती है, उसे भी महादेवी के

गीतों में देखा जा सकता है। परंपरागत काव्य-रूढ़ियों के स्थान पर स्वच्छन्द गति-ताल का इन्होंने सर्वत्र ध्यान रखा है। इनके छन्द-विधान पर बंगला का भी कुछ प्रभाव पड़ा है। तुकांत छन्दों के भी कई नए रूपों का निर्माण इन्होंने किया। छन्द-सम्बंधी यह स्वतंत्रता छायावाद की भाव-स्वच्छन्दता का ही परिणाम है। महादेवी वर्मा ने छन्द के अनुसार भावों को ढालने की अपेक्षा भावों के अनुसार छन्द-निर्माण किया है। यद्यपि महादेवी वर्मा ने निराला, पंत आदि की तरह भिन्न-भिन्न शैलियों और भिन्न-भिन्न काव्य-बंधों का प्रयोग न करके, केवल गीत-शैली ही अपनायी है, खण्ड काव्य, लम्बी कविता, शोकगीत, एकार्थ काव्य, ओड (सम्बोध-गीत), सॉनेट आदि की रचना नहीं की, पर गीत-शैली में लोक-धुनों आदि का आविष्कार करके उन्होंने आधुनिक गीत-शिल्प को अत्यन्त प्रौढ़ता प्रदान की।

विकास-क्रम की दृष्टि से छायावाद में महादेवी वर्मा का आगमन कुछ बाद में तब हुआ जब छायावाद अपने उत्कर्ष काल में था, यही कारण है कि महादेवी का काव्य छायावाद-रहस्यवाद के चरमोत्कर्ष का द्योतक है। सन् 1912 से 1925 का समय छायावाद का आरंभिक युग कहा जा सकता है। 1925 ई० से 1938 ई० का उत्तरकाल छायावाद का उत्कर्षकाल है जिसमें महादेवी का आगमन हुआ। उनकी 'नीहार,' 'रश्मि,' 'नीरजा,' 'सांध्यगीत,' 'दीपशिखा' आदि रचनाएँ इसी युग की श्रेष्ठ गीत-सृष्टि हैं।

व्यापक प्रभाव : छायावाद का व्यापक प्रभाव हमारे आधुनिक हिन्दी साहित्य पर पड़ा है। कविता के अतिरिक्त इसने हमारे गद्य साहित्य—निबंध, संस्मरण, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि अनेक गद्य-विधाओं को प्रभावित किया। महादेवी के गद्य-साहित्य—आलोचनात्मक निबंधों, ललित निबंधों, संस्मरणों और रेखाचित्रों पर यह प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। महादेवी के संस्मरण और रेखाचित्र अपनी तरल भावुकता, काल्पनिक उड़ान और कलात्मकता में छायावाद के ही अन्य गद्य-रूप हैं। उनके आलोचनात्मक निबंधों की विचार-प्रणाली छायावादी भावुकता से ही ओतप्रोत है। छायावाद के प्रभाव से हिन्दी में प्रभाववादी समीक्षा की जो एक प्रणाली चल निकली, महादेवी की आलोचना में उसका आभास मिलता है।

हिन्दी गद्य-शैली के उत्कर्ष-वर्धन में भी छायावाद का योग कुछ कम नहीं है। द्विवेदी-युग की गद्य-शैली से छायावाद-युग के सशक्त गद्य को मिलाने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि चित्रात्मक सूक्ष्म शैली के कारण पिछले युग से छायावाद युग का गद्य कहाँ से कहाँ पहुँच गया। जिस सांकेतिक, लाक्षणिक भाव-भंगिमा से युक्त भावात्मक शैली का व्यवहार छायावादी कविता में हुआ, वही गद्य-शैली में भी उतरी। महादेवी वर्मा के संस्मरण-निबंध साहित्य में उसी गद्य-शैली का

विकास पाया जाता है। इस प्रकार हिन्दी कविता के अतिरिक्त छायावाद का व्यापक प्रभाव निश्चय ही यह सिद्ध करता है कि छायावादी-काव्य-दृष्टि ने बहुत बड़ा ऐतिहासिक कार्य किया। कुछ लोग छायावाद के घोर व्यक्तिवाद को कोसते हैं, कुछ उसके अतिशय कल्पनावादी और वायवी रूप की भर्त्सना करते हैं, परन्तु छायावाद की इन कुछ दुर्बलताओं के बावजूद उसका ऐतिहासिक महत्त्व अक्षुण्ण है।

छायावाद के चार स्तभ—प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी—उसकी गौरव-गाथा के महान प्रतीक हैं। इन चारों ने ही साहित्य में छायावाद को उच्चतम स्थान दिलाया। इन्होंने ही इसका स्वरूप बनाया, उसमें रंग भरा और उसके नाना पक्षों को पुष्ट किया। चारों ने ही छायावाद के समस्त अंगों को विकसित करने में योग दिया है, फिर भी किसी ने किसी पक्ष में अधिक रंग भरा, किसी ने अन्य में। निराला जी यदि छायावादी कविता में भाव और अभिव्यंजना के नए-नए पथ निकालने और नए प्रयोग करने में सबसे आगे रहे, तो पंतजी सौन्दर्य-चयन और अभिव्यंजना-शक्ति सँवारने में अग्रणी रहे। महादेवी ने गीत-शैली में विशेष प्राण-प्रतिष्ठा की, प्रसाद में इन सभी की विशिष्टताओं का समुच्चय है। अस्तु छायावाद की प्रमुख कवयित्री महादेवी की छायावादी-काव्य-प्रवृत्ति अत्यन्त सशक्त है, उन्होंने आधुनिक हिन्दी कविता में युगांतर उपस्थित किया है। ●●

16

सुमित्रानन्दन पंत की छायावादी मानसिकता

1. छायावादी मानसिकता की पृष्ठभूमि
2. जीवन-दर्शन
3. अतीत-मोह—पलायन
4. रहस्य-भावना
5. प्रकृति-चित्रण
6. नारी और प्रेम
7. रम्य कल्पनाएँ, नवीन सौन्दर्य-सृष्टि
8. परिवर्तन

पृष्ठभूमि—दो महायुद्धों के बीच अर्थात् बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक से चौथे दशक तक हिन्दी में जिस छायावादी काव्य-प्रवृत्ति का विकास हुआ, सुमित्रानन्दन पंत उसके प्रमुख प्रतिनिधि और प्रवर्त्तक कवि हैं। जब कोई विशिष्ट काव्य-धारा साहित्य में अपना स्थान बनाती है तो उसके पीछे अनेक प्रेरणा-शक्तियाँ होती हैं जो उसकी परिवर्तित मानसिकता का कारण बनती हैं। बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक के मध्य में जब पंत जी का आगमन हिन्दी काव्य-क्षेत्र में हुआ तो तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, साहित्यिक परिस्थितियों के फलस्वरूप नये कवि पंत की नयी मानसिकता का उदय हुआ और उनकी नव चेतना ने अपनी स्वच्छन्द भाव-धारा छायावाद के रूप में प्रवाहित की।

हिन्दी साहित्य में यह द्विवेदी काल था। खड़ी बोली ने कविता में अपना स्थान अभी बनाया ही था, भाषा में व्यवस्था और एकरूपता तो आ गयी थी किन्तु अभी वह गद्यवत् शुष्क और इतिवृत्तात्मकता से युक्त थी। पद्य-भाषा में जो कल्पना की रंगीनी, प्रवाह, रसात्मकता और चित्रमय ध्वन्यात्मकता होनी चाहिए उसका द्विवेदीकालीन काव्य में अभाव ही रहा। कविता का यह अभाव हमारे नये कवियों को और भी खलने लगा जब पंत आदि हमारे ये नये कवि बंगला की भावात्मक एवं कलात्मक शैली तथा अंग्रेजी के रोमान्टिक कवियों की रचनाओं

से परिचित हुए । अतः इनकी मानसिकता नवीन अभिव्यक्ति के लिए उत्सुक हो उठी ।

द्विवेदी जी ने रीतिकाल की अति शृंगारिक वृत्ति के प्रति रोष प्रकट करके अपने समय के कवियों को सामाजिक सुधार की ओर लगाया । इससे रीतिकाल का अश्लील और स्थूल शृंगार-वर्णन तो रुका परन्तु उसके स्थान पर उससे भी भारी-भरकम स्थूल काव्य की रचना होने लगी थी। कविता अधिक से अधिक बाह्योन्मुखी होने लगी थी । भावों की तीव्रता और सूक्ष्मता का प्रायः अभाव ही दिखाई देता था । अतः पंत, प्रसाद, निराला आदि हमारे नवीन कवियों ने नए रंगों और नई तूलिका से अपनी कविता को सजाना आरंभ किया । पुरानी घिसी-पिटी परंपराओं और बंधनों से मुक्त होकर पंत आदि नये छायावादी कवियों ने अपनी स्वच्छन्द तान छेड़ी । पहली बार खड़ी बोली कविता में कल्पना की स्वच्छन्द उड़ान, पद-लालित्य, भावों की वेगवती व्यंजना, वेदना की विवृत्ति, शब्द-प्रयोग की विचित्रता, नयी भाव-विचार-विषय-प्रवृत्ति आदि अनेक बातें दिखाई देने लगीं। यही छायावाद था । इसके मूल में स्थूल की बजाय सूक्ष्म की बाँछा थी, बौद्धिक और अभिधात्मक अर्थ-ध्वनि के स्थान पर कल्पना-प्रवणता का आह्वान था और था उपदेशात्मकता के प्रति वैयक्तिक वेदना तथा सौन्दर्य के प्रति नवीन अपरिमित अनुराग ।

कुछ लोग छायावाद के मूल में कवियो की असंतोष की भावना मानते हैं। वस्तुतः जीवन के दृष्टिकोण बदल रहे थे ! प्राचीन रूढ़ियों ने, व्यर्थ के नैतिक बंधनों ने नवयुवकों की अन्तश्चेतना को कुंठित कर रखा था । प्राचीन वैवाहिक प्रथा में घुन लग चुका था। विवाह-सम्बन्ध प्रेम की आन्तरिक उमंग पर आधारित न रहा था । पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से हमारे नव कवि उन्मुक्त प्रेम के अभिलाषी बनने लगे थे । समाज की रूढ़ियों से उन्हें बहुत चिढ़ थी, अतः उनका मानसिक असंतोष कविता में व्यंजित होने लगा ।

वैज्ञानिक युग की उपज पूँजीवादी पद्धति और उसके शोषण ने समाज को विनाश, पीड़ा एवं व्यथा में डुबा दिया था । गाँधीवादी आत्मपीड़न का युग आरंभ हो रहा था । ब्रिटिश सरकार के दमन-चक्र और उत्पीड़न की आँधी ने प्रबुद्ध भारतीय मानस पर निराशा की काली छाप अंकित कर दी थी । इस प्रकार के नैराश्यपूर्ण वातावरण का भी हमारे कवि पंत के मानस पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था । इसी से व्यथा का यह स्वर पंत जी की रचनाओं में गूंठ उठा ।

वैयक्तिक जीवन में भी सामाजिक जीवन की तरह विफलताओं का बराबर सामना था । नवयुवक कवि जीविका चलाने में भी कठिनाइयों का अनुभव कर रहा था । इच्छाएँ और आकांक्षाएँ कल्पना के सुनहले पंख लगा कर आकाश में ऊँची उड़ानें भरती थीं किन्तु वास्तविकता अपने कठोर आघातों से उन्हें धराशायी

करती जा रही थी। उन्मुक्त प्रेम की लालसा भी लालसा ही वनी रही। समाज के नैतिक बंधन उनकी भावना से मेल न खाते थे। अतः वंगला और अंग्रेजी के व्यक्तिवादी गीतिकाव्य (Lyrics) की अन्तर्मुखी प्रवृत्ति की ओर हमारे कवि का आकर्षण वढ़ता गया और उसी स्वर में उसने भी स्वर मिलाना शुरू कर दिया।

इस असंतोष, विद्रोह, स्वच्छन्दता आदि ने कवि-मानस में आत्म-प्रकाशन या आत्माभिव्यक्ति की भावना को प्रवल किया। आधुनिक कवि ने उस सामंतीय नैतिकता का वंधन ढीला करना आरंभ कर दिया, जिसके कारण प्राचीन कवि अपने निजी प्रणय-सम्बंध को सीधे ढंग से व्यक्त करने में असमर्थ था। यही कारण है कि पंत ने 'उच्छवास,' 'आँसू,' 'ग्रंथि' आदि रचनाओं में, प्रसाद ने 'आँसू' में अपना प्रणय सीधा व्यक्त किया है। हजारों साल के इतिहास में कवि ने समाज से यह छूट पहली वार ली। किन्तु फिर भी सामाजिक भय कुछ-न-कुछ बना ही रहा और कवियों को अपनी वैयक्तिक प्रणयानुभूति रहस्यमय आवरणों में प्रस्तुत करनी पड़ी। यही वजह है कि पंत, निराला, प्रसाद और महादेवी आदि की प्रणयानुभूति स्पष्ट और सीधी होती हुई भी कहीं-कहीं रहस्यमयी हो गई है, कहीं कवियों ने प्रकृति की ओट ली है तो कहीं अपने प्रिय को रहस्यात्मकता के ऊर्ध्व आसान पर आसीन कराया है।

जीवन-दर्शन--पंत जी की आरंभिक छायावादी रचनाएँ प्रेम की वेदना-विवृत्ति तथा प्रकृति की कल्पनामयी भाव-भंगियों से ही मुख्य रूप से खेलती थीं। किन्तु बाद को हमारे कवि का ज्यों-ज्यों जीवन और जगत् के प्रति चिन्तन बढ़ता गया, त्यों-त्यों उनका छायावादी काव्य एक विशिष्ट दार्शनिक दृढ़ भित्ति पर आरूढ़ हुआ। छायावादी काव्य के लिए स्वामी विवेकानन्द, रामतीर्थ, रवि बाबू और गाँधी जी आदि नवयुग के मनीषियों ने पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी। आदर्शात्मक आध्यात्मिक चिंताधारा का प्रभाव हमारे कवियों पर पड़ा। पंत स्वयं 'आधुनिक कवि' की भूमिका में स्वीकार करते हैं—"दर्शन-शास्त्र और उपनिषदों के अध्ययन ने मेरे राग-तत्त्व में मंथन पैदा कर दिया और उसके प्रवाह की दिशा ही वदल दी।" उपनिषदों की विचारधारा का सार-तत्त्व मुण्डकोपनिषद् के निम्न श्लोकांश में पाया जाता है—"तमेव भान्तमनुभाति सर्वम् तस्य भासा सर्वमिदम् विभाति।" समस्त सृष्टि में एक ही परम तत्त्व की व्याप्ति का विचार ही जिसे सर्वात्मवाद या सर्ववाद से मिलता-जुलता समझना चाहिए, छायावाद का मूल दर्शन है जिसे पंत जी ने अपनाया। वस्तुतः छायावादी काव्य में इसी सर्ववाद के फलस्वरूप एक अखण्ड जीवन-समष्टि की उद्भावना पाई जाती है, छायावाद की समस्त भावाभिव्यक्ति के मूल में यही भावना है। छायावादी कवि पंत प्रकृति के कण-कण में इसी कारण एक सचेतन सत्ता का आभास पाता है। इसी कारण वह तृण-लता-

गुल्म, सर-सरिता, चरिन्द-परिन्द सबसे रागात्मक सम्बंध स्थापित करता है। इसी भावना से उसका प्रेम आत्मिक प्रेम है।

'सौर मण्डल' शीर्षक कविता में पंत सारे ब्रह्माण्ड को एक ही चिन्मय प्रकाश में उदय और लय होते देखते हैं—

चिन्मय प्रकाश से विश्व उदय
चिन्मय प्रकाश में विकसित लय
रवि शशि ग्रह उपग्रह ताराचय
अग जग प्रकाशमय है निश्चय।

वास्तव में छायावाद पर वर्तमान युग के आध्यात्मिक दर्शन का ही प्रभाव पड़ा है। शंकर के निवृत्ति-मूलक अद्वैतवाद की बजाय हमारे कवि-मानस पर स्वामी विवेकानन्द और रामतीर्थ के सामाजिक भावनाओं से युक्त वेदान्त का प्रभाव पड़ा। नवयुग के विचारकों—विवेकानन्द, रामतीर्थ, रवीन्द्र ठाकुर, महात्मा गाँधी आदि ने वेद, उपनिषद्, गीता, वेदान्त तथा वैष्णव धर्म को मिलाकर एक ऐसे अध्यात्मवाद को जन्म दिया जो देश की प्राचीन दार्शनिक परंपरा में होता हुआ भी वर्तमान युग की सामाजिक आवश्यकताओं के अनुकूल था। इसी दार्शनिक मानसिकता से प्रेरित होकर पंत आदि हमारे छायावादी कवियों ने व्यक्ति और समाज, समाज और राष्ट्र, राष्ट्र और विश्व, विश्वात्मा और परमात्मा का समन्वय प्रस्तुत करते हुए अध्यात्म की नई व्याख्या प्रस्तुत की। प्राचीन दर्शन की नवीन सामाजिक और मानवतावादी व्याख्या पंतादि छायावादी कवियों की अद्भुत विशेषता है। भारत के चिर पुरातन अध्यात्म दर्शन का इन कवियों ने समाजीकरण किया।

अध्यात्म दर्शन के इसी समाजीकरण के कारण छायावादी दर्शन प्रवृत्तिमूलक है। शंकर के मायावाद और जगन्मिथ्या को इसमें कोई स्थान नहीं। आधुनिक कवि संसार को सत्य और वास्तविक मानकर चले हैं। यह चराचर विश्व पंत जी को सुन्दर प्रतीत होता है, इसी के साथ वह अपना रागात्मक प्रसार करता है, यह समस्त विश्व उन्हें प्रिय है—

प्रिय मुझे विश्व यह चराचर
तृण, तरु, पशु, पक्षी नर सुघर
सुन्दर अनादि शुभ सृष्टि अमर। (गुंजन)

जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, छायावादी कवियों पर जीवन के सामाजिक और वैयक्तिक दुःखों का प्रभाव पड़ा है। इसी से छायावाद की कविता में व्यथा, वेदना और दुःखवाद का स्वर गूंज उठा। दुःखवाद भी छायावाद का एक प्रमुख तत्त्व है। परन्तु यह दुःखवाद, निराशा और वेदना संध्या की कालिमा नहीं, प्रत्यूष की निहारिका है। दुःख और करुणा को इन कवियों ने जीवन का एक ऐसा तत्त्व बना

लिया जो जीवन को मरुस्थल नहीं, अपितु उर्वर ही बनाता है। छायावाद में यह दुख या वेदना एक व्यापक सार्वभौम शाश्वत तत्त्व के रूप में चित्रित हुआ है। यह दुख विश्व-वेदना का परिचायक है। 'ग्रंथि' में कवि पंत वेदना के इस विश्व-व्यापी भाव को प्रकट करते हुए कहते हैं—

वेदना ! कैसा करुण उद्‌गार है !
वेदना ही है अखिल ब्रह्माण्ड यह
तुहिन में, तृण में, उपल में, लहर में,
तारकों में, व्योम में है वेदना !

जीवन की अचिरता, अस्थिरता और असारता पर भी पंत ने आठ-आठ आँसू बहाए हैं—

खोलता इधर जन्म लोचन;
मूंदती उधर मृत्यु क्षण-क्षण।
अभी उत्सव और हास-हुलास;
अभी अवसाद, अश्रु उच्छवास।
अचिरता देख जगत की आप;
शून्य भरता समीर निश्वास।

पंत जी इस करुणा को अपने अंतर में समेटे हुए हैं। उर्दू के एक कवि की यह पंक्ति—'सारे जहाँ का दर्द हमारे दिल में है'—इन छायावादी कवियों पर ठीक लागू होती है। पंत अपने मन को विश्व-वेदना में किस प्रकार गलाना चाहते हैं, यह निम्न पंक्तियों में देखिए—

तप रे मधुर-मधुर मन !
विश्व-वेदना में तप प्रतिपल;
जग-जीवन की ज्वाला में गल;
बन अकलुष उज्ज्वल औ' कोमल;
तप रे विधुर-विधुर मन !

विश्ववेदना की यह भावना जीवन से निवृत्ति नहीं, जीवन में प्रवृत्ति की द्योतक है। छायावादी कवि इसी से व्यक्तिगत मुक्ति और मोक्ष का निषेध करता है, वह इस संसार के बंधनों को ही मुक्ति मानता है। बंधन में ही मुक्ति पाने की कामना कवीन्द्र-रवीन्द्र की 'गीतांजलि' में बहुत सुन्दर ढंग से व्यक्त हुई है—

वैराग्य साधने जे मुक्ति से आभार नये
असंख्य बंधन माझे हे आनन्द आनन्दमय
लभिव मुक्तिस्वाद !

पंत जी ने इसी भाव को यों व्यक्त किया है—

तेरी मधुर मुक्ति ही बंधन;
गंधहीन तू गंधयुक्त बन !

दुखवाद की यह प्रवृत्ति जीवन में सरसता का साधन है। जीवन के दुख ही सुखों को लाते हैं। छायावाद में सुख-दुख के समन्वयवादी सिद्धांत की प्रतिष्ठा भी इसी दुखवाद की भावना के आधार पर हुई है। दुःख-सागर की सिहरी-स्पंदन में ही सुखों के बुदबुद उत्पन्न होते हैं। 'गुंजन' में पंतजी ने सुख-दुख की इस सम्मिलित भावना का सुन्दर और स्पष्ट प्रकाशन किया है। कवि ने सबके उर की डाली का निरीक्षण किया और उसे अनुभव हुआ कि सब में 'सुख के तरुण फूल' और सबमें 'कुछ दुःख के करुण शूल' हैं। दुख ही मानव-आत्मा के परिष्कार का द्योतक है—

दुख इस मानव आत्मा का;
रे नित का मधुमय भोजन,
दुःख के तम को खा-खाकर;
भरती प्रकाश से वह मन !

फूल काँटों में ही खिलता है, सोना तप कर ही निखरता है, पृथ्वी भीग कर ही उर्वरा होती है। अपने दुख हानिकारक नहीं होते, बल्कि वे कालांतर में सुखों में ही परिवर्तित हो जाते हैं—

अपनी डाली के काँटे बेधते नहीं अपना तन,
सोना-सा उज्ज्वल बनने, तपता नित प्राणों का घन।

वास्तव में सुखों का अतिरेक भी जीवन को कुंठित कर देता है—

अपने मधु में लिपटाकर कर सकता मधुप न गुंजन।

लेकिन साथ ही **करुणा से भारी अंतर (भी) खो देता जीवन-कंपन !**

अतः सुख-दुःख के संतुलन में ही जीवन का स्वाभाविक विकास संभव है। इसीलिए कवि पंत कहते हैं—

मैं नहीं चाहता चिर सुख;
मैं नहीं चाहता चिर दुःख

क्योंकि **जग पीड़ित है अति दुख से,**
जग पीड़ित है अति सुख से,

इसीलिए **मानव जग में बंट जावें,**
दुख सुख से औ' सुख दुख से।

और इस प्रकार **सुख दुख के मधुर मिलन से**
यह जीवन हो परिपूर्ण
फिर घन में ओझल हो शशि,
फिर शशि से ओझल हो घन।

जीवन साँझ-उषा का आँगन ही अच्छा लगता है—

यह साँझ-उषा का आँगन
आलिंगन विरह-मिलन का
चिर हास-अश्रुमय आनन,
रे इस मानव जीवन का !

'समागमा सापागमा' तो बहुत पहले सुन आए थे, परन्तु उसके साथ ही 'उत्पादि भंगुरम्' भी लगा था, जो निवृत्ति का ही द्योतक था। इस छायावादी सामाजिक दर्शन का, सृष्टि-जीव-चराचर की सत्यता और शाश्वतता का तथा सुख-दुख की इस सम्मिलित उपासना का भाव मध्यकाल की विशिष्टाद्वैती अथवा शुद्धाद्वैती विचार-दर्शन में भी नहीं है। वहाँ जगत् और जीव को सत्य अवश्य कहा गया है, किन्तु किसी-न-किसी रूप में वैराग्य और माया का प्राबल्य था ही। वह पूर्णतया आध्यात्मिक दर्शन था, यह आधुनिक सामाजिक अध्यात्म है।

सुख-दुःख से युक्त इस मानव-जीवन को परिपूर्ण बनाने की आकांक्षा पंत आदि सभी छायावादी कवियों में पाई जाती है। छायावाद का मूल दर्शन आत्मिक है। अतः कवियों ने आत्म-साधना, आत्म-परिष्कार, आत्म-विस्तार एव आत्म-बलिदान से ही जीवन की पूर्णता की कल्पना की है। छायावादी दर्शन की मूल प्रेरणा सांस्कृतिक होने से सत्य, त्याग, आत्म-बलिदान आदि उच्च सांस्कृतिक मूल्यों की सभी छायावादी कवियों ने प्रतिष्ठा की है। पंत जी स्पष्ट शब्दों में उच्च सांस्कृतिक आदर्शों पर आस्था प्रकट करते हुए अपने अन्तरतम की आस्तिकता व्यक्त करते हैं—-

मैं प्रेमी उच्चादर्शों का,
संस्कृति के स्वर्गिक स्पर्शों का;
जग-जीवन में उल्लास मुझे,
नव आशा नव-अभिलाष मुझे,
ईश्वर पर चिर-विश्वास मुझे;
चाहिए विश्व को नवजीवन।

कवि विश्व को नवजीवन प्रदान करना चाहता है, अपूर्ण मानव-जीवन को पूर्ण बनाना चाहता है, जलती हुई मानवता को शीतलता प्रदान कराने की तीव्र अभिलाषा रखता है। इसके लिए आत्म-बलिदान की भावना उसमें पूर्ण रूप से पाई जाती है। आत्म-बलिदान का गुण-गौरव गाते हुए कवि कहता है—

म्लान कुसुमों की मृदु मुसकान,
फलों में फलती फिर अम्लान
महत्त है अरे आत्म-बलिदान !
जगत केवल आदान-प्रदान।

हँसमुख प्रसूनों से कवि जग के आंगन को सुरभित कर जाने का संदेश ग्रहण करता है। इस प्रकार सारे विश्व के प्रति मंगल-कामना इनमें पाई जाती है।

पंत, प्रसाद, निराला आदि प्रायः सभी छायावादी कवियों ने नवीन युग का आह्वान बड़े उत्साह से किया है। वे मानवता को नये हरे-भरे परिधान तथा नयी प्रगतिशील विचार-दृष्टि से सम्पन्न देखना चाहते थे। नव युग में प्राचीन गली-सड़ी सामाजिक धारणाओं को वे कब सहन कर सकते थे? इसीलिए इन सभी कवियों ने प्राचीन जीर्ण-शीर्ण रूढ़ियों को मृत्यु-दण्ड दिया है। कवि पंत नूतन का आह्वान करते हुए स्पष्ट कहते हैं—

गा कोकिल बरसा पावक कण !
नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण-पुरातन;
ध्वंस-भ्रंश जग के जड़ बंधन;
पावक पग धर आवे नूतन !

अतीत-मोह—किन्तु पुरातन के इस खण्डन के साथ ही छायावादी कवि ने स्वर्णमय अतीत के पुनरुत्थान अथवा भारत के अतीत सांस्कृतिक गौरव का गान भी किया है। अतीत-मोह की यह भावना इन कवियों की सांस्कृतिक और राष्ट्रीय भावना का ही एक रूप है। वर्तमान जीवन की विषमता, कटुता, पराधीनता, अपमान की ठेस को भुलाने के लिए हमारे इन कवियों ने अतीत स्वर्ण युग का सहारा लिया। वर्तमान की हार और हीनता का उत्तर उन्होंने अतीत की जीत और ऐश्वर्य से दिया। अतीत के मोह की यह भावना पंत की अपेक्षा प्रसाद और निराला में अधिक है। अतीत के सुखद सुन्दर जीवन के अभाव पर पंत जी यों खिन्नता प्रकट करते हैं—

कहां आज वह पूर्ण पुरातन वह स्वर्ण का काल !

पलायन—इस प्रकार छायावादी कविता हमारे राष्ट्रीय और सांस्कृतिक उत्थान के आन्दोलन को भी बड़ी सूक्ष्मता के साथ छूती है। किन्तु छायावादी कवि जीवन की यथार्थ समस्याओं और उसकी विभीषिका में संघर्षशील नहीं होना चाहता था। जीवन की वास्तविकता कई बार उसे खिन्न बना देती थी, और ऐसे क्षणों में कभी-कभी वह 'कोलाहल की अवनी' को छोड़कर, प्रकृति अथवा अतीत की सुखद छाया में चला जाना चाहता था। आलोचकों ने छायावादी कवि की इस मानसिकता को पलायनवृत्ति या पलायनवाद कहा है, परन्तु इसी के आधार पर इन कवियों को पलायनवादी मान लेना उनके प्रति घोर अन्याय है। वस्तुतः जिस प्रकार मुंशी प्रेमचन्द अपने कई उपन्यासों में कथा के अन्त तक आते-आते आश्रमों-सदनों के रूप में किसी-न-किसी आदर्श-लोक की कल्पना करते हुए पाये जाते हैं, उसी प्रकार जीवन के गायक ये छायावादी कवि कुछ देर के लिए जीवन की वास्तविकता से झुँझलाकर कल्पना के लोक में विचरण करना चाहते हैं। यह

तथाकथित पलायन तो एक प्रकार का श्रम-परिहार है। वस्तुतः प्रगतिशीलता और पलायन छायावाद की एक अद्‌भुत असंगति है। हाँ, इतना अवश्य सत्य है कि जीवन की वास्तविकता से टक्कर लेने का साहस किसी छायावादी कवि ने नहीं दिखाया। पंत और निराला में जो बाद को संघर्ष की भावना आई वह उनके प्रगतिवादी कवि का ही रूप है। पंत अपनी व्यथा को भुलाने के लिए प्रकृति के सुखद क्रोड़ में छिप जाना चाहते हैं—

वहीं कहीं जी करता है जाकर छिप जाऊं
मानव जग के क्रन्दन से छुटकारा पाऊँ
प्रकृति-नीड़ में व्योम खगों के गाने गाऊँ
अपने चिर स्नेहातुर उर की व्यथा भुलाऊं।

रहस्य-भावना—जीवन की कुरूपता से खिन्न होकर कवि प्रकृति की अनन्त सुषमा में विचरण करता है और इस प्रकृति के माध्यम से वह विराट रहस्यमय सौन्दर्य-सत्ता को खोजता है। जिस रहस्य-सत्ता के प्रति जिज्ञासा और विस्मय की भावना कवि पंत ने व्यक्त की है, उसी की छवि का पान करने की तीव्र आकाँक्षा उसमें जाग उठती है। कवि पंत की आत्मा उस रहस्यमय सत्ता की मन-मोहक वंशी-ध्वनि सुनने तथा विश्व-कामिनी की पावन छवि पाने के लिए व्याकुल-सी छटपटाती है—

और हाय ! मैं रोती फिरती हूँ निश-दिन बन-बन
नहीं सुनाई देती फिर भी वह वंशी-ध्वनि मन मोहन !

परोक्ष रहस्य-सत्ता के प्रति जिज्ञासा और उत्कंठा की भावना सभी छायावादी कवियों में है। आधुनिक रहस्यवाद का यह प्रथम सोपान अर्थात् रहस्य-भावना छायावाद की भी एक विशेषता है जो कवि पंत में खूब पाई जाती है। इसी भावना से पंत जी प्रकृति के कण-कण में उस छवि का इशारा पाते हैं—

न जाने नक्षत्रों से मौन
निमंत्रण देता मुझ को कौन ?

कवि उत्कंठातुर है कि जगती के सब चराचर किस रहस्यसत्ता के प्रति आकर्षित हैं—

मैं चिर उत्कंठातुर,
जगती के अखिल चराचर,
यों मौन, मुग्ध किसके बल !

संध्यालोक में कवि उस सौन्दर्य-छवि की मुस्कान अनुभव करता है—

हुआ था जब संध्यालोक,
हंस रहे थे तुम पश्चिम ओर।

विहग-रव बनकर मैं चित्त चोर !
गुण गा रहा था, किन्तु कठोर,
रहे नहीं तुम वहाँ भी शोक !

इस प्रकार छायावाद का एक दृढ़ दार्शनिक पक्ष है जो पंत जी के काव्य में पूर्णता से उतरा है। इसमें अनेक तत्त्वों का सामंजस्य पाया जाता है। जड़-चेतन, व्यष्टि-समष्टि, पुरुष-नारी, सुख-दुःख, प्रवृत्ति-निवृत्ति, मुक्ति-बंधन, जीवन-मृत्यु, प्रगति और पलायन, द्वैत-अद्वैत, सांत-अनंत तथा राष्ट्रीयता-विश्व मानवतावाद आदि सब में सामंजस्य का अद्भुत प्रयास कवि पंत की छायावादी मानसिकता की विशेषता है।

विभिन्न तत्त्वों का यह सामरस्य या सामंजस्य छायावाद की एक ऐसी मौलिक उद्भावना है जो भारतीय दर्शन के इतिहास में क्या, विश्व-दर्शन के क्षेत्र में अद्वितीय है। छायावाद की इस उच्च दार्शनिक विचारधारा के कारण कुछ आलोचक उसे आध्यात्मिक काव्य कहने लगे। किन्तु समग्र छायावादी काव्य आध्यात्मिक काव्य नहीं कहा जा सकता । उसकी एक व्यापक, विशद् मानवतावादी दार्शनिक पृष्ठभूमि अवश्य है, जो भारतीय सर्वात्मवाद पर आधारित है। यदि सर्ववाद पर आधृत जीवन-चिंतन आध्यात्मिक माना जाय, तो इस दृष्टि से तो समस्त काव्य सदैव और सर्वत्र आध्यात्मिक कहा जा सकता है। सत्य, अहिंसा, त्याग, सेवा, बलिदान, करुणा, विश्वमैत्री, विश्वमानवतावाद आदि बातें, जो छायावादी दर्शन में पाई जाती हैं, अध्यात्म पक्ष को छूती अवश्य हैं, किन्तु इनसे छायावादी काव्य आध्यात्मिक नहीं कहा जा सकता।

प्रकृति-चित्रण : जैसाकि कहा जा चुका है, सुमित्रानन्दन पंत आदि हमारे छायावादी कवियों की आत्म-प्रसार और स्वच्छन्दता की वृत्ति उन्हें प्रकृति के उन्मुक्त प्रांगण में ले गई। यहाँ उन्होंने प्रेम के अनन्त राज्य, अपार सुषमा और सौन्दर्य, पवित्रता, निश्छलता और सबसे बढ़कर अबाध स्वच्छन्दता का अनुभव किया। उनका हृदय इस खुले वातावरण को पाकर खिल उठा। पुरानी गली-सड़ी परंपराओं और समाज तथा काव्य-रूढ़ियों में उनका दम घुट रहा था। वे नदी-नालों, निर्झरों, पशु-पक्षियों, मेघ-पवन, सर-तालों आदि की स्वच्छन्द गति में अपनी स्वच्छन्द तान मिलाना चाहते थे। प्रकृति के क्रोड़ में ही उनके व्यथित हृदय को भी सान्त्वना मिली। वहीं उनकी सौन्दर्य-भावना की तृप्ति हुई, उनके विशाल हृदय को फैलने के लिए वहीं अनन्त आकाश, विस्तृत समुद्र मिला और वहीं उन्हें विराट् सचेतन सत्ता के दर्शन हुए। प्रकृति के साथ कवि ने आत्मीयता का सम्बंध स्थापित कर लिया। प्रकृति के कण-कण को उन्होंने एक सचेतन व्यक्तित्व प्रदान किया। पुष्प-लता, पशु-पक्षी, तृण-गुल्म सब मानव की तरह हँसने लगे और अपने हृदय के छिपे रहस्यों को मानव के सम्मुख प्रकट करने लगे। प्रकृति और

मानव में एकात्म्य स्थापित हुआ। सचराचर प्रकृति मानव के साथ मिलकर एक रूप हो गई। पंत जी ने तो स्पष्ट स्वीकार किया है कि कविता करने की प्रेरणा उन्हें प्रकृति से मिली। अलमोड़ा के पर्वतीय प्रदेश में उन्होंने घंटों प्रकृति की सुषमा का निरीक्षण किया है, और उसके सूक्ष्मातिसूक्ष्म उपकरणों से अपना अनुराग स्थापित किया है। प्रकृति के इस अद्‌भुत आकर्षण के ही कारण वह मानवी सौन्दर्य की तुलना में प्रकृति-सौन्दर्य को महत्व देते हैं—

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया;
बाले, तेरे बाल-जाल में
कैसे उलझा दूँ लोचन ?

तजकर तरल तरंगों को
इन्द्रधनुष के रंगों को
तेरे भ्रू भंगों से कैसे
बिंधवा दूँ निज मृग-सा मन ?

प्रकृति के प्रति यह सहज अनुराग मध्ययुग की कविता में नहीं था। इसी अनुराग के कारण इन कवियों ने प्रकृति का आलम्बन रूप में स्वतंत्र चित्रण किया है। प्रकृति के अनेक सौन्दर्य-चित्र प्रस्तुत किए हैं। इस प्रकृति-चित्रण में उनकी सूक्ष्म संश्लिष्ट सौन्दर्य-दृष्टि का खूब परिचय मिलता है। अकेली 'नौका-विहार' कविता में कवि पंत ने अनेक गत्यात्मक संश्लिष्ट चित्र उपस्थित किए हैं। एक गत्यात्मक चित्र देखिए—

नौका से उठती जल-हिलोर
हिल पड़ते नभ के ओर-छोर;
विस्फारित नयनों से निश्चल,
कुछ खोज रहे चल तारक-दल
ज्योतित कर नभ का अंतस्तल !
सामने शुक्र की छवि झल-मल
पैरती परी-सी जल में कल,
रूपहले कुचों में हो ओझल !
लहरों के घूंघट से झुक-झुक
दशमी का शशि निज तिर्यक मुख
दिखाता मुग्धा-सा रुक रुक ! (गुंजन)

प्रकृति के संश्लिष्ट चित्रों को बहुधा प्रकृति के मानवीकरण के रूप में प्रकट किया गया है। प्रकृति का मानवीकरण छायावादी काव्य की एक बहुत बड़ी विशेषता

है। प्रकृति को नारी-रूप में इन कवियों ने अधिक चित्रित किया है। नारी-रूप में प्रकृति का स्वच्छन्द चित्रण करके इन कवियों ने प्रकृति के माध्यम से अपनी शृंगार-भावना को भी व्यक्त किया है। पंत जी ने प्रकृति का अद्भुत मानवीकरण किया है। आधुनिक कवियों में प्रकृति की आत्मा का जितना अधिक अवलोकन कवि पंत ने किया है, उतना प्रसाद, निराला और महादेवी ने भी नहीं किया। नारी के रूप में प्रकृति का मानवीकरण यहाँ गंगा का तापस-बाला रूप कैसा सुन्दर है—

सैकत-शैया पर दुग्ध धवल, तन्वंगी गंगा ग्रीष्म विरल,
लेटी है शांत, क्लांत निश्चल।
गोरे अगों पर सिहर-सिहर, लहराता तार तरल सुन्दर
चंचल अंचल-सा नीलाम्बर !

'संध्या,' 'प्रात,' 'चंद्रिका,' 'छाया' आदि प्रकृति के अनेक रूपों को कवि पंत ने नारी-रूप में चित्रित किया है। पंत के अधिकांश प्रकृति-चित्र नाट्यात्मक और रूपकमय हैं। बादल, ख़द्योत, पवन, निर्झर आदि प्रकृति के अंग एक नाटक के पात्र की भाँति स्वयं अपना परिचय दे जाते हैं। सचेतन बादल का चित्रण देखिए—

कभी चौकड़ी भरते मृग से,
भू पर चरण नहीं धरते,
मत मतंगज कभी झूमते,
सजग शशक नभ को चरते।

कहाँ कालिदास का 'धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः' और कहाँ पंत जी का स्वतः चेता बादल ! पवन का मानवीकरण इन पंक्तियों में कितना सुन्दर है !—

मेरा चाबुक खा मृगेन्द्र-सा
आहत घन करता गुरु गर्जन
अट्टहास करविद्युत पर चढ़
जब मैं नभ में करता विचरण !

'ज्योत्स्ना' की चित्रसारी में प्रकृति के विराट् चित्रों का क्या कहना ! प्रकृति के मानवीय स्पंदनों का पंत से अधिक किसी आधुनिक कवि ने अनुभव नहीं किया। प्रकृति के पारस्परिक प्रणय-व्यापार का भी पंत ने व्यापक चित्रण किया है। समुद्र अपनी अगणित बाँहें फैलाकर इन्दु-करों से आलिगनबद्ध होना चाहता है; चटुल लहरें तारों से फेनिल चुम्बनों का आदान प्रदान करती हैं—

अगनित बाहें बढ़ा उदधि ने इन्दु-करों से आलिगन,
बदले, विपुल चटुल लहरों ने तारों से फेनिल चुम्बन।

प्रकृति का बिल्कुल नवीन दृश्य-विधान बड़ी सूक्ष्मता के साथ इन छायावादी

कवियों ने किया है। इनके विविध ऐन्द्रिय-बोध जगाने वाले दृश्य बहुत मनोहर और सूक्ष्म हैं। लाल-नीले रंगों के बादल, भौंरा, कोकिल, चातक आदि के स्वर तथा कुछ फूलों की रंग-गंध की चर्चा संभवतः पहले के कवियों ने भी की है, लेकिन वर्ण, गंध, स्पर्श और स्वाद-सम्बंधी सूक्ष्म ऐन्द्रिय बोध जगाने वाले दृश्य जिस मात्रा में छायावादी कवियों ने अंकित किए, पहले नहीं मिलते। पंत जी में वर्ण-विवेक सर्वाधिक है। रात के सन्नाटे के बारे में उनकी उक्ति है—'गुंजित अलि-सा निर्जन अपार!'

इन्होंने प्रकृति के बाह्य सौन्दर्य का ही अवलोकन नहीं किया, उसकी अन्तरात्मा का भी सूक्ष्म निरीक्षण किया है। प्रकृति में द्रवणशीलता, मृदुलता, कोमलता और भावुकता के भी इन्होंने दर्शन किए हैं। मानव के कल्याण पर प्रकृति भी अपनी संवेदना प्रकट करती है। मानव के साथ वह हँसती, संदेश देती और उत्साहित करती है। पंत जी ने प्रकृति में माँ के असीम दुलार, सहचरी की मधुर कामना और गुरु के उपदेशों का अनुभव किया है। उनकी चाँदनी विश्व के दैन्य-कारुण्य पर अश्रु बहाती है—

जग के दुख-दैन्य शयन पर यह रुग्ना जीवन-बाला
रे कब से जाग रही वह आँसू की नीरव माला!

कवि मधुपकुमारी से अनुनय-विनय करता है—

सिखला दो ना हे मधुपकुमारी! मुझे भी अपना मीठा गान!

वह भौंरों से भेद-भरे संदेश पाना चाहता है, कोकिल से सनातन संदेश सुनता है और टल-टल छल-छल कर बहती हुई सरिता से मृदुलता, कोमलता के भाव सीखता है—

मैं भी उसके गीत सीखने आज गई थी उसके पास
उसके कैसे मृदुल भाव हैं, उज्ज्वल तन, मन भी उज्ज्वल।

कलिका शुष्क वृन्त पर मुस्करा कर मानव को दुःख भी हँसकर सहन करने का उपदेश देती है। हँसमुख प्रसून अपनी सुरभि लुटाकर दानशीलता का पाठ पढ़ाते हैं, लहरें बार-बार उठकर जीवन में सदैव अग्रसर होने को उत्साहित करती हैं। प्रकृति को इस प्रकार आत्मबलिदान और सेवा-रत देखकर कवि को यही कहते बनता है—'महत्त है अरे आत्म बलिदान!'

मानव और प्रकृति का इस प्रकार बिल्कुल निकट का सम्बंध होने से पूर्ण तादात्म्य स्थापित हो जाता है। मानव प्रकृति के साथ गले जुड़कर मिल जाना चाहता है। वह प्रकृति के स्पंदनों का अनुभव कर उसे अपने साथ एकरूप कर लेता है। पंत जी 'छाया' को समदुखिनी मानकर किस प्रकार एकात्म्य स्थापित करते हैं, देखिए—

अहा ! अभागिन हो तुम मुझसी सजनी, ध्यान में अब आया
तुम इस तरुवर की छाया हो, मैं उनके पद की छाया।
हाँ, सखि, आओ बाँह खोल हम लगकर गले जुड़ा लें प्राण
फिर तुम तम में, मैं प्रियतम में हो जावें द्रुत अन्तर्धान !

प्रकृति के साथ इस प्रकार का तादात्म्य छायावादी पंत की ही विशेषता है। मध्य-युग के कवि की मानसिकता इसकी कल्पना भी नहीं कर सकती थी। यदि प्रकृति मानव के दुख-दर्द के प्रति संवेदनशील है तो मानव भी उसकी व्यथा का अनुभव करता है। मानव और प्रकृति एक-प्राण हो गए हैं, दोनों का चिर सम्बंध स्थापित हो गया है।

जैसाकि कहा जा चुका है, छायावादी प्रकृति-प्रयोग का एक रूप है, उसमें विराट् परमसत्ता की खोज, विस्मय, जिज्ञासा की भावना तथा सर्वात्मवाद के आश्रय समस्त चराचर सृष्टि में एक ही अखण्ड आत्मा का आभास पाना। पंत में इसकी अभिव्यक्ति हम ऊपर दर्शा आए हैं। रहस्य-भावना के अतिरिक्त 'अप्सरि' आदि के रूप में पंत ने प्रकृति का विराट् चित्रण भी किया है जो प्रकृति के प्रति उनके उदार दृष्टिकोण का ही परिचायक है।

नारी और प्रेम—प्रकृति की ही भाँति छायावादी कवि पंत की मानसिकता नारी की ओर आर्कषित हुई है जिससे उनके काव्य में नारी-चित्रण की भी वैसी ही प्रधानता मिलती है जैसी प्रकृति की। इन्होंने प्रकृति में ही नारी के नैसर्गिक रूप का अनुभव किया। यही कारण है कि इनकी नारी प्रकृति की ही भाँति एक नैसर्गिक प्रतिमा है। आधुनिक युग में नर-नारी के सम्बंधों में स्वच्छन्दता आई। सदियों के सामंतीय अन्तःपुर में जो नारी आत्मा छटपटा रही थी, वह मुक्त हुई। अव वह पुरुष की इच्छा का क्रीड़ा-कंदुक नहीं बन सकती थी। पुरुष उसके संसर्ग और सम्पर्क का आनन्द केवल उसे समानता का दर्जा देकर ही उठा सकता था। वर्तमान व्यक्ति-स्वातंत्र्य के ही परिणामस्वरूप नर और नारी में स्वच्छन्द प्रेम का विकास हुआ। साहित्य में पहली बार नारी को प्रेयसी का उच्च आसन प्राप्त हुआ।

छायावादी पंत ने नारी की मुक्ति का नारा लगाया। प्रकृति की ही तरह उन्होंने नारी के दो रूपों का ही मुख्यतः अवलोकन किया है। एक उसका 'सखि, सहचरी प्राण प्यारी' का रूप और दूसरा 'देवि माँ' का उसका विराट् रूप। पंत ने आवाज उठाई :

मुक्त करो नारी को मानव ! चिरवंदिनी नारी को;
युग-युग की निर्मम कारा से, जननी, सखी प्यारी को

छायावादी स्वच्छन्द प्रेम अद्भुत है ! इस प्रेम का विकास मानस-मंथन से होता है। यह प्रेम दो आत्माओं के मिलन से सम्बंधित है। यह प्रेम बड़ा ही सूक्ष्म मान-

सिक प्रेम है। प्रेम-चित्रण में भावावेग है, जो उद्दाम होते हुए भी अशरीरी और सूक्ष्म है। ऐन्द्रिय बोध उसमें न हो, ऐसी बात नहीं किन्तु वह होता है अत्यन्त सूक्ष्म। स्पर्श में रोमाँच, रस, गंध में सुख और आनन्द तथा संसर्ग में पावन गंगा-स्नान का-सा पवित्र आनन्द पहले के कवियों की कल्पना से ही बाहर की वस्तु थी—

तुम्हारे छूने में था प्राण,
संग में पावन गंगा-स्नान

और पंत की 'भावी पत्नी' का प्रथम मिलन तो देखिए, कितनी सूक्ष्मता और चित्रात्मकता से व्यक्त हुआ है! —

अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात!
विकम्पित मृदु-उर, पुलकित गात,
सशंकित ज्योत्स्ना-सी चुपचाप,
जड़ित-पद, नमित-पलक-दृग-पात
पास जब आ न सकोगी प्राण!
मधुरता में सी भरी अजान,
लाज की छुई-मुई-सी म्लान,
प्रिये, प्राणों की प्राण!

इस प्रेम के तरल, मधुर, नीरव और आनन्दमय उद्वेग का क्या कहना! प्रीति की धारा चुप-चाप हृदय में समाने लगती है। शरीर का रोम-रोम अभिनव आनन्द का एक विचित्र अनुभव करने लगता है। जीवन-यौवन के इस प्रथम उत्थान में चारों ओर भी सरस जीवन ही दिखाई देता है। पुरुष के मन-प्राण भी चंचल हो उठते हैं, प्राणों का प्राणों से मिलन-दिन जो है—

आज चंचल-चंचल मन-प्राण
आज रे शिथिल-शिथिल तनभार;
आज दो प्राणों का दिनमान, आज संसार नहीं संसार।

छायावादी सूक्ष्म नारी-सौन्दर्य-चित्र कितने अद्भुत हैं। पंत जी का प्रेमिका के नील-कमल नयनों का वर्णन देखिए। उन आँखों पर अनजाने ही अनुरक्त होकर नीले आकाश ने अपना स्वच्छ ताजा नीलापन उनको प्रदान किया है, मतवाली लहरों ने उनमें चंचलता भर दी है—

मुग्ध स्वर्ण किरणों ने प्रात,
प्रथम खिलाए वे जलजात;
नील व्योम ने ढल अज्ञात,
उन्हें नीलिमा दी नवजात;

जीवन की सरसी उस प्रात,
लहरा उठी चूम मधु-वात।
आकुल लहरों ने तत्काल,
उनमें चंचलता दी ढाल।

मध्ययुग के नख-शिख-वर्णन में अथवा सूर की नयनोक्तियों में भाव-सरसी की उर्मियों का यह मंथन कहाँ मिलेगा ? चित्रात्मकता और मानस-मंथन छायावादी सौन्दर्य-सृष्टि की विशेषता है। पंत की 'भावी पत्नी' निसर्गबाला के अद्‌भुत सौन्दर्य से युक्त है। प्रकृति भी इस निसर्ग-सुन्दरी का संसर्ग पाकर झूम उठती है—

अरुण अधरों की पल्लव प्रात,
मोतियों-सा हिलता हिम-हास,
इन्द्रधनुषी पट में ढंक गात,
बाल विद्युत् का पावस-लास
हृदय में खिल उठता तत्काल,
अधखिले अंगों का मधुमास,
तुम्हारी छवि का कर अनुमान
प्रिय प्राणों की प्राण !
खोल सौरभ का मृदु कच-जाल
सूंघता होगा अनिल समोद,
सीखते होंगे उड़ खग-बाल,
तुम्हीं से कलरव केलि-विनोद;
चूम लघु-पद चंचलता प्राण !
फूटते होंगे नव जल-स्रोत !

निस्संदेह छायावादी पंत की नारी विधाता की अनुपम रचना है। नारी के स्थूल सौन्दर्य की जगह इन्होंने उसके भाव-सौन्दर्य का सूक्ष्म चित्रण किया है। इनकी प्रेम-भावना अतृप्ति-परक है, कामवासना नहीं। आरंभिक कविताओं में तो निराश और विफल प्रेम की ही मुख्य रूप से अभिव्यक्ति हुई है। 'ग्रंथि', 'उच्छवास की बालिका,' 'आंसू' आदि पंत जी की रचनाएँ इस कथन की पुष्टि करती हैं। 'ग्रंथि' का व्यथित कवि-हृदय इस नैराश्य और विफलता का कैसा मार्मिक वर्णन करता है—

शैवलनि ! जाओ मिलो तुम सिंधु से,
अनिल ! आलिंगन करो तुम गगन का,
चन्द्रिके ! चूमो तरंगों के अधर—
पर हृदय, सब भाँति तू कंगाल है !

प्रेम-वंचित को यथा कंगाल को,
है कहाँ आश्रय विरह की वह्नि में !

इस निराशा और हसरत के करुणा और वेदनामय चित्र में कवि-हृदय हाहाकार कर उठता है। किन्तु छायावादी कवि इस रोदन और वेदना में ही भटकता नहीं रहता। वह इस प्रेम को विशुद्ध और व्यापक बना लेता है। उसके प्रेम में असफलता का अनुभव उसकी अपूर्णता अथवा उसके वासना-मिश्रित भाव का द्योतक नहीं। उसका प्रेम आत्मसमर्पणमय है, उसमें उत्सर्ग ही उत्सर्ग छलकता है। उसका स्वभाव देना ही है, लेना नहीं। जो जितना अधिक देता है, वह उतना ही अधिक प्रेमी है--

पागल रे ! वह मिलता है कब,
उसको तो देते ही हैं सब।
आँसू के कण-कण से गिनकर। —प्रसाद

सौन्दर्य और प्रेम का यह आलम्बन—यह सुन्दरी, सीमित नहीं रहती। यह विश्व-सुंदरी बन जाती है। पंत की 'अप्सरि' का विश्व-व्यापी, शाश्वत सार्वभौम रूप कितना कमनीय है ! नारी के रहस्यमय रूप और सौन्दर्य का चित्रण छायावादी काव्य की विशेषता है जो पंत की 'अप्सरि' के त्रिभुवन-लीन और सुर-नर-मुनि-इप्सित रूप में दृष्टिगोचर है—

खिली प्रथम सौन्दर्य पद्म-सी, तुम जग में नवजात;
भृंगों से अगणित रवि, शशि, ग्रह गूँज उठे अज्ञात।
तुम सुर-नर-मुनि-इप्सित अप्सरि ! त्रिभुवन में लीन!
अंग-अंग अभिनव शोभा का, नव वसन्त सुकुमार !

इस प्रकार छायावादी पंत की मानसिकता ने प्रेम का अभिनव रूप, नारी की अपूर्व प्रतिष्ठा और सौदर्य तथा यौवन का मानस-मंथन उत्पन्न कर देने वाला नवीन अनुभव प्रकट किया है।

रम्य कल्पनाएं, नवीन सौंदर्य-सृष्टि—छायावादी पन्त के काव्य की मूल भावना रोमाण्टिक है, यह मानसिक स्वच्छन्दता का काव्य है। नवीन सौन्दर्य-सृष्टि के लिए इनकी कल्पनाएँ इन्द्र-धनुषी पंख लगाकर उड़ने लगीं। इनकी कविता कल्पना के कानन की रानी बन गई। प्रचीन नायिकाओं से असंतुष्ट होकर ये अपनी कल्पना की प्रेमिकाओं का चित्रण करने लगे, वर्तमान संसार से खिन्न होकर वह अपनी भावनाओं और कल्पनाओं का नया संसार रचने लगे, सौन्दर्य के प्राचीन मानों और उपादानों से ऊब कर, अपनी कल्पना की सुन्दर सृष्टि करने को इनका हृदय मचल उठा ! परम्परागत अभिव्यक्ति शैली के स्थान पर नवीन कल्पनायुक्त सूक्ष्म एवं स्वच्छन्द अभिव्यक्ति चाहने लगे। इनकी कल्पना-शक्ति उर्वर थी और अन्तर्दृष्टि पैनी थी इसीलिए, साधारण वस्तुओं और रूपों को

भी वे असाधारणता प्रदान कर देते थे। प्रकृति के सुषमायुक्त अनन्त प्रांगण में इनकी कल्पना ने खूब गुल खिलाए। ऊपर प्रकृति और नारी-चित्रण आदि के जो उदाहरण हम दिखा चुके हैं, वे सब इनकी अद्भुत कल्पना-शक्ति के ही खेल हैं। मध्ययुग में 'नक्षत्र', 'छाया', 'पवन', 'बादल', 'प्रात', 'सन्ध्या', 'मधुवन', 'चाँदनी', 'उच्छवास,' आदि पर स्वतन्त्र कविता करने की कल्पना कवि के स्वप्न में भी नहीं आ सकती थी।

प्रकृति की क्रोड़ से छायावादी पंत की सजग कल्पना अनेक नवीन उपमानों को खोज लाई। भाषा को नवीन रूप-रंग, ध्वनि और पद-लालित्य प्रदान कराने में इनकी कल्पना ने पूर्ण योग दिया। इनका सौन्दर्य-बोध अत्यन्त सूक्ष्म, भव्य और सशक्त था। 'पल्लव' की भूमिका में कवि पंत ने भाषा, शैली, भाव, छन्द, अभिव्यक्ति आदि के नवीन सौन्दर्य की व्याख्या की है। अधुनिक कवियों में पंत का सौन्दर्य-बोध था भी सबसे बढ़ा-चढ़ा। नवगीत, नवलय, ताल, पद, छन्द और सब कुछ नव का जो आग्रह बढ़ा, उसने एक नूतन कला का सृजन किया। 'पल्लव' की भूमिका में पंत ने शब्दों के अन्तर-ब्राह्य की, उनके रूप-रस-गंध-ध्वनि की जो सज्ञानता प्रकट की है, उसी से उनका कलाकार सिद्ध हो जाता है। निस्संदेह वे बहुत बड़े कला-शिल्पी थे। इनकी रंगीन कला अद्भुत है। अभिव्यक्ति के क्षेत्र में इन्होंने अनेक मौलिक, कलात्मक उद्भावनाएँ की हैं। निम्न पंक्तियाँ देखिए—

(1) **जीवन की चंचल सरिता में, फेंकी मैंने मन की जाली,**
फंस गईं मनोहर भावों की, मछलियां सुघर भोली भाली!

(2) **तुम्हारी पी मुख-वास तरंग**
आज बौरे, भौंरे सहकार,
चुनाती नित लवंग निज अंग
तन्वि! तुम-सी बनने सुकुमार!

भाषा में कैसा ध्वनि-लालित्य एवं श्रुति-कोमलता है! अपनी सरलता, प्रवाहात्मकता, सरसता तथा ध्वनियों के सामंजस्य के कारण भाषा कैसी सुन्दर और कोमल-कांत हो गई है!

छायावादी पंत की मानस-कल्पना ने मधु, सुधा, मधुर, सुरभि, सुवर्ण, स्पंदन, कंपन, सिहरन, मृदु, मृदुल, मुग्ध, कलकल, छलछल, गुंजन, नीरव, उर्मिल, तंद्रिल, चंचल, आँसू, पलक, पराग, अधर, सुधि, सजल, अरुण, मदिर, चपल, मधुप, तरल, करुण आदि अनेक छोटे-छोटे, तीन-तीन चार-चार वर्णों के रोमानी शब्दों का मोहक और सजीव प्रयोग किया। शब्दों का ज्ञान इन्हें इस हद तक था कि लहर, तरंग, वीचि, उर्मि, हिल्लोल जैसे पर्यायवाची शब्दों के सूक्ष्म अन्तर और भिन्न-भिन्न अर्थ-छायाओं का अनुभव इन्होंने किया। इन्होंने शब्दों के अन्तर में पैठकर उनके कलरव को सुना है, रंग को देखा है, गंध को सूंघा है। 'पल्लव'

की भूमिका में पंत जी कहते हैं—"भिन्न-भिन्न पर्यायवाची शब्द प्रायः संगीत-भेद के कारण एक ही पदार्थ के भिन्न-भिन्न स्वरूपों को प्रकट करते हैं, जैसे 'भ्रू' से क्रोध की वक्रता, 'भृकुटि' से कटाक्ष की चंचलता, 'भौंहों' से स्वाभाविक प्रसन्नता, ऋजुता का हृदय में अनुभव होता है। ऐसे ही 'हिलोर' में उठान, 'लहर' में सलिल के वक्षःस्थल की कोमल-कंपन, 'तरंग' में लहरों के समूह का एक-दूसरे को धकेलना, उठकर गिर पड़ना, 'बढ़ो-बढ़ो' कहने का शब्द मिलता है; 'वीचि' से जैसे किरणों में चमकती, हवा के पालने में हौले-हौले झूलती हुई हँसमुख लहरियों का, 'उर्मि' से मधुर मुखरित हिलोरों का, 'हिल्लोल-कल्लोल' से ऊँची बाँहें उठाती हुई उत्पात-पूर्ण तरंगों का आभास मिलता है···।" शब्दों के इस नाद-सौंदर्य और चित्रमय गुण के ही कारण कवि पंत ने भाषा को 'संसार का नादमय चित्र', 'ध्वनिमय स्वरूप' और विश्व की हृत्तन्त्री की झंकार कहा है।

वर्ण-परिज्ञान का भी इन्होंने अद्‌भुत परिचय दिया है। कहीं-कहीं तो रूप-रंग, ध्वनि के अतिरिक्त स्पर्श और गंध का भी इनके शब्द-चयन में मधुर अनुभव होता है। "छाया तरुवन में तम श्यामल" कहने वाले पंत जी 'काला', 'श्याम', और 'श्यामल' का भेद समझते हैं। 'श्यामल' के लकार ने नाद-सौंदर्य ही उपस्थित नहीं किया है, साथ ही स्पर्श की सुकुमारता भी प्रदान की है।

मानस-कल्पना-प्रवणता की अपार विशेषता के ही कारण छायावादी पंत ने अपनी अद्‌भुत चित्र-शक्ति का परिचय दिया है। इनकी कल्पना इतनी सचेतन और प्रखर है कि प्रत्येक अनुभूति उनके सम्मुख चित्र-रूप में आती है। भाषा सर्वत्र बिम्ब ग्रहण कराने वाली है। अकेली 'नौका-विहार' कविता में दसियों सुन्दर गत्यात्मक चित्र देखे जा सकते हैं जो चलचित्रों की भाँति आँखों के सामने नाचने लगते हैं। पंत जी की भावी-मुग्धा पत्नी का प्रथम मिलन-चित्र इन पंक्तियों में कितना सजीव हो उठा है!—

अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात!
विकम्पित उर, मृदु पुलकित गात।
सशंकित ज्योत्स्ना-सी चुपचाप,
जड़ित पद नमित पलक दृग-पात;
लाज की छुई-मुई-सी म्लान।
प्रिय प्राणों की प्राण!

प्रत्येक शब्द किस प्रकार सजीव चित्र की भाँति जड़ा हुआ है। 'विकम्पित उर मृदु, पुलकित गात' भावमय आन्तरिक चित्र और अगली पंक्तियों में ठिठकी हुई लजा-वती अधोमुखी मुग्धा नायिका का चित्र कितना प्रत्यक्ष, सजीव और भव्य है! पंत जी की 'ज्योत्स्ना' तो चित्रसारी ही है, जिसमें संध्या, ज्योत्स्ना, इन्दु आदि के

संश्लिष्ट सुन्दर चित्र और मनोहर दृश्य-विधान एक मनोमोहक वातावरण उपस्थित करते हैं।

पंत की मानसिकता के कलात्मक खेल उनके मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय, एक-शब्द-चित्र, प्रतीक-विधान, मूर्त्त-अमूर्त्त अप्रस्तुत-विधान आदि सब में देखे जा सकते हैं। उनकी कल्पना की जादूगरी के कुछ नमूने इन एक शब्द-चित्रों में देखिए—'मरुत' के लिए 'नभ की निस्सीम हिलोर', नक्षत्र के लिए 'स्तब्ध विश्व के अपलक विस्मय', 'निर्झर' के लिए 'मूक गिरि का मुखरित गान' प्रयोग करके पंत जी ने अपनी चित्र-शक्ति का परिचय दिया है।

परिवर्तन—अनूठा सौन्दर्य-बोध, कल्पना-प्रवणता आदि उपर्युक्त विशेषताओं और उपलब्धियों के बावजूद छायावादी मानसिकता अपने वैयक्तिक स्वर की सीमित भावभूमि में ही आबद्ध रही। समाज की यथार्थता को इन्होंने नहीं पहचाना। केवल वैयक्तिक आन्तरिक सांस्कृतिक बातों का राग अलापने से समाज की तत्कालीन क्षुधापूर्ण अशांति और असंतोष की भावना सन्तुष्ट नहीं हो सकती थी। यही कारण है कि कल्पना के आदर्शलोक में विचरण करना स्वयं इन्हीं छायावादी कवियों को कुछ असंगत-सा लगा और पंत ने अपने छायावादी कवि को पुकारा—

ताक रहे हो गगन ?···
मृत्यु-नीलिमा गहन गगन
देखो भू को ! जीव-प्रसू को······मानव पुण्य-प्रसू को !

छायावाद के पतन पर पंत ने लिखा—"छायावाद इसलिए अधिक नहीं रहा कि उसके पास भविष्य के लिए उपयोगी, नवीन आदर्शों का प्रकाश, नवीन भावना का सौन्दर्य-बोध और नवीन विचारों का रस नहीं था। वह काव्य न रहकर केवल अलंकृत संगीत बन गया था।···वह नए युग की सामाजिकता और विचारधारा का समावेश नहीं कर सका था। उसमें व्यावहारिक क्रान्ति और विकासवाद के बाद का भावना-वैभव तो था, पर महायुद्ध के बाद की अन्न-वस्त्र की धारणा नहीं आई थी।" ('आधुनिक कवि' की भूमिका) यथार्थता और वास्तविकता के नाम पर छायावाद की जो प्रतिक्रिया हुई, उसे हम 'युगांत' के बाद 'युगवाणी', 'ग्राम्या' आदि में पंत जी की बदली हुई मानसिकता के रूप में पाते हैं। वह काव्यत्व की दृष्टि से कितनी सार्थक है, यह दूसरी बात है। ●●